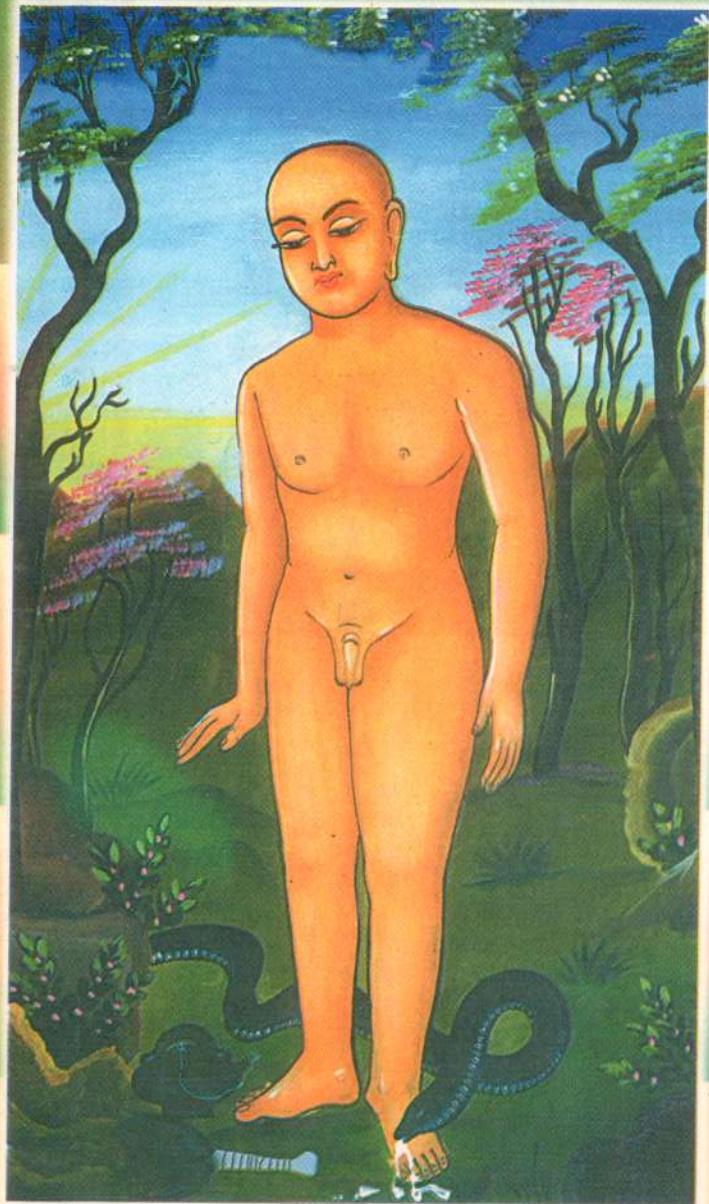


# धर्म, जैन धर्म तथा भगवान् महावीर



आ. रत्न कनकनंदीजी महाराज

प्रकाशन द्वारा प्रकाशित होने वाली पुस्तकी

**धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान एवं****धर्म दर्शन सेवा संस्थान – ग्रन्थाक- 135**

लेखक – आचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव

ग्रन्थ – धर्म, जैन धर्म तथा भगवान् महावीर

पावन प्रसंग – भगवान् महावीर की २६००वाँ जन्म जयन्ती की पुण्य सूति में  
विमोचन – भगवान् महावीर की २६००वाँ जन्म जयन्ती के अवसर पर

(चैत्र शुक्ला १३ गुरुवार २५-४-२००२)

मूल्य – धर्म प्रचारार्थे आपका सहयोग – २५/-

**भगवान् महावीर की महानता**

भगवान् महावीर केवल एक व्यक्ति नहीं थे, अपितु एक महान् आदर्श व्यक्तित्व के धनी, आत्मवृष्टा के साथ-साथ विश्वदृष्टा, आत्मानुशासक के साथ-साथ शास्ता / आप्त / धर्म प्रवर्तक / तीर्थकर; आत्मज्ञ के साथ-साथ विश्वज्ञ / महावैज्ञानिक / आत्मकल्याणकर्ता के साथ-साथ समाज – राष्ट्र – विश्वकल्याणकर्ता थे। निश्चित काल, क्षेत्र, वंश, जाति में जन्म लेने के बाद भी उनके सिद्धांत उस कालादि सीमा से परे सार्वभौम, वैशिक, सार्वकालिक, ‘सर्वजीव हिताय – सर्वजीव सुखाय’ थे। इसीलिए महावीर को कोई एक निश्चित काल, क्षेत्र, धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वंश यहाँ तक कि मनुष्य जाति की सीमा में भी नहीं बाँधा जा सकता है। जैसे कि आकाश को किसी भी सीमा, क्षेत्र में नहीं बाँधा जा सकता। वे पवित्रता, समृद्धि, सत्ता, विभूति, त्याग, ज्ञान, मुक्ति, शक्ति आदि की चरमोत्कृष्टतम सीमा के उदाहरण थे और अभी भी हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित कुछ महानतम सिद्धांतों के बारे में आधुनिक वैज्ञानिक शोध कर पाये हैं, कुछ शोधरत हैं और कुछ वैज्ञानिक शोध-बोध खोज के परे हैं।

धर्मचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव

द्रव्यदाता : मोहनलाल चंद्रवती जैन चेरिटेबल ट्रस्ट

196. सैनिक फार्म, नई दिल्ली-110 062

[www.jainkanaknandhi.org](http://www.jainkanaknandhi.org)[JainKanaknandhi@rediffmail.com](mailto:JainKanaknandhi@rediffmail.com)[E-Mail - info@jainkanaknandhi.org](mailto:E-Mail - info@jainkanaknandhi.org)

1. धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान – बड़ैत, मुजफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलुम्बर, मुबई, अमरीका

2. धर्म दर्शन सेवा संस्थान – उदयपुर (राज.), पंजीयन क्रमांक / १८ / उदयपुर ०१-०२

**प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान-****(1) प्रो. श्री सुशीलचन्द्रजी जैन-**‘धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान’ निकट दि. जैन धर्मशाला, बड़ैत  
फोन. नं. (01234) 62845**(2) श्रीमती रत्नमाला जैन C/o डॉ. राजमलजी जैन**

4-5 आदर्श कॉलोनी पुलाँ, उदयपुर (राज.) फो. नं. (0294) 440793

**(3) श्री गुणपालजी जैन**

बेहड़ा भवन ८७/१ कुंदनपुरा मुजफ्फरनगर फो नं. : (0131) 450229

**(4) श्रीमती लक्ष्मी गुरुचरण जी जैन**144 मुवी टावर नीयर, मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्प्लेक्स,  
अंधेरी (प.) मुंबई-400053

फोन नं. : (022) 6327152, 6312124, 6327152

**(5) ‘सेवाश्री’ सुरेखा जैन (शिक्षिका) W/O वीरेन्द्रकुमार डालचन्दजी गड्डिया  
कपड़े के व्यापारी – सलुम्बर जि. उदयपुर पिन. 313001**

फोन नं. : (02906) 32043

**(6) श्री महावीर कुमार जैन**

13 अग्रसेन कॉलोनी, दादावाड़ी कोटा फोन नं. : (0744) 410818

**(7) धर्म दर्शन सेवा संस्थान**C/o चन्द्रप्रभु मंदिर, आयड़, छोटूलाल चित्तोड़ा  
आयड़ बस स्टॉप के पास, उदयपुर-313001 (राज.)

फोन न. 413565

**(8) Pradhuman S. Zaveri, (M.S., Elect. Eng.)**

5829, Broad Well Drive, Plano, TX. 75093 (U.S.A.)

E-mail : laxmizaveri@yahoo.com, Ph. : 011-972-608-0400

**लेसर टाईप सेट्स :**

श्री कुन्युसागर ग्राफिक्स सेन्टर २५, शिरोमणि बंगलोज,

सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026

फोन – 5850744, 5851771

## भगवान् महावीर वैज्ञानिक युग में भी प्रासंगिक क्यों?

वैज्ञानिक धर्मचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव

वर्तमान युग वैज्ञानिक प्रगतिशील, उदारवादी युग है। उच्च संचार माध्यमों के कारण मानों पृथ्वी समेटकर एक विशाल संयुक्त परिवार के रूप में परिवर्तित हो गई है। इसके कारण भी धार्मिक परम्परायें, राजनैतिक आर्थिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाज, खान-पान, शिक्षा-सम्बन्धितायें परस्पर समीप आती जा रही हैं और उनमें सहकार-सहयोग, आदान-प्रदान तीव्रता से होता जा रहा है। यह सब विश्व के लिए कुछ दृष्टि से वरदान के साथ-साथ कुछ दृष्टि से अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण, भाव प्रदूषण अव्यवस्थित आपा-धारी पूर्ण तनावयुक्त अभिशप्त जीवन भौतिक दृष्टि से पृथ्वी समेटकर एक संयुक्त परिवार रूप में परिणमन करने के साथ-साथ मनुष्य अन्य उपग्रह - ग्रहों में पहुँचने के बाद भी मनुष्य-मनुष्य में दूरी बढ़ती जा रही है। वैज्ञानिक युग में भी विवेक, समता, समानता, शोषण रहित मानव-समाज, विवेकयुक्त आदर्श अनुकरण आदि की कमी 'दीपक के नीचे अंधेरा' के समान स्पष्ट प्रतिभासित हो रहे हैं। इन कमियों के कारणों का शोध-बोध परिमार्जन होना भी अत्यंत आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इसके बिना विकास विनाश का कारण बनेगा। इन कारणों का शोध-बोध-प्रबोध आज से 2528 वर्ष पूर्व ही महान् आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, समाज-राष्ट्र-विश्वसुधारक, 'सर्वजीव सुखाय सर्वजीव हिताय' के प्रबल समर्थक-उद्योधक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परम साम्यवादी, विश्वगुरु तीर्थकर भगवान् महावीर ने किया था।

तीर्थकर भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित "अनेकांत सिद्धांत एवं स्याद्वाद" महान् वैज्ञानिक आइन्टीन के 'सापेक्ष सिद्धांत' से भी अधिक व्यापक तथा पूर्ण है। 'भौतिक रसायन एवं अणु सिद्धांत' आधुनिक विज्ञान से भी अधिक सूक्ष्म-व्यापक तथा पूर्णता को लिए हुए हैं। वैज्ञानिक डार्विन के जीव विज्ञान (विकासवाद) से भी श्रेष्ठ, भ्राति रहित जीव विज्ञान (जीवसमास, मार्गणा स्थान) है। भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु के वनस्पति विज्ञान से भी अधिक व्यापक वर्णन है। मनोवैज्ञानिक फ्रायड के मनोविश्लेषण से भी अधिक सूक्ष्म, परिपूर्ण, भ्राति रहित

'लेश्या मनोविज्ञान' कषाय विश्लेषण, संज्ञा प्रकरण है। आधुनिक परमाणु विज्ञान से भी चमत्कारपूर्ण गुणस्थान, ऋद्धियों का वर्णन है। आधुनिक गणित से भी अनंत सूक्ष्म तथा अनंत आयाम से युक्त लौकिक एवं अलौकिक गणित है, आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान से भी अधिक श्रेष्ठ 'सर्वांगीण सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान' है। कार्लमार्क्स के साम्यवाद से भी श्रेष्ठ साम्यवाद (समता, अपरिग्रह) हैं, आधुनिक परिस्थिति कि से भी श्रेष्ठ पारिस्थिति (विश्वव्यवस्था, परस्परोपग्रहो जीवानाम्) हैं, महात्मा गांधी की अहिंसा एवं असहयोग से भी सूक्ष्म, शुद्ध व्यापक अहिंसा एवं माध्यस्थ भाव हैं। सुकरात, प्लेटो, अरस्तु के दर्शन शास्त्र एवं राजनीति से भी श्रेष्ठ दर्शन शास्त्र एवं राजनीति है। इसी प्रकार कार्य-कारण सिद्धांत क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धांत, पर्यावरण सुरक्षा, कर्म सिद्धांत, न्यायनीति, विश्वमैत्री विश्वसांति प्रगतिशीलता, प्रामाणिकता, चारित्रनिष्ठा, आधुनिकता, समाज विज्ञान, चतु: आयाम सिद्धांत, उत्पाद-व्यय-द्वौव्य युक्तता, गति-सिद्धांत, प्रकाशसिद्धांत, आनुवांशिक सिद्धांत आदि विश्व के संपूर्ण प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध सिद्धांतों का वर्णन पाया जाता है। भगवान् महावीर का जीवन हर दृष्टि से आदर्श, पारदर्शी, निष्कलंक, सार्वभौम, सार्वकालिक होने के कारण उनका जीवन तथा दर्शन सदा, सर्वदा, सर्वत्र सभी के लिए यथायोग्य अनुकरणीय, अनुसरणीय है।'

इस दृष्टिकोण को लेकर परम गुरु भक्त, विनप्र स्वभावी, दानवीर आर. के. जैन (राजेन्द्र कुमार जैन अध्यक्ष दक्षिण भारत जैन सभा) से मुझे 4-5 वर्षों से अनेकों बार "धर्म जैन धर्म तथा भगवान् महावीर" कृति की रचना के लिए साप्रह अनुरोध करते आ रहे थे। उनका अभिप्राय है कि धर्म-जैन धर्म तथा भगवान् महावीर का अखिल मानव विशेषतः जैनेतर बंधु और विदेशी सज्जन सरल-सहज-आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष में जाने-माने एवं अनुकरण करें ऐसा वर्णन इस पुस्तक में हो। वे इस कृति को देश-विदेश के सज्जनों को वितरण करना चाहते हैं। अभी तो 1000 प्रतियों का प्रकाशन कर रहे हैं- परंतु भविष्य में आवश्यकतानुसार इसकी अधिक प्रतियाँ प्रकाशन करके विश्व-वसुधा को ज्ञान-दान से लाभान्वित करना चाहते हैं। उनकी भावना, नम्रता, दानशीलता, गुरु-भक्ति, कर्तव्यनिष्ठा को 25-27 वर्षों से जानते हुए भी तथा उनके बार-

बार के आग्रह अनुरोध-प्रत्यक्ष, परोक्ष एवं पत्र द्वारा होने पर भी शोधपूर्ण साहित्य सृजन शिविर, संगोष्ठी, धार्मिक कक्षा प्रवचन, विद्वान् वैज्ञानिकों से चर्चा, लेख आदि के व्यस्ततम कार्यक्रमों के कारण यह कार्य कर नहीं पाया था। अभी अन्य कार्यों से समय निकाल कर इस कृति का कार्य खरका ग्राम में 21-12-2001 में प्रारंभ करके 10-1-2002 में पूर्ण किया।

इस कृति में कुमारी संगीता, कुमारी लीला और पारस कुमार (खरका) का भी योगदान रहा। खरका वाले अत्यंत नम्र, गुरुभक्त, सरल परिणामी, अतिथि सत्कार करने वाले हैं। यहाँ के बच्चे-बच्चियाँ आहारदान, गुरुसेवा, आरती, धार्मिक कक्षा में सोत्साह भाग लेते हैं। इसी प्रकार संघस्थ उपाध्याय विद्यानंदी, आर्थिका ऋद्धिश्री का भी पूर्ण सहयोग रहता है। द्रव्यदाता, सहायक कर्ता, अध्ययन कर्ता, (1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (2) धर्म दर्शन सेवा संस्थान के कार्यकर्ता एवं डॉ. शेखरचंद्र जैन तथा अखिल जीव जगत् के लिए शुभाशीर्वाद।

इस कृति का अध्ययन, मनन, प्रचार-प्रसार-अनुसरण करके संपूर्ण विश्व भगवान् महावीर के समान महान्, उदात्त, अहिंसक, सत्यग्राही, सुखी बने ऐसी मंगल कामना तथा आशीर्वाद के साथ-

आचार्य कनकनंदी गुरुदेव

10-1-2002, खरका- उदयपुर (राजस्थान)

पानी के अभाव से भी मृत्यु संभव है तो पानी में डूबने पर भी मृत्यु संभव है। वैसा ही निंदा, अपमान, हानि आदि से भी विचलित होना संभव है तो प्रशंसा, प्रळोभन, लोभ, लाभ से भी विचलित होना संभव है। निंदा आदि प्रतिकूल उपसर्ग/परिषह/प्रकोप हैं तो प्रशंसा आदि अनुकूल उपसर्ग हैं।

\* \* \*

दूसरों के दुर्गुणों को देखना तथा उसकी निंदा करना सरल है परन्तु स्व-दुर्गुणों को देखना और उनको दूर करना कठिन है। उसी प्रकार दूसरों के दुर्गुणों की प्रशंसा करना भी सरल है परन्तु गुणों को अपनाना कठिन है।

आ. श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

## विषय अनुक्रमणिका

	पृ.सं.
विषय	
1. आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव की संक्षिप्त जीवनी	X
2. वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव द्वारा रचित शोधपूर्ण ग्रंथों की सूची।	XIII
3. आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव के संघ के विशेष कार्यक्रम	XV
4. आगामी प्रकाशनाधीन ग्रंथ	XVII
5. संस्थान की नियमावली	XIX
6. महान् चिंतकों की दृष्टि में जैन धर्म तथा भगवान् महावीर	XX
<b>परिच्छेद-1</b>	
(1) धर्म (सार्वभौम धर्म)	1
(2) आत्मधर्म (अहिंसादि पांच धर्म)	3
(1) अहिंसा धर्म (2) सत्य धर्म (3) अचौर्य धर्म (4) ब्रह्मचर्य धर्म	
(5) अपरिग्रह धर्म	
<b>परिच्छेद-2</b>	
जैनधर्म (वस्तु स्वभाव धर्म)	17
1. जीव द्रव्य का धर्म 2. पुंद्रगल द्रव्य का धर्म 3. धर्म द्रव्य का धर्म	
4. अधर्म द्रव्य का धर्म 5. आकाश द्रव्य का धर्म 6. काल द्रव्य का धर्म	
(2) अनेकांत एवं स्यादाद धर्म	30
(3) मोक्षमार्ग (रलत्रय धर्म)	34
(4) सम्यग्दर्शन की परिभाषा	35
(5) सम्यक्ज्ञान	37
(6) विश्व धर्म के 10 लक्षण	38
1. उत्तम क्षमा धर्म 2. उत्तम मार्दव धर्म 3. उत्तम आर्जव धर्म	
4. उत्तम शौच धर्म 5. उत्तम सत्य धर्म 6. उत्तम संयम धर्म	
7. उत्तम तप धर्म 8. उत्तम त्याग धर्म 9. उत्तम अकिञ्चन्य धर्म	
10. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म	
(7) कर्म सिद्धांत का वैज्ञानिक विश्लेषण	53
1. भाग्य एवं पुरुषार्थ	58

<b>(8) जैन श्रावकों के अष्टमूल गुणों का वर्णन</b>	61
1. मध्य त्याग 2. मांस त्याग 3. मधु त्याग तथा 4. रात्रि भोजन त्याग का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण 5. पंचफल विरति 6. पंचगुरु भक्ति 7. जीवदया 8. जल छानकर पीने का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण 9. दूध, दही, घी, मक्खन की मर्यादा	
<b>जैन श्रावक के छह दैनिक धर्म</b>	77
1. देवपूजा 2. गुरुसेवा 3. स्वाध्याय 4. संयम 5. तप 6. दान	
<b>(10) श्रमण (साधु) की आचार संहिता</b>	84
<b>परिच्छेद-3</b>	
<b>भगवान् महावीर</b>	101
(भगवान् महावीर का धरती पर अवतरण)	
<b>(1) तीर्थकर बनने के उपाय</b>	102
<b>(2) भगवान् महावीर के मंगलमय पंचकल्याणक</b>	104
1. गर्भ कल्याणक	104
2. जन्म कल्याणक	106
1. सन्मति उपाधि से अलंकृत वर्द्धमान स्वामी	108
2. वर्द्धमान का महावीर अलंकरण	109
<b>(3) तप कल्याणक</b>	112
1. भगवान् महावीर के साधना काल में विभिन्न धोर उपसर्ग (महति महावीर सम्मान से सम्मानित)	113
2. क्षमा मूर्ति महावीर	113
3. शूलिपाणि यक्ष का उपद्रव	114
4. चण्डकौशिक सर्प को प्रतिबोध तथा सर्प का अहिंसक होना	115
5. धर्मचक्रवर्ती भगवान् महावीर	117
6. ग्वाला द्वारा भगवान् महावीर के कानों में शलाका ठोकना	117
7. संगम के उपसर्ग	118
8. लाट प्रदेश में विभिन्न धोर यातनायें	121
9. कूटपूतना का उपद्रव	123
10. चंदनबाला द्वारा आहारदान तथा दीक्षाग्रहण	124
11. वीरस्य धोरं तपः	128
<b>(4) भगवान् महावीर का केवलज्ञान कल्याणक</b>	129

1. भगवान् महावीर का पृथ्वी से 500 धनुष ऊपर उठना	129
2. केवलज्ञान के 11 अतिशय	130
3. गौतम ब्राह्मण का गणधर बनना एवं धर्म तीर्थ प्रवर्तन	131
4. भगवान् महावीर के अनुयायी तथा शिष्यवर्ग	137
5. भगवान् महावीर स्वामी की विश्वधर्म सभा (समवसरण)	138
6. अवगाहन शक्ति की अतिशयता	140
7. समवशरण में रागादि का अभाव	141
8. भगवान् महावीर संबंधी महत्वपूर्ण वर्णन	145
9. दिव्यध्वनि	149
10. दिव्यध्वनि का महत्व	152
11. 18 दोषरहित तीर्थकर भगवान् महावीर।	153
<b>(5) भ. महावीर का मोक्ष (निर्वाण) कल्याणक</b>	155
4. भगवान् महावीर के पूर्वभव की कुछ ज्ञानिकायाँ	160
<b>(1) श्री 24 तीर्थकरों के सामान्य परिचय</b>	172

आ. श्री कनकनंदीजी के ग्रन्थ का विमोचन करते हुए दिल्ली विश्व विद्यालय के प्रोफेसर मदनमोहन जैन बजाज एवं संस्थान के कार्यकर्ता



## आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव की संक्षिप्त जीवनी व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. पूर्व नाम : गंगाधर
2. जन्मस्थल : उत्कल (ब्रह्मपुरी)
3. माता-पिता : श्रीमती रुक्मणि देवी, श्री मोहनचंद
4. लौकिक शिक्षा : उच्च शिक्षा
5. क्षुल्क दीक्षा : अतिशय क्षेत्र पपौरा (टिकमगढ़) म.प्र. (सन् 1978)
6. मुनि दीक्षा : 5 फरवरी 1981 श्रवण बेलगोला (कर्नाटक)
7. दीक्षा प्रदाता गुरु : पूज्य गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी
8. शिक्षा प्रदात्री प्रमुख गुरु : पूज्या गणिनी विजयामति माताजी
9. उपाध्याय पद : 25 नवंबर 1982 हासन (कर्नाटक)
10. प्रशिक्षित सुयोग्य शिष्य समूह : पू. आचार्य पद्मनंदी, पू. आचार्य देवनन्दी, आचार्य कल्प श्रुतनन्दी, पू. उपाध्याय कामकुमार नन्दी, मुनि करुणानन्दी, पू. आ. कुशाग्रनन्दी, पू. उपाध्याय कनकोञ्जलनन्दी (श्रुतसागर) पू. उपाध्याय विद्यानन्दी, पू. आचार्य गुप्तिनन्दी, पू. मुनि आज्ञासागरजी (इत्यादि शताधिक मुनि, आर्यिका वर्ग)
11. मानद उपाधि : सिद्धांत चक्रवर्ती (शमनेवाडी-1985)  
ऐलांचार्य (आरा-1998)  
विश्व धर्म प्रभाकर (दिल्ली 1990)  
ज्ञान-विज्ञान दिवाकर (रोहतक 1991)  
आचार्य (उदयपुर 1997)
12. उपाधि प्रदाता : आ. कुन्थुसागरजी, आ. देशभूषण, आ. अभिनन्दनसागरजी चतुर्विध संघ एवं स्थानीय जन समूह

13. प्रेरक वक्तव्य : 1. Science is part of religion, But Religion is an absolute Science. विज्ञान आंशिक धर्म है, परंतु धर्म पूर्ण विज्ञान है। (आ. कनकनंदी गुरुदेव) 2. You give me co-operation, I shall give you Scientific Religion आप मुझे सहयोग दें, मैं आपको धर्म दूँगा। (आचार्य कनकनंदी गुरुदेव)

14. तीखे प्रहार : अधिकांश भारतीय भारत की महानता को न जानते हैं, न मानते हैं, न आचरण करते हैं परन्तु भारत की बुराइयों के लिए विदेशियों को दोषी मानते हैं। हजारों वर्षों से भारत का जो पतन हो रहा है उसके लिए विदेशी कम दोषी हैं किन्तु भारतीय अधिक दोषी हैं। भारतीय लोग दूसरों की प्रगति से ईर्ष्या करते हैं, बात अधिक काम करते हैं।

15. प्रमुख संगठन : 1. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान एवं 2. धर्म दर्शन सेवा संस्थान।

16. प्रख्याति : प्रखर प्रज्ञाधनी, कुशल संघ शासक, समीक्षात्मक साहित्य सृजेता, सिद्धहस्त व्याख्याता, मार्मिक प्रवचन एवं अनुशासनप्रिय, जैन-जैनेतर, बच्चों, किशोर-किशोरियों, युवक-युवतियों के प्रशिक्षणदाता, बच्चे जिनको प्रिय तथा उनसे आहारादि लेने वाले, जैन-जैनेतर प्रबुद्धवर्ग के लिए आदर्शज्ञानी साधक। चंदा चिठ्ठा तथा सामाजिक द्वन्द-फंद से दूर, शांत-समता, निष्पृह, निराडम्बर के साधक।

17. सक्रिय गतिविधियाँ : साहित्यसृजन, श्रमण संघों का अध्यापन, प्रांशुक्षण शिविर, राष्ट्रीय / अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी, इंटरनेट, ई-मेल के माध्यम से धर्म-दर्शन-विज्ञान का प्रचार-प्रसार, निःस्वार्थरूप से विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत जैन-अजैन, समाजसेवकों / संस्थान / संगठनों को उपाधि प्रदान करना।

18. कीर्तिमान : प्राचीन भारतीय दर्शन व साहित्य के आधार पर वैज्ञानिक तथ्यों की गुण-दोषात्मक समीक्षा-विश्लेषण।

19. साहित्य क्रांति : अद्यावधि विभिन्न भाषाओं में चार लाख प्रतियों का प्रकाशन। अनेक जैन-जैनेतर पत्र-पत्रिकाओं में शताधिक शोधपूर्ण लेखों का प्रकाशन।

20. दीक्षा का उद्देश्य : सत्य का शोध, समत्व की सिद्धि, समाज को दिशा बोध, सुख की सर्वोपलब्धि, धार्मिक, सामाजिक, व्यापारिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, भ्रष्टाचार से विक्षुल्य तथा उनके परिशोधन की भावना।

21. वर्षायोग- शाहगढ़ (म.प्र.) अकलूज (महा.) हासन, तुमकूर, बेलगाँव, शमनेवाडी, शेडवाल (कर्नाटक) अकलूज (महा.) आरा (विहार) बड़ौत, मुजफ्फरनगर (यू.पी.), रोहतक (हरियाणा) निवाई, लावा, बिजोलिया, कोटा, केशरियाजी, सागर्वाडा, सलुम्बर, झाडोल, आयड़-उदयपुर, गींगला (राज.)

22. वाल्यकल से भावित आजीवनक्रत— (1) जीवनभर बालक (ब्रह्मचारी, सीधा-सरल-सहज) रहना (2) आजीवन विद्यार्थी (सतत् अध्ययन, शोधरत रहना)

23. विद्यार्थी जीवन में भावित उद्देश्य — (1) सच्चा निःस्वार्थी जनसेवक राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय नेता बनना या वैज्ञानिक बनना (2) या सच्चा, आदर्श, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, क्रांतिकारी साधु बनना।

24. वर्तमान जीवन के लक्ष्य — १. सत्य की उपलब्धि, प्रचार-प्रसार २. समता की साधना एवं प्राप्ति तथा प्रचार-प्रसार ३. असत्य, अन्याय, रुढ़ि, आडम्बर, मिथ्या परम्परा, अंधविश्वास, विषमता, पक्षपात, गुटबाजी, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, शोषण का निर्मम परिशोधन।

25. प्रिय एवं श्रेय— सत्य, समता, सुख, विज्ञान, गणित, दर्शन, तर्क, नवीन शोध, समीक्षा, बच्चे, स्कूल, कॉलेज में प्रवचन एवं प्रशिक्षण, ग्राम-प्राकृतिक वातावरण— आहार (दूध, धी, फल, हरी सब्जी) विहार-विचार, भोजे—भाले लोग, बच्चों से आहार लेना, उनसे काम करवाना, उनसे बोलना, स्वच्छता, पवित्रता, शुद्धता, पक्षपात रहित—सर्वजीव हितकारी, सुखकारी, धर्म-नीति, व्यवस्था, कानून, राजनीति, अर्थनीति शोषण विहीन समाज, परोपकार, सेवा आदर, कोमल—निश्चल—निःस्वार्थ—सहदयता।

26. तकलीफ — अधिक अध्ययन, अध्यापन, लेखनादि के कारण एवं विश्राम की कमी से अल्पित्त, शारीरिक उष्णता से शारीरिक दाह, भोजन के समय शरीर में जलन; भोजन में खट्टा, गरम, रुखा—सुखा, अध—कच्चा अध—पका, जला हुआ, मिर्चों से तथा बदबु, धुर्गा, गन्दगी, प्रदूषण से दाह, वमन, चक्कर, मूर्छा, हैजा, पीलिया, खांसी आदि रोग की तकलीफ। पख्य यां अनुकूलता में— शीतल, शान्त, प्राकृतिक, स्वच्छ, हवादार वातावरण, ठंडा, मधूर उत्तम भोजन— पानी, दूध, धी, हरीसब्जी, फल, सुखा मेवा यथा— मुनक्का, थण्डाई आदि।

जिस प्रकार दर्पण के माध्यम से मुख को स्वच्छ करना दर्पण की उपादेयता है न कि केवल दर्पण को देखना। उसी प्रकार सत्त्वाहित्य, हितोपदेश, शिक्षा, धार्मिक कार्य के द्वारा स्वयं को पवित्र करना है न कि केवल सत्त्वाहित्य आदि पढ़ना।

— आ. श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

## वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदीजीगुरुदेव द्वारा रचित शोधपूर्ण ग्रंथों की सूची

कृति	मूल्य	
अ		
1. अनेकांतसिद्धान्त (द्वि.सं.)	41/-	
2. अहिंसामृतम्	1.6/-	
3. अतिमानवीय शक्ति (द्वि.सं.)	31/-	
4. अयोध्या का पौराणिक ऐतिहासिक एवं राजनैतिक विश्लेषण	11/-	
5. अग्नि परीक्षा	11/-	
6. अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग	21/-	
7. अपुनरागमन पथ : मोक्षमार्ग	5/-	
8. अनुभव चिंतामणि	10/-	
आ		
1. आत्मोत्थानोपायः तपः	9/-	
2. आचार्य कनकनंदीजी की दृष्टि में शिक्षा	11/-	
3. आदर्श विहार—आहार—विचार	35/-	
4. आदर्श जीवन की प्रायोगिक क्रियायें	5/-	
5. आहारदान से अभ्युदय	9/-	
6. आहारदान विधि (हिन्दी, मराठी)		
इ		
1. आध्यात्म मनोविज्ञान (इष्टोपदेश)	51/-	
उ		
1. उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	15/-	
ज		
1. जीने की कला	7/-	
2. ज्वलन्त शंकाओं का शीतल समाधान (द्वि.सं.)	41/-	
3. जीवन्त धर्म सेवाधर्म	11/-	
4. जैन धर्मावलम्बी संख्या और उपलब्धि	21/-	
5. जिनार्चना I भाग (त्रि.सं.)	51/-	

6. जिनार्चना II भाग	21/-	1. नग्न सत्य का दिग्दर्शन	15/-
7. जीवन विकास एवं विनाश के सूत्र	10/-	2. नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान (हिन्दी, अंग्रेजी)	20/-
त		3. निमित्त उपादान मीमांसा (द्वि.सं.)	9/-
1. तत्त्वानुचितन	5/-	4. निकृष्टम् क्रूरतम् स्वार्थ प्राणी 10/- मनुष्य	
द		प	
1. दिग्म्बर मुनि नग्न क्यों? (15वाँ सं.) (हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू)	5/-	1. पुण्य पाप मीमांसा (द्वि.सं.)	15/-
2. दंसण मूलो धर्मो तहा संसार 15/- मूल हेदूं मिछत्तं		2. पाश्वर्नाथ का तपोपर्सर्ग कैवल्यधाम बिजोलिया	15/-
ध		3. पूजा से मोक्ष, पुण्य तथा पाप भी	21/-
1. धर्म विज्ञान बिन्दु	15/-	4. पुरुषार्थसिद्धयुपाय (अहिंसा का विश्वरूप)	101/-
2. धर्म ज्ञान एवं विज्ञान	15/-	5. प्रथम शोध बोध आविष्कार 35/- एवं प्रवक्ता (हिन्दी, अंग्रेजी)	
3. धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान भाग I (द्वि.सं.)	20/-	6. प्राचीन भारत की 72 कलायें 15/-	
4. धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान भाग II 10/-		ब	
5. धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका भाग I (षष्ठं सं.)	11/-	1. 72 कलायें	5/-
6. धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका भाग II (षष्ठं सं.)	21/-	2. बालबोध जैनधर्म	7/-
7. धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका भाग III (षष्ठं सं.)	25/-	3. बंधुवंधन के मूल	61/-
8. धर्म दर्शन एवं विज्ञान (द्वि.सं.) 51/-		भ	
9. धर्म प्रवर्तक 24 तीर्थकर (द्वि.सं.)	11/-	1. भाग्य एवं पुरुषार्थ (चतुर्थ सं.)	15/-
10. धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन 5/-		2. भारतीय आर्य कौन, कहाँ से, कबसे, कहाँ के?	21
11. ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.)	21/-	3. भाव एवं भाग्य तथा अंग 151/- विज्ञान (सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा)	
12. धर्म : जैन धर्म तथा भ. महावीर	25/-	4. भविष्यफल विज्ञान (द्वि.सं.) 101/-	
न		5. भगवान् महावीर 5/- उनका दिव्य संदेश	

6. भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने 5/- के लिए समग्र क्रांति चाहिए	श
7. भ्रष्टाचार उन्मूलन 5/-	1. शाश्वत समस्याओं का समाधान 18
प	2. शांति क्रांति के विश्वनेता 51/- बनने के उपाय
1. मनन एवं प्रवचन (द्वि.सं.)	3. शिक्षा शोधक स्मारिका 101/- (तृतीय राष्ट्रीय वै.सं.)
2. मंत्र विज्ञान (द्वि.सं.)	4. शकुन विज्ञान 30/-
3. मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास	5. शोध पूर्ण ग्रंथ तथा ग्रंथकर्ता 10/- आचार्य कनकनंदीजी
य	स
1. युग निर्माता भ. ऋषभदेव 41/- (द्वि.सं.)	1. संगठन के सूत्र (द्वि.सं.) 25/-
2. युगनिर्माता भ. ऋषभदेव 51/- (अंग्रेजी)	2. संस्कार (हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, कन्नड़, गुजराती) (15 वाँ सं.)
3. युग निर्माता भ. ऋषभदेव 5/- (पद्यानुवाद)	3. संस्कार बृहत् 30/-
4. ये कैसे धर्मात्मा— निर्वसनी 11/- राष्ट्रसेवी	4. संस्कार सचित्र (तृ.सं.) 11/-
ल	5. स्वप्न विज्ञान (द्वि.सं.) 51/-
1. लेश्या मनोविज्ञान (द्वि.सं.) 11/-	6. स्वतन्त्रता के सूत्र 71/-
2. विनय मोक्ष द्वारा 6/-	7. सत्यधर्म 5/-
3. विश्व इतिहास 25/-	8. सत्यसाम्यसुखामृतम् 301/- (प्रवचनसार)
4. विश्व धर्म सभा समवशरण 21/-	9. सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान 201 (बृहत्)
5. विश्व धर्म विज्ञान (द्रव्य संग्रह) 41	10. सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान 21/- (छोटा)
6. व्यसन का धार्मिक वैज्ञानिक 30/- विश्लेषण (तृ.सं.)	11. स्मारिका (प्रथम संगोष्ठी) 81/-
7. विश्व शांति के अमोघ उपाय 10/- (द्वि.सं.)	12. सत्य शोधक स्मारिका 51/- (द्वि.सं.)
8. विश्वधर्म के दशलक्षण 41/-	13. संस्कृति की विकृति 10/-
9. व्यक्ति एवं समाज निर्माण 15/- के आद्य कर्तव्य (हिन्दी, मराठी)	14. समग्र क्रांति के उपाय 15/-
10. विश्व, प्रतिविश्व एवं श्याम विवर	15. सत्यान्वेषी आ. कनकनंदी 5/-

जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व (हिन्दी, अंग्रेजी)	F	
16. सेवाधर्म जीवन्त धर्म 11/- ह	L	1. Fate and Efforts 15/-
1. हिंसामय यज्ञ का प्रारंभ क्यों? (द्वि.सं.) (हिंसा की प्रतिक्रिया है प्राकृतिक प्रकोपादि) क्ष	N	1. Laishya Psychology 11/-
1. क्षमा वीरस्य भूषणम् (त्रु.सं.) 25 त्र	P	1. Nakedness of Digamber 5/- Jain Saints and Kesh lonch
1. त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य 25/- (द्वि.सं.) श्र	W	1. Philosophy of scientific 21/- Religion (द्वि.सं.)
1. श्रमण संघ सहिता 30/-		1. What kind of "Dharmatma" (Pelousman) these are. 21/-

## आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के संघ के विशेष कार्यक्रम

1. www.jainkanaknadh.org (इंटरनेट वेबसाइट)
2. E-mail - info@Jainkanaknadh.org  
jainkanaknadh@rediffmail.com
3. राष्ट्रीय / अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियाँ
4. धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन
5. धार्मिक प्रशिक्षण कक्षायें
6. स्व संघ परसंघ के साधुओं के अध्ययन, अध्यापन के कार्यक्रम
7. प्रश्नमंच एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, भजन, भाषण, सेवा
8. बच्चों, युवक-युवतियों को संस्कारवान् बनाना एवं उनसे आहार लेना।
9. हर क्षेत्र में अच्छे व्यक्तियों को एवं संस्थानों को पुरस्कृत करना।
10. हर विधा के वैज्ञानिक शोधपूर्ण साहित्य का सुजन एवं प्रकाशन।
11. गरीब, असहाय, रोगी, विपन्न मनुष्य एवं पशु-पक्षियों की सेवा, सहायता करना।
12. व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं विश्व में समता, सुख, शांति, मित्रता, संगठन

आदि की स्थापना के लिए प्रयास।

13. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बड़ौत, मुजफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलुम्बर, मुंबई, अमेरीका)
14. धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर, अमेरीका)

## आगामी महान् योजना

प्रद्युम्न एस. झवेरी (अमेरीका) की भावना एवं सहायता से आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के सम्पूर्ण साहित्य का अंग्रेजी में अनुवाद, प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार। एतदर्थं अमेरीकी में संस्थान की शाखा की स्थापना एवं भारत से आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव के उद्देश्य / साहित्य आदि के प्रचार-प्रसार हेतु योग्य व्यक्तियों का अमेरीका में भ्रमण। आचार्य श्री के उद्देश्य, साहित्य तथा कार्यों के लिए अमेरीका में ध्रुव फंड की स्थापना।

## आगामी प्रकाशनाधीन ग्रंथ

1. न्याय, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजविज्ञान (नीति वाक्यामृतम् की विस्तृत वैज्ञानिक समीक्षात्मक टीका) पृष्ठ सं. लगभग-1000/-
2. भारत का दिव्य संदेश- भारत की मूल परंपरा यथा- जैन, बौद्ध, वैदिक, धर्म के श्रेष्ठ ग्रंथों की आधुनिक समीक्षात्मक टीका सहित समाधिशतक (जैन) उपनिषद् (वैदिक) धम्पद (बौद्ध)
- तीनों ग्रंथों का प्रकाशन एक ही जिल्द में किया जायेगा, जिससे विश्व के लोग भारत के दिव्य आध्यात्मवाद को समझें एवं भावात्मक एकता के सूत्र में बँधें। पृष्ठ लगभग 500 से 750 तक। द्रव्यदाता- ब्र. प्रशांत, प्रेमकुमार संघई जैन-परभणी (महाराष्ट्र)
3. परम्परा धर्म एवं विज्ञान- (परम्पराओं में धर्म क्या है ? अधर्म क्या है ? विज्ञान क्या है ? अविज्ञान क्या है ? यह सिन्धु किया जायेगा। पृष्ठ अनुमानतः 100
4. विश्व प्रतिविश्व एवं तमस्कन्ध (श्याम विवर) वैज्ञानिक दृष्टिकोणानुसार ब्रह्माण्ड के कुछ श्याम विवर होते हैं। इसका विस्तृत वर्णन धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करके यह सिन्धु किया जायेगा कि यह श्यामविवर संभवतः तमस्कन्ध है। पृष्ठ अनुमानतः 150

5. ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (भाग द्वितीय) इस कृति में चार आर्तध्यान, 4 रौद्रध्यान, धर्मध्यान तथा शुक्ल ध्यान का सविस्तार धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्णन किया जायेगा। पृष्ठ लगभग 300-400

6. परम पर्यावरण वैज्ञानिक तीर्थकर एवं पर्यावरण की सुरक्षा— इस कृति में यह सिद्ध किया जायेगा कि केवल वायु, जल, मृदा, शब्द ही प्रदूषण नहीं होता है बल्कि भावात्मक प्रदूषण सर्व प्रदूषण का जनक है। विश्व के महानतम प्रथम पर्यावरण वैज्ञानिक तीर्थकर होते हैं। पृष्ठ अनुमानतः 400 से 500

7. कल्याणकारक— जैन आयुर्विज्ञान— पृष्ठ अनुमानतः 1000

8. भाव ही कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु— इस कृति में यह सिद्ध किया जायेगा कि वस्तुतः कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु व्यक्ति के भाव ही हैं। भावों का प्रभाव शरीर, मन, आत्मा, समाज, प्रकृति, इहलोक-परलोक में किस प्रकार पड़ता है; इसका विस्तृत वर्णन धार्मिक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जायेगा। पृष्ठ अनुमानतः 200

9. “सत्य, समता, शांति के साधक: आचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव”— अनेक वर्षों से अनेक व्यक्तियों की प्रार्थना एवं मांग के कारण आचार्यश्री के बाल्यकाल, विद्यार्थी जीवन एवं विभिन्न संत, विचारक, वैज्ञानिक, नेताओं से चर्चा, अध्ययन, अध्यापन, शिविर, संगोष्ठी, प्रवचन, साहित्यलेखन इत्यादि के माध्यम से जैनधर्म को वैज्ञानिक दृष्टि से विश्वस्तर तक पहुँचाने की कार्य योजनायें, एवं प्रेरक प्रसंग आदि के बारे में विस्तृत जानकारी।

10. श्रावक संघ संहिता (आदर्श नागरिकों का संविधान) आदर्श गृहस्थाश्रम / आदर्श नागरिकों के आचार / विचार / अधिकार एवं कर्तव्यों के बारे में प्राचीन आगमों के सूत्रों की आधुनिक समीक्षा— पृष्ठ प्रायः 500

11. पुराण मीमांसा — पुराणों की आधुनिक, वैज्ञानिक, युगानुकूल समीक्षा

12. महापुरुषों की जीवनी— प्राचीन तीर्थकर, आचार्य, क्रांतिकारी, राजनीतिज्ञ, सामाजिक, वैज्ञानिक, साहित्यकारों का आधुनिक समीक्षात्मक वर्णन।

13. उन्नति के सोपान— जीवन विकास रूपी महल के शिखर पर पहुँचने के लिए धैर्य, सहिष्णुता, परोपकार, सदाचार, निःस्वार्थ सेवा, एकाग्रता, ईर्ष्या का अभाव, स्वस्थ प्रतियोगिता, आत्म गौरव (स्वाभिमान) उदारता आदि सोपानों का आध्यात्मिक / मनोवैज्ञानिक / अनुभवात्मक वर्णन।

14. भूकम्प एवं प्राकृतिक विपत्तियों का कारण एवं निवारण— भूकम्प, बाढ़, अनावृष्टि, तृफान, बवंडर के कारण, निवारणोपाय, पूर्वानुमान का धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्णन।

15. आधुनिक साधुओं एवं गृहस्थों के मार्ग दर्शक— वर्तमान के द्रव्य, क्षेत्र, काल, परिस्थिति, मनःस्थिति, आहार-विहार के अनुसार साधुओं के व्यवहार / साधना कैसे हो, आगम एवं अनुभवात्मक वर्णन। पृष्ठ संख्या— 300

16. पत्रिका प्रकाशन — आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के संघ के उद्देश्य, कार्यक्रम, संस्थान, शिविर, संगोष्ठी इत्यादि के माध्यम से देश-विदेश में प्रचार-प्रसार के लिए पत्रिका का प्रकाशन संभवतः माँग एवं आवश्यकतानुसार पहले षट्मासिक, फिर चातुर्मासिक फिर त्रैमासिक पुनः मासिक रूप में प्रकाशित करने की योजना है। यह योजना डॉ. एम.एम. जैन (बजाज) प्रो. दिल्ली विश्व विद्यालय तथा अनेकों विद्वान सञ्जनों के अनेक वर्षों के आग्रह के कारण प्रारंभ करने का विचार है।

## संस्थान की नियमावली

1. विवक्षित पुस्तक के प्रकाशमान के द्रव्यदाता को उस किताब की दशमाश प्रतियां दी जायेंगी।

2. ग्रंथ प्रकाशक (द्रव्यदाता) ग्रंथमाला का आजीवन सदस्य रहेगा तथा उन्हें ग्रंथमाला से प्रकाशित पुस्तक की एक-एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

3. साधु, साध्वी, विशिष्ट विद्वज्जन और विशिष्ट धर्मायतनों को पुस्तकें निःशुल्क दी जायेंगी।

4. ग्रंथमाला से संबंधित कार्यकर्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक-एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

आपका आर्थिक सहयोग

1. आजीवन सदस्यता	5000/- रु.
2. संरक्षक	11000/- रु.
3. परम संरक्षक	25000/-रु.
4. शिरोमणि संरक्षक	51000/-रु.
5. परम शिरोमणि संरक्षक	100000/-रु.

आपका अन्य सहयोग  
संगोष्ठी, शिविर आदि में साहित्य, पुरस्कार आर्थिक सहायता, श्रमदान आदि देकर  
आपका नाम साहित्य में

संस्थान की विशेष पुस्तक, स्मारिका में संस्थान के कार्यकर्ता शिरोमणि और  
परम शिरोमणि संरक्षक के नाम छपेंगे। जो जिस साहित्य या कार्य में अर्थ, श्रम,  
बौद्धिक सहायता करेगा उसमें उसका नाम आयेगा और सम्मानित किया जायेगा।

### आप से प्राप्त धन का सदुपयोग

ज्ञान, दान, आजीवन—सदस्यता आदि से प्राप्त धन, गुप्तदान, साहित्य—विक्रय  
से प्राप्त धन, संस्थान को प्राप्त पुरस्कार का धन, साहित्य प्रकाशन आदि उपर्युक्त  
संस्थान के कार्य क्षेत्रों में संस्थान के वैज्ञानिक यंत्रादि क्रय में सदुपयोग किया जाता है।

नियम : पूरे सेट क्रय करने पर पुस्तकालय, वांचनालय, शिक्षण संस्थाओं  
के लिए 15% छूट से शास्त्र दिये जाएंगे तथा सामान्य स्वाध्याय प्रेमियों के लिये  
10% छूट है, डाक खर्च अलग से है।

निवेदक—(1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान, (2) धर्म दर्शन सेवा संस्थान

## महान् चिनाकों की दृष्टि में जैन धर्म तथा भ. महावीर

(1) जैनधर्म बहुत ऊँची पंक्ति का धर्म है, इसके मुख्य तत्व विज्ञान के आधार  
पर रखे हुए हैं— ऐसा मेरा अनुमान ही नहीं, पूर्ण अनुभव है। जैसे—जैसे पदार्थ,  
विज्ञान आगे बढ़ेगा जैन धर्म के सिद्धान्तों को वह अधिक से अधिक सिद्ध करेगा।

— डॉ. ए.ल. टैसी टोरी

(2) The Jain have written great master pieces only for the  
benfit of the world. (डॉ. हर्टल)

(3) यदि आज मानवता को बचाना है तो महावीर के बताए हुए रास्ते के  
बिना दूसरा कोई रास्ता नहीं। (भूतपूर्व राष्ट्रपति राधाकृष्णन)

(4) अहिंसा का सबसे अधिक विवरण महावीर ने प्रस्तुत किया है।  
(महात्मा गांधी)

(5) महावीर का उपदेश किसी एक सम्प्रदाय के लिए नहीं, प्राणिमात्र के लिए है।  
(चक्रवर्ति राजगोपालाचार्य)

(6) आज के साइंस के संस्थापक महावीर थे। (रिसर्च स्कॉलर माधो आचार्य)

(7) बौद्धिक चिंतन में जैन दर्शन सर्वोपरि है। (दिनकर)

(8) महावीर स्वामी ने भारत में ऐसा संदेश फैलाया कि धर्म के बाल सामाजिक  
रुद्धियों के पालन करने में नहीं किन्तु सत्य धर्म का आश्रय लेने से मिलता है।  
धर्म में मनुष्य के प्रति कोई स्थायी भेदभाव नहीं रह सकता।

(विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर)

(9) महावीर स्वामी ने जन्म—मरण की परंपरा पर विजय प्राप्त की थी, उनकी  
शिक्षा विश्व मानव के कल्याण के लिए थी। (आचार्य नरेन्द्र देव)

(10) जगत के अन्य किसी भी धर्म में अहिंसा सिद्धान्त का प्रतिपादन इतनी  
सफलता से नहीं मिलता। (डॉ. राजेंद्र प्रसाद)

(11) अब तक जैन धर्म को जितना जान सका हूँ मेरा दृढ़ विश्वसा हो  
गया है कि विरोधी सज्जन यदि जैन साहित्य का मनन कर लेंगे तो विरोध करना  
छोड़ देंगे। (डॉ. गंगानाथ ज्ञा. ए.म.ए.डी.लिट.)

(12) जैनधर्म में मनुष्य की उन्नति के लिए सदाचार को अधिक महत्व प्रदान  
किया गया है। जैन धर्म अधिक — मौलिक स्वतंत्र तथा सुव्यवस्थित है।  
(जॉ. ए. गिरनो)

(13) जैन—संस्कृति मनुष्य—संस्कृति है, जैन—दर्शन भी मनुष्य दर्शन ही है।  
जिन देवता नहीं थे किन्तु मनुष्य थे। (प्रो. हरि सत्य भट्टाचार्य)

(14) मैं अपने देशवासियों को दिखाऊंगा कि कैसे उत्तम नियम और ऊँचे  
विचार जैन धर्म और आचार्य में हैं, जैन साहित्य बौद्ध साहित्य से काफी बढ़—  
चढ़कर है। ज्यों—ज्यों मैं जैनधर्म तथा उसके साहित्य को समझता हूँ त्यों—त्यों मैं  
अधिकाधिक पसंद करता हूँ। (डॉ. जान्स हर्टल, जर्मनी)

(15) एक फिलासफर के नाते मैं जैन धर्म के अध्यात्मवाद, त्याग और अहिंसा  
आदि सिद्धान्तों का बड़ा ही आदर करता हूँ। (प्रो. रेमाण्ड पाइपर, न्यूयार्क)

(16) जैनधर्म सदृश महान् धर्म को पाकर मैं धन्य हूँ। मैं प्रतिदिन स्वाध्याय  
करता हूँ। आत्मानुशासन मेरा जीवन साथी बन गया है। (श्री अल्फ्रेड हडसन,  
हेडनेस फोर्ड)

(17) नये धार्मिक आन्दोलन चलाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जैन  
धर्म में दुःखी दुनिया के हित के लिए सब कुछ मौजूद है। उसका ऐतिहासिक आधार  
भी सारभूत है। जैनधर्म ने ही पहले पहल अहिंसा का प्रचार किया, दूसरे धर्मों

ने उसे वहां से ही लिया। (श्री प्रो. लुई रेनाड, पी.एच.डी., पेरिस)

(18) महावीर स्वामी ने शब्दों में ही नहीं अपितु रचनात्मक जीवन में एक महान आंदोलन किया। वह आन्दोलन जो नवीन एवं संपूर्ण जीवन में सुख पाने के लिए नव आशा का स्रोत था, जिसे कि हम यहाँ धर्म कह रहे हैं।

(श्रीमती आइस डेविडस, डी.लिट. एम.ए.)

(19) भगवान् महावीर आलौकिक महापुरुष थे, वे तपस्त्रियों में आदर्श विचारों में महान्, आत्मविकास में अग्रसर और सभी विद्याओं में पारंगत थे। उन्होंने अपनी तपस्या के बल से उन विद्याओं को रचनात्मक रूप देकर जन समूह के समक्ष उपस्थित किया था। (डॉ. अर्नेस्ट लाय मैन, जर्मनी)

(20) मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य एक सफल जैन प्रचारक बनने का है। मुझे विश्वास है कि जैन धर्म के प्रचार से लोक का सच्चा कल्याण होगा।

(श्री मैथ्यू मैक्के, लन्डन)

(21) जैन धर्म का संपूर्ण तत्त्वज्ञान (फिलासफी) अनेकान्तमूलक है। अर्थात् उसके मूल में अनेकान्त-दृष्टि मौजूद है। अनेकान्त की कथन—शैली को स्याद्वाद कहा गया है। (डॉ. नेमीचंद, डी.लिट. – इन्डौर)

(22) भगवान् महावीर अहिंसा के अवतार थे। उनकी पवित्रता ने संसार को जीत लिया था। महावीर स्वामी का नाम यदि इस समय किसी भी सिद्धांत के लिए पूजा जाता है तो वह अहिंसा है। प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा तत्व की प्रधानता हो। अहिंसा तत्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वे महावीर स्वामी थे।

(महात्मा गांधी)

(23) वे महावीर अर्थात् महान विजयी इतिहास के सच्चे महापुरुष हैं। उन्नतता और हिंसा के नहीं किन्तु प्रेम और निराभिमानता के महावीर थे।

– टी. एल. वास्वानी

(24) प्राचीनभारत के निर्माता पुरुषों में श्री महावीर स्वामी एक थे।

– श्री विजयराघवन

(25) महावीर की शिक्षा में ऐसी प्रतीति होती है मानों वे आत्मा के विजय कार्य हों। जिसने अंततः इसी लोक में स्वाधीनता और जीवन पा लिया हो। हजारों आदमी उनकी और टकटकी लगाये हैं। उनको वैसी पवित्रता और

शांति की चाह है। – डॉ. अल्बर्टो पाग्गी, जिनोवा (इटली)

(26) संसार सागर में डूबते हुए मानवों ने अपने उद्धार के लिए पुकारा। इसका उत्तर श्री महावीर ने जीव को उद्धार का मार्ग बतलाकर दिया। दुनिया में ऐक्य और शांति चाहने वालों का ध्यान श्री महावीर की उदात्त शिक्षा की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। (डॉ. वाल्टर शूब्रिंग)

(27) महावीरने भारत में निर्वाण के इस सन्देश का घोष किया कि धर्म रिवाजमात्र नहीं बल्कि यथार्थता है। निर्वाण पद की प्राप्ति सम्प्रदाय के बाह्य संस्कारों से कर लेने से ही नहीं हो जाती बल्कि सच्चे धर्म का आश्रय लेने से ही होती है। धर्म मनुष्यों के मध्य कोई भेद-भाव नहीं उत्पन्न करता। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस उपदेश ने जाति-भेद को दबा दिया और समस्त देश को जीत लिया (रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

(28) जैन दर्शन बहुत ही ऊंची पंक्ति का है। इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान शास्त्र के आधार पर रखे हुए हैं। ऐसा मेरा अनुमान ही नहीं पूर्ण अनुभव है। ज्यों-ज्यों पदार्थ विज्ञान आगे बढ़ता जाता है, जैन धर्म के सिद्धांतों को सिद्ध करता है और मैं जैनियों को इस अनुकूलता का लाभ उठाने का अनुरोध करता हूँ।

(29) अहिंसा सभ्यता का सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट दरजा है। यह निर्विवाद सिद्ध है और जबकि यह सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट दरजा जैनधर्म का मूल है तो यह सर्वाङ्ग सुन्दरता के साथ कितना पवित्र होगा, यह आप खुद ही समझ सकते हैं। जैनी लोग अहिंसा देवी के पूर्ण उपासक होते हैं और उनके आचार बहुत शुद्ध और प्रशंसनीय होते हैं, उनके व्रत और सप्त व्यसन वगैरह बातों को जानने से मुझे बहुत खुशी हुई और उनके चरित्र की तरफ मेरे दिल मे बहुत आदर उत्पन्न हुआ। जैन मुनियों के आचार देखने से मुझे वे अंति कठिन जान पड़ते हैं लेकिन वे ऐसे तो पवित्र हैं कि हर एक के अन्तःकरण में बहुत भक्तिभाव और आदर उत्पन्न करते हैं। ऐसे चरित्र से सर्व साधारण पर प्रभाव पड़ता है। (डॉ. ए.ल.पी. टेसीटोरी इटालियना)

(30) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि मुझे महावीर स्वामी के प्रदेश में रहने का सौभाग्य मिला है। अहिंसा जैनों की विशेष संपत्ति है। जगत् के अन्य किसी भी धर्म में अहिंसा सिद्धान्त का प्रतिपादन इतनी सफलता से नहीं है।

(31) डॉ. राधाकृष्णन : यदि मानवता को विनाश से बचाना है और कल्याण

मार्ग पर चलाना है तो भगवान् महावीर के संदेश और उनके बताए हुए मार्ग को ग्रहण किए बिना और कोई रास्ता नहीं।

(32) राजगोपालाचार्य : भगवान् महावीर का संदेश किसी खास कौम या फिरके के लिए नहीं है बल्कि समस्त संसार के लिए है। अगर जनता महावीर स्वामी के उपदेश के अनुसार चले तो वह अपने जीवन को आदर्श बना सकती है। संसार में सच्चा सुख और शांति उसी सूरत में प्राप्त हो सकती है। जब हम उनके बताए मार्ग पर चलें।

(33) शेरे पंजाब लाला लाजपत राय : भगवान् महावीर समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाले महापुरुष हैं।

(34) गोविंदबल्लभ पंत : जैन धर्म देश का बहुत प्राचीन धर्म है। इसके सिद्धान्त महान् हैं और सिद्धान्तों का मूल आधार अहिंसा और सत्य है। गांधीजी ने अहिंसा और सत्य के जिन सिद्धान्तों को लेकर जीवनभर कार्य किया वही सिद्धान्त जैनधर्म की प्रमुख वस्तु है। जैनधर्म के प्रतिष्ठापकों तथा महावीर स्वामीने अहिंसा के कारण ही सबको प्रेरणा दी थी।

(35) जार्ज वर्नाड शा : जैन धर्म के सिद्धान्त मुझे अत्यंत प्रिय है। मेरी आकांक्षा है कि मृत्यु के पश्चात् मैं जैन परिवार में ही जन्म धारण करूँ।

(36) नारायण स्वामी : भगवान् महावीर ने दुनिया को सच्चा सुख और शांति देने वाले अहिंसा धर्म की शिक्षा दी। पश्चिमी देशों के लोग अहिंसा में विश्वास नहीं रखते यही कारण है कि वहाँ लड़ाई के बादल उठते रहते हैं।

(37) पं. माधवाचार्य : जैन फिलोसफरों ने जैसा पदार्थ के सूक्ष्म तत्व का विचार किया है उसको देखकर फिलोसफर बड़े आश्चर्य में पड़ जाते हैं। वे कहते हैं कि महावीर स्वामी आजकल की साइंस के सबसे पहले जन्मदाता हैं।

(38) आनंदेवल डॉक्टर सैयद हुसैन : आज संसार हिंसा से तंग आ चुका है और अहिंसा पर आधारित एक नए जीवन आदर्श की खोज में है जिसमें प्रेम और समता के भाव हों। अतः अहिंसा और भ्रातृत्व भाव का संदेश जो भगवान् महावीर ने दिया, वह परस्पर जूझती हुई दुनिया को सीखाना चाहिए।

(39) लाल बहादुर शास्त्री : रिश्वत, बैंडीमानी, अत्याचार अवश्य नष्ट हो जाएं यदि हम भगवान् महावीर की सुन्दर और प्रभावशाली शिक्षाओं का पान करें। बजाय इसके कि हम दूसरों को बुरा कहें और उनमें दोष निकालें, अगर

भगवान् महावीर के समान हम सब अपने दोषों और कमज़ोरियों को दूर कर लें तो सारा संसार खुद-ब-खुद सुधर जाए।

(40) काका कालेकर : भगवान् महावीर ने केवल मानव जाति के लिए नहीं, वरन् समस्त प्राणियों के लिए अहिंसा का प्रचार किया।

(41) आचार्य समन्तभद्रः

दया -दम-त्याग-समाधि-निष्ठ, नय-प्रमाण-प्रकुताऽऽज्जसार्थम्।

अधृत्यमन्यैरखितैः प्रचादै- जिन! त्वदीयं मतमद्वितीयम्

हे वीर जिन! आपका मत-अनेकान्त शासन-दया (अहिंसा), दम (संयम), त्याग (परिग्रह-त्यजनः) और समाधि (प्रशस्त ध्यानः की निष्ठात्परता) को लिए हुए है। पूर्णतः अथवा देशतः प्राणी हिंसा से निवृत्ति तथा परोपकार में प्रवृत्ति रूप वह दयाव्रत जिसमें असत्यादि से विरक्ति रूप सत्यव्रतादि का अन्तर्भाव (समावेश) है। मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रिय विषयों में राग-द्वेष की निवृत्ति रूप संयम बाह्य और अस्थन्तर परिग्रहों का स्वेच्छा से त्यजन अथवा दान और धर्म तथा शुक्ल ध्यान का अनुष्ठान में चारों उसके प्रधान लक्ष्य हैं। नयों तथा प्रमाणों के द्वारा सम्यक् वस्तु तत्व को बिल्कुल स्पष्ट करने वाला है और दूसरे सभी प्रवादों से अबाध्य है। दर्शन- मोहोदय के वशीभूत हुए सर्वथा एकान्तवादियों के द्वारा प्रकल्पितवादों में से कोई भी वाद उसके विषय को बाधित अथवा दूषित करने के लिए समर्थ नहीं है। यही सब उसकी विशेषता है और इसलिए वह अद्वितीय है- अकेला ही सर्वाधिनायक होने की क्षमता रखता है।

सर्वान्त वल्तद् गुण - मुख्य कल्पं, सर्वान्त शून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।

सर्वाऽपदामन्तकरं निरन्तं, सर्वोदय तीर्थमिदं तवैव॥

(युक्तानुशासन)

हे वीर भगवान् ! आपका तीर्थ प्रवचनरूप शासन अर्थात् परमागम वाक्य जिसके द्वारा संसार महासमुद्र को तिरा जाता है सर्वान्तवान् है- विशेष, सामान्य द्रव्य-पर्याय, विधि-निषेध, एक-अनेक आदि धर्मों को लिए हुए हैं और गौण तथा मुख्य की कल्पना को साथ में लिए हुए हैं। एक धर्म मुख्य है तो दूसरा धर्म गौण है, इसी से सुव्यवस्थित है, उसमें असंगतता अथवा विरोध के लिए कोई अवकाश नहीं है। जो शासन वाक्य धर्मों में पारस्परिक अपेक्षा का प्रतिपादन नहीं करता, उन्हें सर्वथा निरपेक्ष बतलाया है, वह सर्वधर्मों से शून्य है, उसमें किसी

भी धर्म का अरितत्व नहीं बन सकता और न उसके द्वारा पदार्थ व्यवस्था ही ठीक बैठ सकती है। अतः आपका ही यह शासन तीर्थ सर्व दुखों का अन्त करनेवाला है, यही निरन्त है, किसी भी मिथ्या दर्शन के द्वारा खण्डनीय नहीं है, और यही सब प्राणियों के अभ्युदय का कारण तथा आत्मा के पूर्ण अभ्युदय का साधक ऐसा सर्वोदय तीर्थ है।

**तवजिन! शासन विभवो, जयति कलावपि गुणाऽनुशासन विभवः।  
दोषकशाऽसन विभवः स्तवन्ति, चैनं प्रभा कुशाऽसन विभवः॥**

हे वीर जिन! आपका शासन – महात्म्य – आपके प्रवचन का यथावस्थित पदार्थों के प्रतिपादन स्वरूप घोर कलिकाल में भी जय को प्राप्त है। सर्वोक्तृष्ट रूप से प्रवृत्त रहा है उसके प्रभाव से गुणों में अनुशासन–प्राप्त शिष्य जनों का भव विनष्ट हुआ है। संसार परिभ्रमण सदा के लिए छूटा है इतना ही नहीं, किन्तु जो दोषरूप चाबुकों का निराकरण करने में समर्थ है, चाबुकों की तरह पीड़ाकारी काम–क्रोधादि दोषों को अपने पास फटकने नहीं देते और अपने ज्ञानादि तेज से जिन्होंने आसन–विभुओं को लोक के प्रसिद्ध नायकों को निस्तेज किया है वे गणधर देवादि महात्मा भी आपके इस शासन के महात्म्य की स्तुति करते हैं।

**बहुगुण - सम्पद सकलं परमतमपि मधुरं-वचनं-विन्यास सकलम्।  
नय-भक्तभवतंसकलं तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम्॥**

(स्वयम्भू स्तोत्र)

हे वीर जिनदेव! जो परमत है – आपके अनेकान्त–शासन से भिन्न दूसरों का शासन है, वह मधुर वचनों के विन्यास से कानों को प्रिय मालूम देने वाले वाक्यों की रचना से मनोज्ञ होता हुआ भी, प्रकट रूप में मनोहर तथा सुचिकर जान पड़ता हुआ भी बहुगुणों की सम्पत्ति से विहत है – सत्य शासन के योग्य जो यथार्थवादिता और पर हित प्रतिपादिता–रूप बहुत से गुण हैं उनकी शोभा से रहित हैं – सर्वथैकान्तवाद का आश्रय लेने के कारण वे शोभन गुण उसमें नहीं पाये जाते – और इसलिए वह यथार्थ वस्तु के निरूपणादि में असमर्थ होता हुआ वास्तव में अपूर्ण सवाध तथा जगत् के लिए अकल्याणकारी है। किंतु आपका मत–शासन नयों के भंग–स्यादस्ति–नास्त्यादि रूप अलंकारों से अलंकृत है अथवा नयों की भक्ति–उपासना रूप आभूषण को प्रदान करता है – अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर नयों के सापेक्ष व्यवहार की सुंदर शिक्षा देता है, और इस तरह

यथार्थ वस्तु–तत्व के निरूपण और परहित–प्रतिपादनादि में समर्थ होता हुआ बहुगुण–सम्पत्ति से युक्त है – (इसी से) पूर्ण है ओर समन्तभद्र है – सब और से भद्ररूप निर्बाधतादि विशिष्ट शोभा सम्पन्न एवं जगत् के लिए कल्याणकारी है।

**(42) आचार्य पूज्यपाद –**

**नमो नमः सत्वहितं कराय, वीराय भव्यांबुजभास्कराय।  
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥**

समस्त, प्राणियों के हित करने वाले भव्य जीवों के हृदय कमलों को सूर्य के समान प्रफुल्लित करने वाले अनन्त आकाश द्रव्य को देखने वाले देवों के द्वारा पूजित सामान्य रूप से जिनेन्द्र देव के लिए नमस्कार हो। उसमें भी इस गुण के विशेष देवों के भी अधिदेव आराध्य वर्धमान स्वामी के लिए बारम्बार नमस्कार हो।

**नमो जिनायत्रिदशार्चिताय, विनष्टदोषाय गुणार्णवाय।  
विमुक्तमार्ग प्रतिबोधनाय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥**

तीन दशा – बुढापा, जवानी और बाल्यावस्था जिसकी समान रहती हैं अर्थात् जो सदा जवान ही बने रहते हैं, ऐसे देवताओं के द्वारा अर्चित अर्थात् पूजित जिनेन्द्र देव के लिए नमस्कार हो। जिन्होंने जन्म–जरा आदि 18 दोषों को नष्ट कर दिया है, जो मुक्ति मार्ग का प्रतिबोधन करते हैं अर्थात् अन्य प्राणियों को समझाते हैं, जो देवताओं के भी देवता हैं ऐसे जिनेन्द्र देव को नमस्कार हो। **देवाधिदेव ! परमेश्वर वीतराग, सर्वज्ञतीर्थकरंसिद्धमहानुभाव।  
त्रैलोक्य नाथ, जिनपुंगववर्द्धमान, स्वमिन् गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते॥**

हे देवों से पूज्य हे परम प्रभू! हे राग, द्वेष कषाय रहित वीतराग! हे लोकालोक प्रकाशक सर्वज्ञ देव! हे धर्मतीर्थ के प्रवर्तक तीर्थकर! हे सिद्ध ! तथा हे महान् आशययुक्त! हे तीन लोकों के स्वामी! हे समस्त चरमशरीर जीवों में प्रमुख जिनश्रेष्ठ! हे महावीर स्वामिन्! इस युग के अन्तिम तीर्थकर! आपके दोनों चरणों की शरण को मैं प्राप्त हुआ हूँ।

**जितमदहर्षदेषा जितमोहपरीषहा जितकषायाः।**

**जिन जन्ममरणरोगाः जितमात्समाजयन्तु जिनाः॥**

(आचार्य पूज्यपाद)

जिन्होंने मद, हर्षभाव, द्वेष परिणति को जीत लिया है जिन्होंने मोह रुपी महाशत्रु को तथा क्षुधा, तृष्णाधि 22 परीष्ठों को जीत लिया है, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्ता, तीनों वेदरूप 25 कषायों को जीत लिया है तथा जिन्होंने मात्सर्य, ईर्ष्या के भाव को लिया है ऐसे जिनेन्द्रदेव सदा जयवंत रहें।

जयतु जिन वर्द्धमानस्त्रिभुवनहित धर्म चक्र नीरज बन्धुः।

त्रिदशपतिमुकुटभासुर चूडामणिरशिमरंजितारुणचरणः॥

जो तीनों लोकों के हित करने वाले, धर्म समूह रुपी अर्थात् भव्यजन समूह कमलों के बन्धुस्वरूप अर्थात् उन्हें सुख देने वाले सूर्य के समान हैं, देवताओं के स्वामी इन्द्रों के मुकुटों में लगी हुई चूडामणी की किरणों से रंगे गये हैं, लालचरण हैं जिनके, ऐसे महावीर स्वामी जयवंत रहें।

जय जय जय त्रैवोक्यकाण्डशोभि शिखामणे,  
नुद नुद नुद स्वान्तर्धान्तं जगत्कमलार्क नः।  
नय नय नय स्वामिन् शांति नितांतमनंतिमा,  
नहि नहि नहि त्राता लौकेकमित्र भवत्पर॥

हे तीनों लोकों में सुशोभित होने वाले शिखामणि के समान प्रभो, आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे जगत् रुपी कमल को विकसित करनेवाले अर्क अर्थात् सूर्य हमारे हृदय के अंधकार को दूर कीजिए, दूर कीजिए, दूर कीजिए! हे प्रभो कभी नाश न होनेवाली शान्ति को पूर्ण रूप से प्राप्त कराइये, शांति दीजिये, शान्ति से युक्त कीजिये! हे भव्य जीवों के अद्वितीय मित्र, आपके सिवाय और कोई रक्षा करनेवाला नहीं है, नहीं है, वास्तव में नहीं है!

(43) श्रुतकेवली भद्रबाहु –

नमोत्युणं अरहंताणं भगवंताणं। (1) आइगराणं तित्यगराणं  
सयंसंबुद्धाणं। (2) पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं  
पुरिसवर पुंडरियाणं पुरिसवरंगधहत्यीणं। (3) लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं  
लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपञ्जोयगराणं। (4) अभयदयाणं  
चक्रघुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं वेहिदयाणं। (5)  
धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर चाउरंत

चक्रवट्टीकं। (6) दीवोताणं सरणं गई पटटा (ण) अप्पडि हयवरनाणं दंसणधराणं वियट्टछउमाणं। (7) जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं। (8) सध्वन्नूणं सध्वदरिसीणं सिवमयलमरुयमणंतमक्षयमव्यावाहमपुरणराविति सिद्धिगङ्गामधेयं ढाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जियभयाणं। (9) (कल्पसूत्र पृष्ठ 54)

अरिहन्त भगवान् को नमस्कार हो (अरिहन्त भगवान् कैसे है?) धर्म की आदि करनेवाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करनेवाले, अपने आप ही सम्यक् बोध को जानने वाले, पुरुषों में श्रेष्ठ, पुरुषों में सिंह, पुरुषों में श्रेष्ठ श्वेत-कमल के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ गंधहस्ती के समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितकर्ता, लोकमें दीपक तुल्य, लोक में उद्योत करनेवाले, अभयदान देने वाले, ज्ञानरुपी नेत्र के देने वाले, मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले-शरण के देने वाले, संयम जीवन को देने वाले, सम्यक्त्वरुपी बोधि को देनेवाले, धर्म के देनेवाले, धर्म के उपदेशक, धर्म के नेता, धर्म रथ के सारथी हैं। चारगति का अन्त करनेवाले श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती हैं। भवसागर में द्वीपरूप, रक्षारूप, शरणरूप, आश्रयरूप और आधाररूप हैं। अप्रतिहत एवं श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन के धारण करने वाले, प्रमाद से रहित, स्वयं राग-द्वेष को जीतने वाले, दूसरों को जिताने वाले, स्वयं संसार से तिरे हुए और दूसरों को तारने वाले हैं। स्वयं बोध पा चुके हैं, दूसरों को बोध देने वाले हैं। स्वयं कर्म से मुक्त हैं, दूसरों को मुक्त कराने वाले हैं। सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी हैं तथा शिवरूप (मंगलमय) हैं। अचल-स्थिर रूप, अरुज-रोगरहित, अनन्त-अन्तरहित, अक्षय-क्षयरहित, अव्याबाध-बाधापीड़ा रहित, अपुनरावृत्ति जहाँ से पुनः लौटना नहीं पड़ता है ऐसी सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करन चुके हैं। भय को जीतने वाले हैं, राग-द्वेष को जीतने वाले हैं। उन जिन भगवान् को मेरं नमस्कार हो।

(44) वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

जीव को शान्ति चाहिए तो भगवान् महावीर के चरण बन्दन से उनका आचरण, भगवान् महावीर रुपी व्यक्ति से उनका व्यक्तित्व का अनुकरण, मंदिर में भगवान् महावीर की मूर्ति की स्थापना से मनमंदिर में मूर्तिमान की स्थापना, केवल मंदिर आदि में द्रव्य अहिंसा से भी व्यवहार में द्रव्य-भाव अहिंसा का पालन केवल आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। आओ! हम सब मिलकर भगवान् महावीर की 2600वीं जन्मजयन्ती में उनके सिद्धान्तों को अपनाकर स्व-पर, विश्व कल्याण करें।

(45) वीतराग स्तोत्रम्

शिवं शुद्धं बुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्ता न कर्म।  
 न अङ्गं न संगं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥१॥  
 न वन्धो न मोक्षो न रागादि दोष, न योगो न भोगो न व्याधिर्न शोकः।  
 न कोपो न मानो न माया न लोभः चिदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥२॥  
 न हस्तौ न पादौ न प्राणं न जिह्वा, न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।  
 न स्वामी न भृत्यो न देवो न मर्त्यः, चिदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥३॥  
 न जन्म न मृत्यु न मोहो न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न काश्यं न तन्द्रा।  
 न स्वेदो न खेदो न वर्णो न मुद्रा, चिदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥४॥  
 त्रिदंडं त्रिखंडं हरं विश्वनाथम्, हृषीकेषं विघ्नस्तकमादिजालम्।  
 न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रम्, चिदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥५॥  
 न वालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदो न भेदो न मूर्ति न स्नेहः।  
 न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा, चिदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥६॥  
 नायं न मध्यं नान्तं न चान्यत्, न द्रव्यं न क्षेत्रो न कालो न भावः।  
 शिष्यो गुरुर्नापि हीनो न दीनः, चिदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥७॥  
 इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्यं स्वरूपी।  
 न चान्यो न भिन्नो न परमार्थमेकम्, चिदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥८॥  
 आत्मारामं गुणाकरं गुणनिधिं चैतन्यरत्नाकरम्,  
 सर्वे भूतगतागते सुखं दुःखे ज्ञाते त्वयि सर्वगे।  
 त्रेलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा ध्यायन्ति योगीश्वराः।  
 वंदे तं हरिवंशहर्षहृदयं श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम्॥९॥

(46) महावीराष्टकं स्तोत्रम्

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,  
 समं भांति ध्रौद्यव्ययजनिलसंतोऽन्वरहितः।  
 जगत्साक्षी मार्गं प्रकटनपरो भानुरिव यो,  
 महावीरस्वामी नयनपथगमी भवतु मे (नः)॥१॥

अताप्र यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्दरहितं,  
 जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।  
 स्फुटं मूर्तियस्य प्रशमितमयी वातिविमला,  
 महावीरस्वामी नयनं पथगमी भवतु मे (नः)॥२॥  
 नमन्नाकेन्द्रलीमुकुटमणिभाजालजटिलं,  
 लसत्पादां भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।  
 भवज्वालाशंत्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,  
 महावीरस्वामी नयनं पथगमी भवतु मे (नः)॥३॥  
 यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह,  
 क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगण समृद्धः सुखनिधिः।  
 लभंते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा,  
 महावीरस्वामी नयनं पथगमी भवतु मे (नः)॥४॥  
 कन्तस्वर्णभासोऽप्यपगत तनुज्ञाननिवहो,  
 विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः।  
 अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोदभुतगतिः,  
 महावीरस्वामी नयनं पथगमी भवतु मे (नः)॥५॥  
 यदीया वागंगा विविधनयकल्लोलविमला,  
 वृहज्ञानां भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।  
 इदानीमध्येषां बुधजनमरातैः परिचिता,  
 महावीरस्वामी नयनं पथगमी भवतु मे (नः)॥६॥  
 अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः  
 कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।  
 स्फुरन्नित्यानंदं प्रशमपदराज्याय स जिनः,  
 महावीरस्वामी नयनं पथगमी भवतु मे (नः)॥७॥  
 महोमोहातङ्क प्रशमनपराकस्मिकभिषग्,  
 निरापेक्षो बंधुर्विदित महिमा मंगलकर।

शरणः साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो,  
महावीरस्यामी नयन पथगामी भवतु मे (नः) ॥८॥  
महावीराष्ट्रं स्तोत्रं भवत्या भागेन्दुना कृतम्।  
यः पठेच्छुणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥९॥

(पं. भागचन्द्र)

(47) पुराणमित्येव न साधु सर्व, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरत्भजन्ते, मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः ॥ (कालिदास)

अर्थात्— केवल प्राचीन होने से सब कुछ उत्तम नहीं होता और केवल नवीन होने से सब कुछ हैय नहीं होता । इसी प्रकार प्राचीन सब कुछ हैय नहीं होता तथा नवीन भी सबकुछ उपादेय नहीं होता । जो ज्ञानी विवेकी, प्रज्ञापुरुष गुणवान् है वह परीक्षा करके उत्तम (सद्गुण) को ग्रहण करता है एवं अविवेकी, अन्ध-अनुकरण वाले हैं वे भेड़ चाल के समान अनुकरण करते हैं ।

(48) हरिभ्र सूरि ने भी कहा है—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु।  
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यं परिग्रहः ॥

महावीर भगवान् के प्रति मेरा पक्षपात नहीं है और कपिलादि दार्शनिकों के प्रति भी मेरा द्वेष नहीं है । किन्तु जिनका वचन युक्ति-युक्त है उनका अनुकरण करना चाहिए ।

(49) विज्ञान में भी कुछ दोष-गुण हैं, अतः परीक्षण-निरीक्षण किये बिना ग्रहण करना प्रबुद्ध (प्रज्ञा धनी) के लिये हितावह नहीं है । यह परीक्षण क्षमता भ. महावीर के सिद्धान्तों से प्राप्त होती है ।

We can't want blind religion not also only science but we want a scientific religion. (आचार्य कनकनंदी)



## परिच्छेद-१

### १. धर्म (सार्वभौम धर्म)

जैसे साधारण नागरिक अपने जीवन यापन के लिये कृषि करता है, दूसरा कोई व्यापार करता है, अन्य कोई नौकरी करता है, अन्य कोई शिल्प कार्य करता है । उनके कार्यक्षेत्र एवं पद्धति पृथक्-पृथक् होते हुए भी लक्ष्य केवल एक ही है— जीवन यापन करना । उसी प्रकार विभिन्न परिस्थिति, देश, काल आदि को लेकर धर्म की विभिन्न परिभाषायें होते हुए भी धर्म का एक उद्देश्य है— सुख शांति प्राप्त करना । धर्म शब्द, ‘धृ’ धातु से बना है । ‘धृ’ का अर्थ है धारण करना । जिसमें धारण करने की शक्ति है, उसको धर्म कहते हैं ।

#### धर्म की विभिन्न परिभाषायें :

‘देशयामी समीचीनं धर्म कर्मनिवर्हणम्।

संसारदुखतः सत्यान् यो धरत्युत्तमे सुखो॥’

महान् दार्शनिक तत्त्ववेत्ता, तार्किक चूड़ामणि समन्तभद्र स्वामी प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं उस धर्म को कहूँगा जो धर्म संसारी जीवों के समस्त मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक दुःखों के कारणभूत कर्मों को नाश करके अनंत उत्तम सुख में धारण करता है । इससे सिद्ध होता है कि धर्म के माध्यम से अधिवैदिक, अधिभौतिक एवं आध्यात्मिक तथा इहलोक, परलोक आदि के भय से निवृत्ति होती है एवं जीव को शाश्वतिक, अतीन्द्रिय, आध्यात्मिक अनंत सुख प्राप्त होता है । कहा है—

‘यस्मात् अभ्युदय. निश्रेयस्य सिद्धिः स धर्मः।’

जिससे स्वर्गादि का अभ्युदय सुख एवं निर्वाण रूपी परम सुख की सिद्धि होती है, उसको धर्म कहते हैं । कहा है—

धर्मः सर्व सुखाकारो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्तते।

धर्मेणव समायेते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः॥

धर्मान्नास्त्यपरः सुहृदभवभृतां धर्मस्य मूलं दया।

धर्मे चित्तमहं दधेप्रतिदिनं हे धर्म! मां पात्रय॥

धर्म सर्व प्रकार के सुख को देने वाला है, हित करने वाला है, धर्म से ही

निर्वाण अथवा मोक्षसुख मिलता है। इसीलिये हे सुख इच्छुक भव्य जीवो। धर्म को ही संचित करिये। धर्म को छोड़कर संसारी जीवों का कोई भी हित करने वाला नहीं है। धर्म का मूल दया अर्थात् करुणा या अहिंसा है। धर्म में मैं अपने चित्त को प्रतिदिन लीन करता हूँ। हे जगत् उद्धारक; सुख शांति प्रदायक! धर्म मेरा पालन कीजिये।

**पवित्रि क्रियते येन येनैव ग्रियते जगत्।**

**नमस्तस्मै दयादाय धर्म कल्पाडिपाय वै।**

जिससे जीव पवित्र हो जाता है और जो विश्व को धारण करता है, दया से आद्व धर्मरूपी कल्पवृक्ष के चरण को मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात् धर्म से ही पतित जीव पावन हो सकता है, दानव मनाव हो सकता है, मानव महामानव, भगवान् बन सकता है। यह संपूर्ण चराचर विश्व धर्म से आधारित है।

**धर्मो गुरुश्च मित्रं व च धर्मः स्वामी च वान्धवः।**

**अनाथ वत्सल सोऽयं स त्राता कारणं विना॥**

धर्म ही गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बन्धु है, अनाथ का रक्षक है और बिना स्वार्थ के रक्षण करने वाला है।

**धर्मो मंगलमुक्तिङु अहिंसा संयमो तत्वो।**

**देवा वि तस्स पणमंति जस्त धर्मे सयामणो।**

धर्म ही लोक में उत्कृष्ट मंगल है, अहिंसा-धर्म है, संयम-धर्म है एवं तप धर्म है। जिसका मन सर्वदा धर्म में लीन रहता है, उसको स्वर्ग के देव भी नमस्कार करते हैं।

**संक्षिप्त में धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ-**

**वस्तु सहायो धर्मो अहिंसा खमादि आद धर्मो।**

**रयणत्तयं य धर्मो अणेयंत सुभावणा धर्मो॥**

वस्तु का स्वभाव धर्म है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह एवं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग अकिञ्चन, ब्रह्मचर्य ये आत्म धर्म हैं। रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक् चरित्र धर्म हैं। अनेकांत (स्याद्वाद) बारह भावना एवं मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं माध्यरथ भाव भी धर्म हैं।

इस संक्षिप्त गाथा सूत्र में जो धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं, शब्दतः पृथक्-पृथक् होते हुए भी भाव से एक ही है। इसमें प्रायः विश्व में प्रचलित सम्पूर्ण धर्म संप्रदाय की धार्मिक परिभाषाएँ गर्भित हैं। वस्तु स्वभाव धर्म यह सामान्य परिभाषा है, चेतन-अचेतन द्रव्य में जो स्व-स्वभाव हैं, वही भाव उनका धर्म है, जैसे पुद्गल का धर्म जड़त्व एवं जीव का धर्म चेतनत्व है। इस परिभाषामें संपूर्ण धार्मिक पारिभाषाएँ गर्भित हैं। परंतु उत्तरवर्ती परिभाषाएँ चैतन्य द्रव्य अर्थात् जीव द्रव्य का स्वभाव रूप धर्म की परिभाषाएँ हैं।

## 2. आत्म धर्म (अहिंसादि पांच धर्म)

आत्मा में अग्र लिखित समस्त धर्म पाये जाने के कारण एवं अन्य द्रव्य में नहीं पाये जाने के कारण वे सब धर्म आत्म धर्म, जीवधर्म है, विश्व धर्म है, सार्वभौम धर्म हैं। आत्म धर्म, सामान्य से एक होने पर भी पर्याय-अपेक्षा, परिभाषा-अपेक्षा, निमित्त-अपेक्षा, अवस्था-अपेक्षा भिन्न-भिन्न हैं।

(1) अहिंसा (2) सत्य (3) अचौर्य (4) ब्रह्मचर्य (5) अपरिग्रह ये पांच आत्मा के धर्म हैं। इन पांचों धर्म को, प्रत्येक धर्म तो कुछ अंश में एवं कुछ दृष्टिकोण से मानते हैं परन्तु जैन धर्म में जिस प्रकार संगोपांग वर्णन है उस प्रकार अन्य धर्मों में कम पाया जाता है।

अहिंसादि का पूर्ण रूप से पालन करना महाव्रत कहा जाता है और जो महाव्रत का पालन करते हैं उन्हें महाव्रती (साधु) कहते हैं। पांच महाव्रत यथा – (1) अहिंसा महाव्रत, (2) सत्य महाव्रत, (3) अचौर्य महाव्रत, (4) ब्रह्मचर्य महाव्रत, (5) अपरिग्रह महाव्रत। साधारणतः गृहस्थ-नागरिक पूर्णरूप से पालन करने के लिये असमर्थ होते हैं क्योंकि परिवार चलाने के लिये एवं समाज में रहने के लिये कुछ न कुछ आरम्भ करना पड़ता है एवं परिग्रह रखना पड़ता है। इसलिये श्रावक (आदर्श नागरिक) आंशिक रूप से समाज के अविरोध, धर्म के अविरोध अहिंसादि को अणुरूप में पालन करते हैं। पांच अणुव्रत के नाम – (1) अहिंसाणुव्रत, (2) सत्याणुव्रत, (3) अचौर्याणुव्रत, (4) ब्रह्मचर्याणुव्रत, (5) परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। ये पांच अणुव्रत समग्रता से जीवनयापन करने के लिये, स्वस्थ परिवार के लिये, आदर्श समाज के लिये, उन्नत राष्ट्र के लिये अनिवार्य हैं। इनके बिना व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अस्तव्यस्त अनुशासनविहीन, शांति, सुख, प्रेम, मैत्री, संगठन से रहित हो जाएगा। धर्म केवल एक बाह्य आडम्बर,

मिथ्या परंपरा रूढ़ि, क्रियाकांड एवं काल्पनिक परलोक सुख के लिये नहीं है अपरंच। धर्म से तो सदा, सर्वदा, सर्वत्र, सबको सुख शांति मिलती है। जिस धर्म में या राष्ट्र में ये पांच व्रत नहीं हैं वह धर्म या राष्ट्र टिक नहीं सकता है परन्तु निश्चय से अवनति एवं विलीनता को प्राप्त हो जावेगा।

### (१) अहिंसा धर्म

अकषाय भाव यत्र न च स्वपर पीडनम्।  
सा अहिंसा अमृतमाता सर्व धर्मे प्रधानम्॥

जहाँ पर मानसिक दुर्विचार नहीं हैं और स्व-पर पीडन नहीं है वहाँ पर अहिंसा रूपी अमृतमाता निवास करती है। अहिंसा सम्पूर्ण धर्म में प्रधान धर्म है।

यदि मन में किसी को कष्ट देने की भावना है और किसी कारणवश कष्ट नहीं दे पाये तो भी हिंसा का पाप लगेगा ही। जैसे एक डाकू दूसरों को फाईरिंग करके धन लूटना चाहता था, परन्तु निशाना चूकने के कारण सामने वाले व्यक्ति को निशान नहीं लगा और वह बच गया, तो भी न्यायाधीश उस डाकू को दण्ड देगा, क्योंकि उसका मारने का इरादा था। एक और उदाहरण लीजिये—एक धीवर मछली पकड़ने के लिये पानी में जाल डालता है किन्तु दिन भर बैठने पर भी मछली न पकड़े जाने पर भी हिंसा या अपराध का भागी होगा ही। इसीलिये इस श्लोक में अहिंसा के लिये प्रथम एवं प्रधान शर्त अकषाय भाव कहा है।

यदि अन्तरंग में कषाय भाव अर्थात् दूषित परिणाम नहीं है परन्तु कारण वशात् किसी जीव का घात हो जाने पर भी हिंसा का या अपराध का भागी नहीं होगा। जैसे—महामुनि के चार हाथ जमीन नीचे देखते हुये चलते समय कोई क्षुद्र प्राणी अकस्मात् पैर के नीचे दबकर मर जाने पर भी महामुनिराज दोष—अपराध के भागी नहीं हैं क्योंकि जीवों की विराधना मुझसे नहीं हो इस भाव को मन में रखते हुये अपनी तरफ से तो सावधान (प्रयत्न) पूर्वक चल रहे थे। अथवा जैसे एक कृषक, खेत में कार्य करता है। हल जोतते समय अनेक जीवों का घात होता है तो भी उसे विशेष हिंसा का दोष नहीं लगेगा। किन्तु उद्योगजनित दोष लगेगा, क्योंकि उसके परिणाम जीव मारने का नहीं है किन्तु अनाज उत्पन्न करने का है। दयालु, प्रामाणिक डॉक्टर, रोगी को निरोगी बनाने के लिये ऑपरेशन करता है किन्तु दैव से और आयु पूर्ण होने के कारण रोगी का मरण होने पर भी डॉक्टर

को हिंसा का दोष नहीं लगेगा क्योंकि, डॉक्टर के परिणाम रोगी को बचाने के होते हैं, न कि मारने के।

जब कषाय भाव उत्पन्न होता है उस समय ही स्वात्मा की हिंसा हो जाती है भले फिर वह स्वयं की या अन्य की द्रव्य हिंसा करें या न करें।

आत्मघात करना स्वकीय द्रव्य हिंसा एवं भाव हिंसा है, इसलिये आत्मघात करना सबसे बड़ी हिंसा है। दूषित मनोभाव से दूसरों का घात करने पर यदि कष्ट प्राप्त करने वाले जीव में कलुषित परिणाम नहीं हुए तो उसकी केवल द्रव्य हिंसा अर्थात् शरीर को ही कष्ट मिलेगा, परन्तु कष्ट देनेवाले की द्रव्य हिंसा के साथ-साथ भाव हिंसा भी होगी।

कष्ट पाने वाला स्वर्ग—मोक्ष भी जा सकता है किन्तु कष्ट देने वाला महापाप बंध करके नरकादि दुर्गति को प्राप्त होगा। इसलिये कष्ट सहन आत्मोन्ति के लिये अमृत तुल्य है और कष्ट देना विष तुल्य है। इस श्लोक में हिंसा को अमृतमाता बताया है। क्योंकि जैसे माता प्रेमभाव से संतान की रक्षा करती है उसी प्रकार अहिंसा माता सम्पूर्ण जीव जगत की रक्षा करती है। अमृतपान करने से जैसे जरा-मरण-व्याधि रूप रोग जनित कष्ट नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसा से हिंसा, युद्ध, कलह, शिकार, परपीड़न आदि कष्ट नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक जीव जीना चाहता है, सुखी होना चाहता है एवं सुरक्षित रहना चाहता है। कोई भी मरने के लिये, कष्ट प्राप्त करने के लिये, असुरक्षित होना नहीं चाहता है। एक जीव को सम्पूर्ण लोक की विभूति देकर भी उससे प्राण चाहेंगे तो भी वह प्राण नहीं देगा। इससे सिद्ध होता है कि एक जीव का मूल्य तीन लोक की विभूति से भी अधिक है। जो एक जीव की रक्षा करता है वह मानव तीन लोक की विभूति का दान देता है। इसलिये भगवान् महावीर ने बताया कि सर्व धर्म का मूल आधार अहिंसा है। अहिंसा को दृढ़ करने के लिये, निर्मल करने के लिये एवं वृद्धि करने के लिये अन्य धर्म के प्रचारक भी कहते हैं—

“परवहा आद वहा होइ”

पर वध आत्मा वध ही है। जो दूसरों को कष्ट देता है, वह स्वयं को ही कष्ट देता है।

जीव जिणवर जे मुणहि जिणवर जीव मुणहि।  
ते समभावपरद्विया लहु निव्वाण लहहि॥

जो प्रत्येक जीव को जिनेन्द्र भगवान के समान मानता है एवं जिनेन्द्र भगवान् को जीव के बराबर मानता है वह समभाव को प्राप्त होकर शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

**वस्तुतः सामान्यं जीवं एवं अरिहंतं, सिद्धं भगवान् में कोई-भेदं नहीं है क्योंकि “सबे सुद्धा हु सुद्धणया” शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि से समस्त जीव सिद्धं सदृश्य हैं। इसलिये जो कोई भी जीव को कष्ट देता है वह साक्षात् परमात्मा को कष्ट देता है। जो जीवों की सेवा करता है, वह जिन भगवान की सेवा करता है। इसलिये ईसामसीह ने बताया था कि मानव-सेवा ही भगवान-सेवा है।**

**मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षेऽ  
मैं मैत्री की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ॥**

(यजुर्वेद)

**इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च।  
अहिंसत्वं च भूतानाममृतत्त्वाय कल्पते॥**

(म.सृ.)

दुष्ट इन्द्रियों की दुष्प्रवृत्ति के निरोध से, रागद्वेष के क्षय से और अहिंसा तत्व से जीवों को अमृत-तत्त्व की प्राप्ति होती है।

**अहिंसापरमो धर्मस्तथाऽहिंसा परोदमः।  
अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तपः॥  
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परमं फलम्।  
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं फलम्।  
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥**

(महाभारत)

अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा परम दया है, अहिंसा परम दान है, अहिंसा परम तप है।

अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है। अहिंसा परम सुख है।

हिंसा के 4 भेद- (1) आरंभी (2) उद्योगी (3) विरोधी (4) संकल्पी।

**आरंभी हिंसा** – गृहस्थ सम्बन्धी कार्य में जो हिंसा होती है उसको आरंभी हिंसा

कहते हैं।

**विरोधी हिंसा** – आत्म रक्षा के लिये, देश रक्षा के लिये, धर्म रक्षा के लिये, शरणागत की रक्षा करने के लिये, असहाय स्त्री एवं बालक की रक्षा के लिये, धर्मनीति के अनुसार, विरोधियों के साथ युद्ध करने से जो हिंसा होती है उसको विरोधी हिंसा कहते हैं।

**संकल्पी हिंसा** – दूषित भावना सहित दूसरे जीवों को मारने का भाव उत्पन्न होना, उसको संकल्पी हिंसा कहते हैं।

**उद्योगी हिंसा** – कृषि, वाणिज्य आदि कार्य में जो हिंसा होती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं।

एक आदर्श गृहस्थ नागरिक की हिंसा नहीं करने की भावना होने पर भी आरंभ, व्यापारादि करना पड़ता है एवं देश आदि के लिये युद्ध भी करना पड़ता है। इसलिये वह उपरोक्त तीन हिंसा-आरंभी, उद्योगी, विरोधी हिंसा से बच नहीं सकता है परन्तु संकल्पी हिंसा का त्याग करना उसके लिये नितान्त आवश्यक है।

सत्ता, धन-सम्पत्ति, ख्याति-कीर्ति या द्वेष आदि से जो दूसरे देश पर आक्रमण करता है वह संकल्पी हिंसा है। मांस के लिये मत्स्य-पालन करना, मुर्गा-पालन करना, बूचड़-खाना खोलकर जीवों का घात करना संकल्पी हिंसा है। रेशमी वस्त्र के लिये, रेशमी कीड़ों को जिन्दा उबालना संकल्पी हिंसा में ही गर्भित है।

अहिंसा यदि अमृत है तो हिंसा विष है। अहिंसा प्रकाश है तो हिंसा अन्धकार है। अहिंसा से ही अभिवृद्धि, प्रेम, विश्व-मैत्री, संगठन हो सकता है। केवल नारेबाजी, नेतागिरी, आक्रमण प्रवृत्ति से, अनीति अत्याचार से, शोषण नीतिसे शांति स्थापित नहीं हो सकती है। जैसे— मनुष्य को जिन्दा रहने का अधिकार है उसी प्रकार पशु आदि प्राणियों को भी है। महावीर भगवान ने कहा था (Live and Let Live) जिओं और जीने दो: जीना जैसा तुम्हारा अधिकार है उसी प्रकार दूसरों को जीने देना तुम्हारा कर्तव्य है। इसलिये प्रत्येक मानव एवं राष्ट्र के कर्णधारों को चाहिये कि मांस के लिये या अन्य कोई स्वार्थ सिद्धि के लिये किसी भी प्रकार की हिंसा न करें।

स्वार्मी समन्त भद्र ने स्वयंभू स्तोत्र में कहा है—

**“अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरम्।”**

अहिंसा में, अहिंसा पालन करने वालों के लिये यह सम्पूर्ण जगत परब्रह्ममय

दिखाई देता है।

कौटिल्य चाणक्य ने बताया है-

“त्यजेत् धर्मं दया हीनं” दयाहीन धर्म को त्याग करो। इसके साथ उन्होंने बताया है कि जो दयाहीन धर्म का त्याग नहीं करता है, उसको सुख-शांति-वैभव-मोक्ष सर्वं आदि स्वयमेव ही छोड़कर चले जाते हैं।

लिंगायत धर्म के सर्वज्ञ कवि ने कहा है-

मैं अहिंसामय जैन धर्म को सिर पर धारण करता हूँ। जो हिंसामय धर्म है उसे छूले में डालकर जला दो।

हिंसा करनेवाला पर भव में अपघात से मरता है, नरक, तिर्यज्ज्व गति में जन्म लेता है। यदि कदाचित् मनुष्य जाति में जन्म लिया (गर्भ में आया) तो, वहाँ पर गर्भ में ही मरण को प्राप्त हो जाता है। जन्म लिया तो अल्पायु में रोग या दुर्घटना या शत्रु के प्रहार से मरता है। यदि जिन्दा भी रहा तो रोग से धनाभाव से मानहानि से, अंग-उपांग के छेदन-भेदन से अनेक शारीरिक मानसिक दुःखों को सहन करता है।

## (2) सत्य धर्म

हित-मित-प्रिय वचः जीवहितसाधकम्।

स सत्यं आगम वचः स्याद्वादसहितम्॥

जो वचन हितकर हैं, सीमित हैं, प्रियकर हैं, जीव के लिये हितकारी हैं, आगम अनुकूल हैं और स्याद्वाद सहित हैं वे ही वचन सत्य हैं।

जो सत्य एवं मधुर वचन होते हुए भी यदि कुरुमार्ग में प्रवृत्त कराता है तो वह वस्तुतः सत्य वचन नहीं है अपितु असत्य वचन है इसलिये वचन हितकर होना चाहिए। यथार्थ वचन भी अनर्गल प्रवृत्ति से, वाचाल स्वरूप से एवं अयोग्य द्रव्य-क्षेत्र-कालादि में बोलने पर वे वचन सत्य नहीं हैं क्योंकि वे वचन मित विशेषण से रहित हैं। सत्य वचन भी यदि प्रिय नहीं है, कर्ण मधुर नहीं है, मृदु नहीं है, और उस वचन से अप्रियता, द्वेष, कटुता पैदा होती है तो वह वचन भी सत्य नहीं है। सर्वज्ञ प्रणीत आगम से विरोध वचन भी सत्य वचन नहीं है। इसलिये सत्यवादी को आगमानुकूल बोलना चाहिए। आगम के अनुकूल बोलते हुए भी हठग्राहिता से स्वार्थ या पंथसिद्धि के लिये अनेकान्त-स्याद्वाद को छोड़कर

अपेक्षा को दुर्लक्ष्य करके जो बोलता है वह भी बड़ा असत्य है।

सत्यं ब्रूयात्रियं ब्रूयात् न ब्रायूत्सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥

(मनुस्मृति)

सत्य बोलना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये, सत्य होते हुये भी अप्रिय नहीं बोलना चाहिये। प्रिय असत्य वचन नहीं बोलना चाहिये यह सनातन धर्म है।

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।

जाके हृदये सांच है ताके हृदये आप॥

(कवीर)

सत्य के बराबर तप नहीं है, झूठ के बराबर पाप नहीं है, जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में भगवान हैं।

झूठी गवाही देना, कोर्ट में अन्याय पक्ष को लेकर वकालत करना, दूसरों को ठगने के लिये जाल-साजी वचन कहना आदि असत्य वचन हैं। जो असत्य बोलता है उसको वर्तमान भव में जिक्हा छेदन दण्ड मिलता है, परभव में जिक्हा में एवं मुख में विभिन्न रोग होते हैं तथा उसका कोई विश्वास नहीं करता है और ऐसा असत्यभाषी परभव में मृक बनता है।

## (3) अचौर्य धर्म

कलुषित भाव से अन्य द्रव्यों को ग्रहण नहीं करना अचौर्य धर्म है और यह अचौर्य धर्म सर्वतोन्नति के लिये साधन स्वरूप है।

क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह-कामुक आदि भाव से अन्य द्रव्यों को ग्रहण करना या आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य द्रव्य को स्वीकार करना चोरी है। यदि अन्तरंग में विकार भाव नहीं है तो पर द्रव्यों का ग्रहण होने पर भी चोरी का दोष नहीं लगेगा। जैसे शून्यगृह, छोड़े हुए घर में मुनि रहते हैं, हाथ धोने के लिये प्रतिबंध रहित मिट्टी प्रयोग में लाते हैं, प्रासुक झरने का पानी प्रयोग करते हैं तो भी उनको चोरी का दोष नहीं लगता है क्योंकि उनके हृदय में चोरी करने रूप भाव नहीं है। यदि अन्तरंग में कषाय भाव होने पर भी दूसरों की धन सम्पत्ति प्रतिकूल परिस्थिति के कारण चोरी नहीं कर पाया तो भी वह दोष का भागी ही है। जैसे एक चोर को रात्रि में संधं खोदते समय कोतवाल ने पकड़ लिया,

वह चोर चोरी नहीं कर पाया तो भी न्यायाधीश उसको दोषी साबित करके दण्ड देंगे।

केवल डाका डालकर, सेंध बनाकर चोरी करना ही चोरी नहीं है परन्तु अधिक मुनाफा लेना, कम तोलकर देना, अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, न्यायपूर्ण सेलटैक्स, इन्कम्टैक्स नहीं देना, श्रमिकों (मजदूरों) को उपयुक्त वेतन नहीं देना, रिश्वत लेना, राष्ट्र के न्याय नीति के विरुद्ध व्यवसाय करना, चावल में कंकड़ मिलाकर बेचना, धी में डालडा मिलाना, डालडा में चर्बी मिलाना आदि चोरी रूप गर्हित पाप है।

धन—सम्पत्ति मनुष्यों का ग्यारहवाँ प्राण है, जो दूसरों की धन सम्पत्ति हड्डप करता है, वह उसका प्राण हर लेता है। जो अन्याय से धन उपार्जन करता है, उसका धन अधिक दिन तक नहीं रहता है।

अन्याय उपार्जित धनं दशवर्षाणि तिष्ठति।

प्राप्ते तु एकादशवर्षे समूलं च विनश्यति॥

अन्याय से उपार्जित धन 10 वर्ष तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष में मूल सहित नष्ट हो जाता है।

हेनसांग भारत के विषय में लिखते हैं कि भारत एक समृद्धिशाली देश होते हुए भी कोई घर में ताला नहीं लगाते थे। इससे सिद्ध होता है कि भारत में पहले विशेष चोरी नहीं होती थी। अभी भी कुछ वैदेशिक देशों में चोरी कम होती है। परन्तु भारतीय लोग स्वयं को श्रेष्ठ एवं धार्मिक देश की प्रजा मानते हुए भी विचित्र चोरी करते हैं। व्यापारी क्षेत्र में काला बाजारी, मिश्रण (मिलावट) आदि चोरी के कार्य के साथ—साथ शैक्षणिक, शासकीय, न्यायालय आदि में भी चोरी की ही भरमार है। विद्यार्थियों को शिक्षक ठीक से नहीं पढ़ाते हैं और विद्यार्थी ठीक से नहीं पढ़ते हैं यह कर्तव्यचोरी है। परीक्षा में नकल करना भी चोरी है, रिश्वत लेकर शिक्षा विभागीय अधिकारी एवं शिक्षक आदि के द्वारा विद्यार्थियों को प्रश्न—पत्र पहले से ही दे देना, अधिक नंबर दे देना, अनुत्तीर्ण विद्यार्थी को उत्तीर्ण करना आदि चोरी है। न्यायालय में रिश्वत लेकर सही को झूठ करना एवं झूठ को सत्य करना बहुत बड़ी चोरी है, जिससे निर्दोष मा जाता है, दोष बढ़ता है, नैतिक पतन होता है एवं सत्य का हनन होता है। प्रायः करके न्यायालय अभी अन्यायालय है, न्यायाधीश अन्यायाधीश हैं। सत्य के नाम से असत्य का ही साम्राज्य चलता

है। इसी प्रकार शासकीय नेता वर्ग, ऑफिसर आदि प्रायः रिश्वत लेकर ही काम करते हैं, परन्तु अपना पवित्र कर्तव्य मानकर काम करने वाले बहुत कम हैं। पूँजीपति व्यापारी वर्ग भी मार्केट में वस्तुओं का कृत्रिम कमी उत्पन्न करके मनमाना मूल्य बढ़ाकर साधारण प्रजा का शोषण करते हैं जो रक्त शोषण, गला काटने से कुछ कम नहीं है। इससे समाज, देश, राष्ट्र में हाहाकार मच जाती है एवं कुछ साधारण मनुष्य भी चोरी आदि कुकृत्य करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। अतः देश, राष्ट्र की शान्ति के लिये उपरोक्त चौर्य कर्म त्याग करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य है।

चोरी का फल — चोरी करने वालों को चोर कहकर पुकारते हैं, उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं, उसको अपने समीप में, घर में, ग्राम नगरादि में नहीं रखना चाहते हैं, उसका कोई विश्वास नहीं करते हैं, यहाँ तक कि माता—पिता भी उस पर विश्वास नहीं करते हैं। उसको राजदण्ड मिलता है, देश से भी निकाल देते हैं। परभव में निर्धन, भिखारी बनता है, कठोर परिश्रम करने पर भी पेट भरना ढुर्लभ हो जाता है। दूसरे भव में उसकी धन सम्पत्ति भी अग्नि से, पानी से, भूकंप से, चोरी आदि से नष्ट हो जाती है।

#### (४) ब्रह्मचर्य धर्म

मन—वचन—काय से कृत—कारित अनुमोदन रूप नवकोटि से कामुक प्रवृत्ति का त्याग करना ब्रह्मचर्य महागुण है।

काम चेतना प्राणी मात्र में एक दुर्दमनीय विकार भाव है। काम प्रवृत्ति से आत्मा की ऊर्जा क्षीण हो जाती है। ऊर्जा क्षीण होने से मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जिससे मनुष्य में उत्पाद, धैर्य, ज्ञान—विज्ञान, विवेक, संयम, आदि नष्ट हो जाते हैं। जीवन को ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिये, स्वास्थ्य संपादन करने के लिये आजीवन युवक रहने के लिये, बौद्धिक शक्ति का विकास करने के लिये नयी—नयी प्रज्ञा प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि के समान है।

केवल शारीरिक मैथुन त्याग से ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं होता है, उस के साथ—साथ मन से, कामवासना त्याग, वचन से कामकथा त्याग, तथा कृत, कारित, अनुमोदना से मैथुन त्याग करने से ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। जो वीर्य प्रायः 42 दिन में तैयार होता है, वही वीर्य एक बार के भोग से क्षय हो जाता है। इससे

आप लोग अनुमान कर सकते हैं कि अब्रहमचर्य (मैथुन) से कितनी क्षति होती है। उस क्षति को पूर्ण करने के लिये पुनः 42 दिन चाहिये। ‘बिन्दु पात ही मरणम्’ अर्थात् वीर्य स्खलन ही मरण है।

**अब्रहमचर्य का दुष्परिणाम—** एक बार भोग के समय में संभोग क्रिया से लब्ध्यपर्याप्तक नवलक्ष (9 लाख) जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे सरसों से भरे पात्र में एक तप्त लौहखण्ड डालने से सब सरसों जल जाते हैं उसी प्रकार नवलक्ष लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय मनुष्य जातीय जीव भस्म हो जाते हैं, यह हुई द्रव्य जीव हिंसा। द्रव्य हिंसा के साथ में जो मैथुन—भोगभोगने का मानसिक मलीन विचार है वह भाव हिंसा है। इस सारे पाप का फल इस भव में नहीं तो अगले भव में निश्चित भोगना पड़ेगा। इस पाप से अब्रहमचारी छूट नहीं सकता है।

### ब्रह्मचर्य का फल

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि ‘त्रैलोक्य पूज्य भवति ब्रह्म’ तीन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से पालन करना सबके लिये संभव नहीं है, तथापि स्व स्त्री या स्वपति से ही संतोष रखना उसमें भी संयमित रूप से केवल योग्य संतान की उत्पत्ति के लिये भोग करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

स्त्री को कम से कम 18 वर्ष तक एवं पुरुष को कम से कम 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहकर विद्या—अध्ययन करना चाहिये। उसके पश्चात् रज एवं वीर्य पक्व हो जाता है, जिससे योग्य, बलिष्ठ, तेजस्वी, धर्मात्मा, संतान उत्पन्न होती है। ऋतु काल में भोग करना सर्वथा त्यजनीय है। उससे ओज—वीर्य, आयु आदि घटती है। अनेक महारोग शरीर में प्रवेश करने लगते हैं। वह रोग वंश—परम्परा से आगे चलकर परिवार—संतान के ऊपर गलत प्रभाव डालता है। यदि संतान—परम्परा के ऊपर दया—करुणाभाव है तो इन दिनों में भोग नहीं करना चाहिये। ऋतुस्नान से चौथे दिन से 16 दिन तक भोग का समय है। उसमें भी अष्टमी—चतुर्दशी—पूर्णिमा, अमावस्या एवं पर्व आदि दिनों में भोग नहीं करना चाहिये। दिन में भोग करने से आयु क्षीण हो जाती है। अतः दिन में भोग वर्जनीय है। ग्रीष्म ऋतु में भी विशेष भोग नहीं करना चाहिये। ऋतु स्नान से लेकर 16 दिनों में किया हुआ स्त्री सम्बन्ध ही गर्भ धारण करने का कारण हो सकता है। अतः सोलह दिन से आगे ऋतु स्नान तक स्त्री सम्बन्ध आयुर्वेद में वर्जनीय है। इस प्रकार

संयमित जीवन—यापन करने पर कम एवं योग्य संतान होगी, जो कि सर्वगुण सम्पन्न तथा निरोगी होगी। वर्तमान में संयमित जीवन के अभाव में ही तेज हीन (शरीर कांति) वीर्य हीन, अवांछित अधिक सन्तान की उत्पत्ति होती है। जिससे स्वयं माता—पिता एवं सरकार भी चिंतित हैं। उसका निरोध करने के लिये अनैतिक साधन के माध्यम से गर्भ निरोध सरकार कर रही है। इससे शील को ही तिलाजलि दे दी है। कोई किसी से भोग करने पर भी गर्भ नहीं रहने के कारण पता नहीं चलता है, जिससे अनैतिकता, कुशीलता, पापाचार बढ़ रहा है। इसलिये सुखमय जीवनयापन करने के लिये ब्रह्मचर्य अणुव्रत पालन करना सबके लिये परम कर्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य अणुव्रत भारत की एक प्राकृतिक, वैज्ञानिक, जन्म निरोध प्रणाली है। इसको अपनाने से जन्म निरोध अर्थात् कुटुम्ब नियोजन प्रणाली तथा अर्थव्यय सब रुक जायेगा।

जो पर स्त्री गमन करता है वा जो स्व स्त्री से अधिक लम्पटा से भोग करता है वह पर भव में नपुंसक बनेगा। पुरुष बना तो लिंग में अनेक रोग उत्पन्न होंगे। परभव में तेजहीन, वीर्यहीन दुर्बल शरीर मिलेगा। अभी भी अनेक लोग टी.बी. के रोग से ग्रस्त दिखते हैं, और अनेक चर्म रोग, ब्लड दूषित होने से रोगी दिखते हैं; ये प्रायः अधिक भोग करने से ही हुये हैं। अतः ऐसी दुःखदायी अवस्था से बचना हो तो ब्रह्मचर्य ही एकमात्र श्रेयस्कर है।

### (४) अपरिग्रह धर्म

अन्तरङ्ग चौदह प्रकार का परिग्रह एवं बहिरङ्ग 10 प्रकार का परिग्रह त्याग को अपरिग्रह धर्म कहते हैं। यह अपरिग्रह महाव्रत सर्व सुखदायक है।

अन्तरङ्ग 14 प्रकार का परिग्रह— (1) मिथ्यात्व (2) क्रोध (3) मान (4) माया (5) लोभ (6) हास्य (7) रति (8) अरति (9) शोक (10) भय (11) जुगुप्सा (12) स्त्री वेद (13) पुरुष वेद (14) नपुंसक वेद

बहिरङ्ग 10 प्रकार का परिग्रह : (1) क्षेत्र (खेत—जमीन) (2) वास्तु (मकान) (3) हिरण्य (चांदी) (4) स्वर्ण (सोना) (5) धन (पशु सम्पत्ति) (6) धान्य (अनाज आदि) (7) दासी (नौकरानी) (8) दास (9) कुप्य (वस्त्र) (10) भाण्ड (बर्तन)।

**परिग्रह का भयंकर परिणाम—** जिस प्रकार ग्राह (मगरमच्छ या घड़ियाल) मनुष्य को पकड़कर जल में डुबा देता है एवं खा लेता है, उसी प्रकार उपरोक्त 24 प्रकार का परिग्रह जीव को पकड़कर संसार में डुबाकर जन्म—मरणादि दुःख देते

हैं। सम्पूर्ण 34.3 धन राजू प्रमाण विश्व में स्थित परिग्रह के भेद केवल 10 हैं, परन्तु आश्चर्य की बात है कि 3.5 हाथ प्रमाण इस क्षुद्र शरीर में 14 परिग्रह हैं। व्यवहार में एक दुष्ट ग्रह के कारण मनुष्य को बहुत ही कष्ट मिलता है। तब जिनके पीछे महादुष्ट 24 परिग्रह लगे हैं, उनको कितना कष्ट मिलेगा विचार करना चाहिये। एक ग्राह (घड़ियाल) यदि मनुष्य को पकड़कर निगल सकता है तो क्या 24 प्रकार के परिग्रह जीव को पकड़कर नहीं निगल सकते हैं? अर्थात् निश्चय रूप से निगल ही जायेंगे।

**मूर्छा परिग्रह—** बाह्य वस्तु के प्रति जो मूर्छा अर्थात् ममत्व परिणाम है, वही मुख्य अन्तरङ्ग परिग्रह है। मूर्छा, ममत्व, धन की इच्छा होने के कारण गरीब भी परिग्रहधारी है। तीर्थकर केवली के समवशारण आदि बाह्य वैभव विश्व की सबसे अधिक विभूति होते हुए भी वे परिग्रह धारी नहीं हैं, क्योंकि वे मूर्छा, ममत्व, इच्छा से रहित हैं। इच्छा एक प्रकार की अलौकिक अग्नि है, क्योंकि अग्नि को ईन्धन मिलने पर ही बढ़ती है, ईन्धन के अभाव से अग्नि बुझ जाती है परन्तु यह इच्छा रूपी अग्नि वैभव के अभाव में वैभव को प्राप्त करने के लिये प्रज्ञवलित होती है एवं मिलने पर और भी अधिक रूप से प्रखर रूप से प्रज्ञवलित होती है।

**बढ़त-बढ़त सम्पत्ति सलिल मन सरोज बढ़ जाय।**

**घटत-घटत फिर न घटे, घटे तो फिर गिर जाय॥**

सम्पत्ति रूपी पानी जितना—जितना बढ़ता जाता है उतना—उतना मन रूपी कमल बढ़ता ही जाता है, परन्तु बढ़ जाने के बाद यदि पानी घट जावे तो उस अनुपात से कमल का नाल कम नहीं होता है, जिसके कारण आधार के अभाव से नाल गिर जाता है। उसीप्रकार मन (इच्छा) जितनी धन सम्पत्ति बढ़ती है, उससे भी अधिक प्राप्त करने के लिये लालायित हो जाता है, किन्तु धन कम होने पर इच्छा काम नहीं होती है, जिससे मनुष्य की इच्छा भंग हो जाती है, जिससे मनुष्य को अकथनीय मानसिक वेदना होती है।

इच्छा अग्नि है, वैभव धी है। इच्छा रूपी अग्नि को शान्त करने के लिये यदि वैभव रूपी धी डालेंगे तो इच्छा रूपी अग्नि शान्त नहीं होगी बल्कि अधिक बढ़ती ही जायेगी। इसलिये इच्छा रूपी अग्नि शान्त करने के लिये बाह्य परिग्रह, धन—सम्पत्ति जितना—जितना कम करेंगे उतनी—उतनी इच्छा रूपी अग्नि कम होकर मानसिक शान्ति मिलेगी।

**कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।  
वे खाय बौराय नर, वे पाय बौराय॥**

कनक—धूरा (विषाक्त फल) से कनक-सुवर्ण (धन सम्पत्ति) मादकता में सौ गुनी अधिक है, क्योंकि धूरा फल खाने पर ही नशा चढ़ता है परन्तु कनक अर्थात् धन को प्राप्त करते ही नशा चढ़ जाता है अर्थात् मनुष्य अधिक धन का इच्छुक, गर्वी एवं व्यसनी बन जाता है।

**दूरज्येनासुरक्षेण नश्वरेण धनादिना।  
स्वस्थ मन्यौ जनः कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिषा॥**

(इष्टोपदेश। श्लोक 13)

धन सम्पत्ति अर्जन करना अत्यन्त कष्ट साध्य है। धनार्जन के लिये मनुष्य भयंकर जंगल में जाता है, अथाह समुद्र में झूबता है, अपार सागर को पार करके प्रिय कुटुम्ब को छोड़कर अपरिचित देशन्तर को जाता है। मालिक के सामने नाचता है, गाता है, चापलूसी करता है, दीनहीन के सदृश्य मालिक की सेवा करता है। धन सम्पत्ति के लिये चोरी, डैकीती, काला बाजारी (दो नम्बर का काम), शोषण आदि भी करता है जिससे महापाप बन्ध होता है। धन उपार्जन के बाद भी शान्ति नहीं नहीं मिलती है। सुरक्षा के लिये दिन-रात चिन्ता करता है, धन—सम्पत्ति को छिपाता है, ताले के ऊपर ताले लगाकर रखता है, असुरक्षा के भय के कारण भयभीत रहता है, कोई अपहरण करने से उसके विरोध में लड़ाई भी करता है, विविध प्रकार की सुरक्षा करने पर भी पुण्य के अभाव से धन नहीं रहता है। इस प्रकार आय में दुःख, व्यय में दुःख, रक्षा में दुःख। इस प्रकार आदि—मध्य—अन्त में दुःख स्वरूप धन प्राप्त कर सुख मानता है, जैसे ज्वर ग्रसित रोगी धी पीकर सुख मानता है। ज्वर से ग्रसित रोगी के धी पीने पर उसका रोग बढ़ेगा ही घटेगा नहीं। उसी प्रकार धन से संताप बढ़ेगा ही घटेगा नहीं।

**आर्थिनो धनमप्राप्य धनिनोऽप्यवितृप्तिः।**

**कष्टं सर्वेऽपि सीदन्ति परमेको मुनिः सुखी॥(76)**

(आत्मानुशासन)

धन इच्छुक धन नहीं प्राप्त कर एवं धनी अतृप्ति के कारण दुःखी रहते हैं, परन्तु जिसने समस्त आशा को अपना दास बना दिया है, उस प्रकार के महामुनि ही सुखी हैं।

आशा दाशी कृतं येन तेन दासीकृतं जगत्।

आशायाश्च भवेत् दास सः दास सर्वं देहीनाम्॥

जिसने आशा को अपना दास बना दिया, उसने सर्व जगत् को दास बना दिया।  
जो आशा का दास बन गया वह विश्व जगत् का दास बन गया।

आशा गर्तः प्रति प्राणी यस्मिन् विश्वमणूपमम्।

कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता॥

(आत्मानुशासन)

एक-एक जीव का आशा रूपी गड्ढा इतना विशाल है कि उसमें यदि इस सम्पूर्ण विश्व को डाला जाये तो भी वह विश्व उस गड्ढे में एक अणु के समान दृष्टि गोचर होगा। यदि एक ही जीव की आशा के लिये यह सम्पूर्ण विश्व भी अत्यन्त कम है तब विश्व में स्थित अनंतानंत जीवों के लिये कितना भागांश मिलेगा। इसलिये विषय-इच्छा करना नितान्त भूल है। यह आशा रूपी गर्त (गड्ढा) अत्यन्त विचित्र है, क्योंकि एक बार गर्त में जितना-जितना द्रव्य डालते जायेंगे वह गर्त उतना-उतना पूर्ण होता जायेगा किन्तु आशा रूपी गर्त में जितना-जितना द्रव्य डालेंगे उतना-उतना आशा का गड्ढा बढ़ता ही जायेगा किन्तु कम नहीं होगा अर्थात् भरेगा नहीं, बढ़ता ही जायेगा और जितना-जितना कम करते जायेंगे उतना-उतना पूर्ण होता जायेगा और पूर्ण आशा को निकाल देने से गड्ढा पूर्णरूप से भर जायेगा। यही इस गड्ढे की विचित्रता है। इसलिये आशा की पूर्ति आशा त्याग से ही होती है आशा करने से नहीं होती है।

गुणी पुरुष के लिये ही गुण गुण हुआ करते हैं। वे अगुणी के पास पहुँचकर तो उल्टे दोष रूप बन जाते हैं। नदी तो स्वच्छ सुमधुर जल उत्पन्न करती है परंतु वही जल सुमुद्र में पहुँचकर खारा (अपेय) हो जाता है।

ऐसे ही जो गुणवान् हैं वही गुणी के गुणों का समादर करेंगे। निर्गुणी गुणवान् के महत्व को क्या जानेगा? उसकी दृष्टि में तो गुण भी दोष बन जायेंगे।

\* \* \*

नीति निरुण जन चाहे निंदा हो या प्रशंसा, लक्ष्मी आये या जाये, मृत्यु आज आवे या कालांतर में परंतु वे न्याय मार्ग से कभी भी विचलित नहीं होते।

- आ. श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

## परिच्छेद-2

### जैनधर्म (वस्तु स्वभाव धर्म)

(6 द्रव्यों का धर्म) : (धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से)

“वस्तु सहावो धर्मो”-

वस्तु का स्वभाव धर्म: यह समग्र विश्व परिणमन शील होते हुए भी शाश्वतिक है अर्थात् विश्व की कभी सृष्टि नहीं हुई, कभी विनाश नहीं होगा, परन्तु प्रत्येक क्षण में परिणमन होता रहेगा। यथा

लोगो अकिञ्चिमो खलु अणाइणिहणो सहाविणवत्तो।

जीवाजीवेहिं फुडो सव्वागासावयवो णिच्छो॥

(त्रिलोकसार गाथा 4)

निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादिअनिधन, स्वभाव से निष्पन्न जीवाजीवादि द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश के अवयव स्वरूप और नित्य है।

“प्रतिक्षण गच्छतीति जगत्”

स्थिति जनन निरोध लक्षणं चरमचरं वजगत् प्रतिक्षणम्।

(वृहत् स्वयंभू स्तोत्र)

जो प्रतिक्षण गमन करता है अथवा परिणमन करता है उसको जगत् कहते हैं।

चराचर रूपी जगत् प्रतिक्षण उत्पन्न होता है, नाश होता है एवं स्थिति को प्राप्त होता है।

नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति।

(वृहत् स्वयंभू स्तोत्र)

सर्वथा असत् द्रव्य सर्वथा उत्पन्न नहीं हो सकता है एवं सर्वथा सत् द्रव्य का नाश नहीं हो सकता है, केवल परिवर्तन हो सकता है। जैसे दीपक की प्रज्ज्वलित अवरथा में समीपस्थ पुद्गल स्कंध प्रकाश रूप में परिणमन होते हैं एवं दीपक बुझने के पश्चात् वही प्रकाशमय पुद्गल स्कंध अंधकार (तम) रूप में परिणमित हो जाते हैं। परंतु पुद्गल स्कंधों का सर्वथा नाश नहीं होता है।

गीता में भी कहा है-

“नाऽसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।”

सर्वथा असत् का सद्भाव नहीं होता है एवं सर्वथा सत् का अभाव नहीं हो

सकता है। वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक लोगों ने भी सिद्ध किया है कि-

Nothing can be destroyed and nothing can be created but only the form can be changed.

कोई भी नवीन वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है। कोई भी सद्भूत द्रव्य का नाश नहीं होता है, परंतु उसके आकार प्रकार में परिवर्तन हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि विश्व अकृत्रिम, अनादि अनिधन एवं परिणमनशील है। इस विश्व में अर्थात् लोकाकाश में जीव द्रव्य एवं अजीव द्रव्य भरे हुए हैं। यह लोकाकाश (विश्व) अलोकाकाश के मध्य में स्थित है।

विश्व में सामान्य रूप से दो द्रव्य हैं— 1. जीव (Soul) 2. अजीव (Non Soul)। अजीव के पांच भेद हैं— 1. पुद्गल (Matter) 2. धर्म (Medium of motion) 3. अर्धर्म (Medium of rest) 4. आकाश (Space) 5. काल (Time) इसी प्रकार संपूर्ण द्रव्य छः प्रकार के हैं। इन द्रव्यों का जो स्वभाव है, वह “वस्तु स्वभाव धर्म” के अन्तर्भूत है। अतः सामान्य रूप से संपूर्ण द्रव्यों के ‘वस्तु स्वभाव धर्म’ निम्नलिखित हैं—

अस्थितं वस्तुतं पर्मयतं अगुरुलहुं भावो।  
उप्पादवयधुव्यतं सबं दव्याणं सामण्णो धम्मो॥

अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु-लघुत्व, उत्पाद-व्यय-धौव्य ये सर्व द्रव्यों का सामान्य धर्म है।

**अस्तित्व—** जिस धर्म के माध्यम से प्रत्येक द्रव्य विश्व में सद्भाव स्वरूप है, उसको अस्तित्व धर्म कहते हैं। होना, रहना, सद्भाव ये सब अस्तित्व के पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिए जैसे आकाश अथवा आत्मा-परमात्मा शाश्वतिक है, उसी प्रकार भौतिक द्रव्य भी शाश्वतिक हैं।

**वस्तुत्वः** वस्तुत्व धर्म के कारण प्रत्येक द्रव्य अंतरंग-बहिरंग के सद्भाव से अपना-अपना कार्य करता है।

**प्रमेयत्वः** इस धर्म के कारण प्रत्येक द्रव्य ज्ञान का विषय बनते हैं अर्थात् ज्ञान इस धर्म के माध्यम से ज्ञेय वस्तु को जानता है।

**अगुरुलघुत्व—** इस धर्म के कारण द्रव्य खण्डित होकर अन्य द्रव्य रूप परिणमन नहीं करता है। यह स्थितिस्थापक गुण है।

**उत्पाद, व्यय, धौव्य—** पूर्व पर्याय का नाश होना व्यय है, नवीन पर्याय की उत्पत्ति

अथवा सृष्टि होना उत्पाद है एवं दोनों परिस्थिति में द्रव्य का कायम रहना धौव्य है। जैसे-कुम्हार मिट्ठी से घड़ा बनाता है, इससे मिट्ठी रूप पूर्व पर्याय का नाश हुआ, घड़ा रूप उत्तर पर्याय की उत्पत्ति हुई और दोनों अवस्थाओं में मिट्ठी रूप द्रव्य का सद्भाव ध्वनता है।

### 1. जीव द्रव्य का धर्म

चेदणं णाणं दंसणं, सुहं अणंत विरीयं अब्बावाहं।

णिम्मम णिरापेक्खं जीवाणं उत्तमो धम्मो॥२६॥

**अर्थ—** चेतना—अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अवगाहनत्व, निर्मलत्व, निरापेक्ख भाव जीवों के उत्तम द्रव्य है।

उपरोक्त छहों द्रव्यों में जीव द्रव्य सबसे अति उत्तम द्रव्य है, क्योंकि जीव में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि उत्तम—उत्तम गुण पाये जाते हैं। विश्व में अनंतानंत स्वतंत्र—स्वतंत्र जीव हैं। उसमें से अनंत जीव स्वतन्त्र अनंत सुख को भोग करने वाले मुक्त जीव हैं और अनंत जीव कर्म बंधन में पड़कर परतन्त्र होकर अनंत दुःख सहने वाले भी हैं। सुख अथवा मुक्तावस्था, दुःख अथवा संसारावस्था को स्वयं जीव निर्माण करता है।

अप्पा कर्ता विकर्ता य, दुक्खाण य सुहाण्य।

अप्पा मित्तममित्तं य दुप्पद्धिय सुप्पद्धिय॥(बुद्धदेव)

**अर्थ—** आत्मा स्वयं सुख-दुख का कर्ता है। सुपथगामी आत्मा स्वयं का मित्र है एवं कुपथगामी आत्मा स्वयं का शत्रु है।

**स्वभावतः** प्रत्येक आत्मा द्रव्यदृष्टि से समान है, प्रत्येक आत्मा में अनंत सुख आदि गुणों का सद्भाव होते हुए भी स्व-अर्जित कर्म के कारण वह अनंत सुखादि वर्तमान में तिरोहित हैं, किन्तु नाश नहीं हुए हैं। जब प्रबुद्ध आत्मा स्व पुरुषार्थ के माध्यम से जीव के स्वभावभूत आगे वर्णित अहिंसा, उत्तम क्षमादि धर्मों का पालन करेगा तब पूर्व संचित कर्म नष्ट होकर तिरोहित ज्ञान-सुखादि गुण प्रकट हो जायेंगे। उस कर्म से रहित अवस्था के जीव को ही परमात्मा बन जाता है। जिस प्रकार खान से निकला हुआ अशुद्ध सुवर्ण, सोलह ताप अग्नि से शुद्ध स्वर्ण हो जाता है, उसी प्रकार कर्म-कलंक से दूषित संसारी आत्मा भी धर्म रूप अग्नि

से शुद्ध होकर परमात्मा बन जाता है।

### मुक्त जीव

समस्त कर्म से मुक्त होने के बाद मुक्त जीव एक समय में सिद्धशिला में विराजमान हो जाते हैं और वहाँ पर अनंत सुखादि गुणों को भोगते हुए वहाँ ही भविष्यत अनंत काल तक स्थिर रहते हैं। संसार में वापिस आने के कारण रूप कर्म के अभाव से पुनः संसार में नहीं आते हैं। वहाँ से ही विश्व को देखते, जानते हैं, परन्तु किसी के भी कर्ता धर्ता-हर्ता नहीं हैं। क्योंकि वे राग-द्वेष से रहित हैं।

### संसारी जीव

संसारी जीव के दो भेद हैं— (1) स्थावर (2) त्रस

**स्थावर**—जिस जीव में केवल स्पर्शन इन्द्रिय ही रहती है, उस जीव को स्थावर जीव कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—

(1) पृथ्वीकायिक (2) जलकायिक (3) अग्निकायिक (4) वायुकायिक (5) वनस्पतिकायिक।

**पृथ्वीकायिक**—जिस जीव का स्वरूप पृथ्वी स्वरूप है, उसे पृथ्वीकायिक जीव कहते हैं, पथर, मिट्ठी, मणि आदि इसके भेद हैं।

**जलकायिक**—जल ही जिस जीव का शरीर है, उसे जलकायिक कहते हैं। जैसे—पानी, ओस, बर्फ आदि।

**अग्निकायिक**—अग्नि ही जिसका शरीर है, उसे अग्निकायिक जीव कहते हैं। जैसे—अग्नि, दीप-शिखादि।

**वायुकायिक**—जिसका शरीर वायु ही है, उसे वायुकायिक जीव कहते हैं। जैसे—हवादि।

**वनस्पतिकायिक**—जिस जीव का शरीर वनस्पति है, उसे वनस्पतिकायिक कहते हैं। जैसे—आम का वृक्ष, गुलाब का वृक्ष, रामफल का वृक्ष, सीताफल का वृक्ष आदि।

### निगोदियां जीव—

वनस्पति के दो भेद हैं— (1) साधारण वनस्पति (2) प्रत्येकवनस्पति।

**साधारण वनस्पति**: जिस वनस्पतिकायिक जीव के एक शरीर के आश्रय में अनंतानंत जीव रहते हैं और वे सब एक साथ जन्म लेते हैं, एक साथ श्वासोच्छवास लेते हैं, एक साथ भोजन करते हैं एक साथ मरते हैं उन्हें साधारण वनस्पति कहते

हैं। इन्हें ही निगोदियां जीव कहते हैं।

वर्तमान जीव विज्ञान की उपेक्षा हम इसे बैकटीरिया या वायरस कह सकते हैं। उपरोक्त पांच स्थावर में शरीर, बल, स्पर्शन इन्द्रिय, श्वासोच्छवास एवं आयु प्राण इस प्रकार चार प्रकार होते हैं। वे जन्म लेते हैं, आहार ग्रहण करते हैं, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं, भयभीत होते हैं, जीवनोपयोगी सामग्री संग्रह करते हैं। वृद्धि को प्राप्त होते हैं, मैथुन करते हैं एवं मरते भी हैं।

उपरोक्त पांच स्थावर के दो भेद हैं— (1) सूक्ष्म (2) बादर।

### सूक्ष्मजीव

सूक्ष्मजीव बिना आधार से रह सकते हैं, इसलिए सूक्ष्मजीव सम्पूर्ण लोक में भरे हैं। सूक्ष्मजीव दूसरों को बाधा नहीं देते हैं एवं दूसरों से बाधित नहीं होते हैं, अर्थात् सूक्ष्मजीव को कोई रूकावट डाल नहीं सकता है, मार नहीं सकता है, जला नहीं सकता है।

### बादरजीव

बादर जीव को रहने के लिए आधार चाहिये। इसलिये बादर जीव सम्पूर्ण लोक में भरे हुए नहीं है, परन्तु आठ पृथ्वी के आधार पर एवं स्थूल जीवों के शरीर में रहते हैं।

### नित्यनिगोद

जो अभी तक त्रसपर्याय को प्राप्त नहीं हुए हैं और आगे भी त्रसपर्याय को प्राप्त नहीं होंगे, उनको नित्यनिगोद कहते हैं। अन्य मतानुसार जो अभी तक त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं किये हैं, किन्तु भविष्य काल में त्रसपर्याय को प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें नित्य निगोद कहते हैं। इस जीव के परिणाम अत्यन्त कलुषित होने के कारण निगोद अवस्था को त्याग कर त्रसअवस्था को प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ हो जाता है।

**इतरनिगोद या चतुर्गति निगोद**—जो निगोदिया जीव निगोद-अवस्था को त्याग करके त्रसपर्याय को प्राप्त कर पुनः निगोद-अवस्था को प्राप्त करते हैं उनको इतरनिगोद कहते हैं।

### त्रसजीव

जो त्रस नाम कर्म उदय से द्वीन्द्रियादि जाति में उत्पन्न होते हैं, उनको त्रसजीव कहते हैं। त्रस के चार भेद हैं, (1) द्वीन्द्रिय (2) त्रीन्द्रिय (3) चतुररिन्द्रिय (4)

पंचेन्द्रिय। यह जीव भय से भयभीत होकर प्राण (रक्षा) के लिये भागते हैं, इसलिये भी इनको त्रस कहते हैं। स्थावरजीव प्रायः भय से भयभीत होकर भाग नहीं पाते हैं।

### द्वि-इन्द्रिय-जीव-

जिस जीव में स्पर्शन, रसना इन्द्रिय होती हैं, उन्हें द्वि-इन्द्रिय-जीव कहते हैं। यथा-शंख, लट आदि।

### त्रि-इन्द्रिय-जीव-

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, ग्राण इन्द्रिय होती है, उन्हें त्रि-इन्द्रिय-जीव कहते हैं, यथा-चींटी, खटमल आदि।

### चतुरिन्द्रिय-जीव-

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, ग्राण, चक्षु इन्द्रिय होती हैं। यथा-मक्खी, भौंरा, पतंगा, मच्छर आदि।

### पंचेन्द्रिय-जीव-

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, ग्राण, चक्षु एवं कर्ण इन्द्रिय होती है, उन्हें पंचेन्द्रिय-जीव कहते हैं। यथा-मनुष्य, गाय, पक्षी, देव, नारकी आदि।

स्पर्शन (चर्म), रसना (जिह्वा), ग्राण (नाक), चक्षु (नेत्र) कर्ण (कान) ये पांच इन्द्रियाँ हैं।

### पंचेन्द्रिय जीव के दो भेद— 1. असंज्ञी 2. संज्ञी

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव— पंचेन्द्रिय सहित, किन्तु मन रहित जीव को असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे-जल-सर्प, कुछ तोता, गोह सर्प आदि।

एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तक में मन नहीं रहता है तो भी पंचेन्द्रिय मन रहित जीव को ही असंज्ञी कहते हैं। एकेन्द्रियादि को नहीं कहते हैं। मन रहित संसारी जीव विशेष उपदेश ग्रहण नहीं कर सकता है। उनमें हिताहित विचार करने के लिये विवेक नहीं होता है। उनमें सम्यग्दर्शन भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। इसलिये वे मोक्षमार्गी भी उस पर्याय में नहीं बन सकते हैं। इस प्रकार के जीव अनंतनांत हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव— पांच इन्द्रिय और मनसहित जीव को संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। यथा-मनुष्य, देव, नारकी, गाय बैल आदि।

संज्ञी जीव उपदेश ग्रहण कर सकता है, इनमें विशेष विवेक रहता है, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है एवं उसी पर्याय में मोक्ष भी जा सकता है।

आधुनिक विज्ञान केवल पंच स्थावर जीव में वनस्पति कायिक जीव को जीव सिद्ध कर पाया है, अन्य चार स्थावर (पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक) को अभी तक जीव सिद्ध नहीं कर पाया है। कुछ वनस्पतिकायिक अत्यंत स्थूल होने के कारण उनको जीव सिद्ध करना सरल है किंतु चार स्थावर जीवों के शरीर इतने सूक्ष्म हैं कि उनके एक शरीर को हमें चक्षु अथवा यंत्र के माध्यम से देखना कठिन हो जाता है। उदाहरण स्वरूप एक जल बिन्दु एक जलकायिक जीव नहीं है, किंतु असंख्यात जलकायिक जीवों का शरीर है। तो विचार कीजिए कि एक शरीर कितना सूक्ष्म है और उस जैविक शरीर में जो क्रिया होती है, उसका वैज्ञानिक लोग भी खोज नहीं कर पाये हैं।

भारत के स्वनामधन्य वैज्ञानिक डॉ. जगदीशचंद्र बोस ने 1806 में वनस्पति को वैज्ञानिक दृष्टि से जीव सिद्ध करके विज्ञान जगत को चमकृत कर दिया जिससे उन्हें सर्वत्र सम्मान मिला। परन्तु जैनधर्म में लिखित रूप से ईसा (ईशामसीह) पूर्व से भी वनस्पति जीव रूप में प्रसिद्ध है, इसके साथ-साथ अन्य चार प्रकारके स्थावरों का भी वैज्ञानिक दृष्टि से वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि जैन धर्म केवल प्राचीन नहीं है, परन्तु एक प्रमाणिक वैज्ञानिक धर्म है। विज्ञान में जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान में जो वर्णन है, उससे बहुत ही विस्तृत एवं प्रमाणिक वर्णन जैन धर्म में है। वैज्ञानिकों को शोध करने के लिए जैन धर्म का जीव विज्ञान सर्चलाईट के समान कार्य कर सकता है।

प्रायः जीव की उल्कान्ति (विकास) एकेन्द्रिय से लेकर द्विन्द्रिय से त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय चतुरिन्द्रिय से पंचेन्द्रिय रूप में होती है परन्तु अनेक जीव सीधे एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय भी बन सकते हैं और पंचेन्द्रिय भी जघन्य कार्य के कारण एकेन्द्रिय बन सकते हैं तथा पंचेन्द्रिय आध्यात्मिक उल्कान्ति के माध्यम से भगवान् भी बन सकता है। इसलिये एक जीव की उल्कान्ति की अपेक्षा वैज्ञानिक डारविन का उल्कान्ति जीव सिद्धान्त कुछ अंश में सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है। क्योंकि वह संपूर्ण एक प्रकार की जीव जाति को परिवर्तित होकर दूसरी उच्च जीव जातिरूप से परिणमन करना मानता है। उनके सिद्धान्त के अनुसार उल्कान्ति ही उल्कान्ति है। परन्तु उल्कान्ति के साथ-साथ अवक्रान्ति (हास) भी होती है।

जीव संबंधी शोध करने के लिए वैज्ञानिकों को गोमट्सार जीव-कांड, धवला सिद्धान्त शास्त्र, द्रव्य संग्रह, तत्त्वार्थ-सूत्र आदि ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिये।

## २. पुद्गल द्रव्य का धर्म

### फास रस गंध वर्ण पुरण गलण येव। सद्ध छायाप्पकास पुग्गल दब्बाणं धम्मं॥

**अर्थ—** जिस द्रव्य में स्पर्श—रस, गंध—वर्ण होते हैं और जो पूरण—गलन रूप होता है (पूरण अर्थात् मिलना, गलन अर्थात् बिछुड़ना) और जो शब्द—छाया—प्रकाश रूप परिणमन करता है, उसको पुद्गल कहते हैं। दृश्यमान समस्त जगत् पुद्गल ही है। जिसको छूकर जाना जाता है, देखकर जान जाता है, चखकर जाना जाता है, सूँघकर जाना जाता है और सुनकर जाना जाता है, उन समस्त द्रव्य पुद्गल ही है।

अप्, तेज, वायु, अग्नि आदि पुद्गल ही हैं। विज्ञान इस को Element कहता है। पुद्गल दो प्रकार का है— १. अणु, २. स्कंध

१. अणु : पुद्गल का अविभाज्य प्रदेश जो कि पुनः किसी भी प्रक्रिया से खंडित नहीं हो सकता है एवं जिसका आदि—मध्य—अन्त एक ही है और जो अग्नि से जलता नहीं है, पानी से गीला नहीं होता, किसी यंत्र के माध्यम से अथवा चक्षु से दिखाई नहीं देता है, उसे अणु कहते हैं। परमाणु जब मंद गति में गमन करता है तब एक समय में एक प्रदेश गमन करता है और जब तीव्र गति से गमन करता है तब एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता है। मध्यम गति में अनेक विकल्प है। अणु जब गमन करता है, तब उसकी गति को कोई भी वस्तु, यंत्रादि नहीं रोक सकते हैं।

(एक राजू अर्थात् असंख्यात् योजन है। जिसको वैज्ञानिक दृष्टि से असंख्यात् प्रकाश वर्ष कह सकते हैं।) (एक सैकण्ड के असंख्यात् भाग को एक समय कहते हैं।)

२. स्कंध : एकाधिक परमाणु जब उपयुक्त—योग्य रूक्षत्व (ऋण) एवं स्तिर्धत्व (धन) गुण के कारण विशेष से बंधते हैं, तब स्कंध उत्पन्न होता है। सूक्ष्म अवगाहनत्व गुण के कारण एवं विशेष बंध प्रक्रिया के कारण संख्यात्—असंख्यात्—अनंत या अनंतानंत परमाणु बन्धने के बाद भी चक्षु इन्द्रिय के अगोचर हो सकते हैं। पंचेन्द्रियों के द्वारा गृहित समस्त पुद्गल स्थूल स्कंध ही हैं। कुछ सूक्ष्म स्कंध को इन्द्रिय के माध्यम से भी नहीं देख सकते हैं नहीं जान सकते हैं।

वैज्ञानिक लोग कुछ वर्ष पूर्व प्रकाश, विद्युत आदि को द्रव्य रहित केवल शक्ति

मानते थे परन्तु वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक आइन्स्टीन आदि ने सिद्ध किया है कि जहाँ पर भौतिक शक्ति है, वहाँ भौतिक द्रव्य है जहाँ पर भौतिक द्रव्य रहेगा वहाँ भौतिक शक्ति रहेगी।

इसको सिद्ध करने वाला आईन्स्टीन का सूत्र है  $E=MC^2$ । परन्तु जैनधर्म प्रकाश, विद्युत, उद्योग (चन्द्र किरण), सूर्य किरण, अंधकार आदि को पुद्गल की पर्याय रूप में प्राग् ऐतिहासिक काल से ही मान रहा था। विज्ञान जो ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, आदि १०५ या ८५ मौलिक तत्व मानता है वह वस्तुतः एक पुद्गल द्रव्य ही है। क्योंकि उसमें स्पर्श—रस, गंध, वर्ण गुण पाये जाते हैं। विज्ञान जिसको वर्तमान अणु मानता है वह जैन सिद्धान्त की अपेक्षा स्थूल स्कंध ही है जिसमें अनंतानंत परमाणु मिले हुये हैं। वैज्ञानिक लोग परमाणु को अविभाज्य मानते हुये भी उनके द्वारा माना हुआ परमाणु पुनः पुनः अनेक विभाग में विभाजित होता जा रहा है। इससे सिद्ध होता है कि उनका सिद्धान्त अपरिवर्तित, पूर्ण—सत्य—सिद्धान्त नहीं है।

अन्तरंग एवं बहिरंग कारण अर्थात् वातावरण के कारण पुद्गल में विभिन्न परिवर्तन होता रहता है। पुद्गल शुद्ध परमाणु रूप परिणमन होकर भी पुनः अशुद्ध पर्याय रूप में परिणमन कर सकता है। भौतिक वस्तु की ठोस अवस्था, तरल अवस्था एवं बाष्प अवस्था पुद्गल की पर्याय ही हैं। पुद्गल में जो स्पर्श, रस, गंध वर्ण एक क्षण में है जिस रूप में, अन्य क्षण में उनका स्पर्श, रस गंध, वर्ण अन्य रूप में भी हो सकता है। जैसे— कच्चा आम का वर्ण हरा, स्पर्श कठोर, रस तीता व खट्टा, गंध (असुरभि गंध) होती है और वही आम जब पक जाता है तब वर्ण—पीला, स्पर्श—नरम, रस—मीठा और गंध सुगंधित हो जाती है। इसी प्रकार पुद्गल वर्ण से वर्णान्तर, रस से रसान्तर, स्पर्श से स्पर्शान्तर, गंध से गंधान्तर होकर विभिन्न वैचित्र पूर्ण अवस्था विशेष को प्राप्त होता रहता है।

आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक जगत् में जो खोज हुई है और खोज हो रही है, उसका क्षेत्र प्रायः पुद्गल ही है। विद्युत, अणुबम, रेडियो, टेलीफोन, टेपरिकार्डर, कम्प्यूटर, टेलीफोन, सिनेमा आदि केवल पुद्गल की ही देन है। पुद्गल में भी अनंत शक्तियाँ निहित हैं। पुद्गल जितना शुद्ध से शुद्धतर होता है, उतनी उसकी शक्तियाँ ऊर्जित होती जाती हैं। वैज्ञानिकों को पुद्गल सम्बन्धी शोध करने के लिए तत्वार्थ सूत्र का पञ्चम अध्याय, प्रवचन—सार, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थ बड़ा अवलम्बन हो सकते हैं।

### 3. धर्म द्रव्य का धर्म

अमुत्त पिच्च शुद्धं लोयायासं पमाण सिद्धम्।  
गई परिणयाणं जीव रूबीणं गमणे णिमित्तं धम्मम्।

धर्म द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य शुद्ध है, लोकाकाश प्रमाण है। गति परिणत जीव एवं पुद्गलों को गमन करने में उदासीन निमित्त होता है।

विश्व में जीव और पुद्गल गमनागमन रूप क्रिया करते हैं, उस गमनागमन क्रिया के लिए माध्यम चाहिए। उस माध्यम रूप द्रव्य को धर्म द्रव्य कहते हैं। यहाँ धर्मद्रव्य का अर्थ पुण्य रूप क्रिया या आचरण नहीं हैं परन्तु यह एक पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त अभौतिक, अमूर्तिक, नित्य, शुद्ध असंख्यात् प्रदेशी वाला एक अखण्ड द्रव्य है।

**गई परिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।  
तोयं जह मच्छाणं अच्छंताणेव सो णेई॥ (द्वि.सं.)**

जैसे गमन करती हुई मछली को पानी गमन करने में सहायक होता है परंतु पानी जबरदस्ती मछली को गमन नहीं करवाता है, उसी प्रकार गमन करते हुए जीव— पुद्गल द्रव्य का उदासीन निमित्त धर्म द्रव्य बनता है।

जिस प्रकार स्व-शक्ति से गमन करती हुई रेल के लिए रेल की पटरी की परम आवश्यकता होती है, रेल की पटरी के बिना रेल नहीं चल सकती है उसी प्रकार धर्म द्रव्य गति क्रिया के लिए नितांत आवश्यक है। विश्व की समस्त स्थानांतरित रूप क्रिया (एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए गमन) बिना धर्म द्रव्य की सहायता से नहीं हो सकती है, यहाँ तक कि श्वासोच्छ्वास के लिये, रक्त संचालन के लिये, पलक झपकने के लिए, अंग—प्रत्यंग संकोच विस्तार करने के लिए, तार, बेतार के माध्यम से शब्द भेजने के लिये, रेडियो, टी.वी. सिनेमा आदि में संवाद एवं चित्र भेजने के लिये, देखने के लिये एवं सुनने के लिये, ग्रह से ग्रहान्तर तक संवाद चित्र भेजने के लिए, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि के गमनागमन के लिए धर्म द्रव्य की सहायता नितांत आवश्यक है। धर्म द्रव्य के अभाव में ये क्रियायें हो ही नहीं सकती हैं।

धर्म द्रव्य के साथ वैज्ञानिक जगत् के ईंधर को कुछ हद तक समान मान सकते हैं परंतु जैनधर्म में जो तथ्य पूर्ण वर्णन है वह वर्णन वैज्ञानिक जगत् के ईंधर

में नहीं पाया जाता है। ईंधर का शोध अभी हुआ है किंतु धर्म द्रव्य का वर्णन जैन धर्म में प्राचीन काल से है। धर्म द्रव्य को विशेष जानने के लिए द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय, तत्त्वार्थ सूत्र का अध्ययन करना चाहिए। संग्रह, पंचास्तिकाय, मोक्ष-शास्त्र का पंचम अध्याय देखना चाहिये। धर्म द्रव्य का वर्णन जैन दर्शन में ही है अन्य दर्शन में नहीं हैं।

### 4. अधर्म द्रव्य का धर्म

अमुत्त पिच्च सुद्धं लोयायासं पमाण सिद्धम्।  
द्विठि परिणयाणं जीव रूबीणं द्विदि णिमित्तमधम्म॥

अर्थ— अधर्म— द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य—शुद्ध है, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात् प्रदेशी है। जिस समय में जीव एवं पुद्गल ठहरते हैं, उस समय अधर्म द्रव्य ठहरने के लिए उदासीन निमित्त कारण बनता है।

यहाँ अधर्म का अर्थ पाप क्रिया नहीं है परंतु अमूर्तिक लोकाकाश व्यापी एक अखण्ड शुद्ध द्रव्य हैं। जैसे गमन करते हुए पथिक जब वृक्ष की छाया में बैठता है तब छाया ठहरने के लिये उदासीन कारण बनती है। जैसे रेल को ठहराने के लिये स्टेशन की रेल पटरी सहायक होती है। जैसे बैठने के लिये कुर्सी, पाटा, चटाई आदि सहायक होती हैं किन्तु कुर्सी आदि जबरदस्ती मनुष्य को पकड़कर नहीं बैठाती। वैसे ही अधर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है। इसलिये उदासीन शब्द कहा है जो कि महत्व का है।

अधर्म द्रव्य के अभाव से स्थिर रहने रूप क्रिया नहीं हो सकती है। इसके अभाव से विश्व के सम्पूर्ण जीव एवं पुद्गल अनिश्चित एवं अव्यवस्थित रूप से सर्वदा चलायमान ही रहेंगे। टेबल के ऊपर पुस्तक रखने पर दूसरे समय में पुस्तक वहाँ पर नहीं रहेगी। गाड़ी को रोकने पर भी गाड़ी नहीं रुकेगी, कोई भी व्यक्ति कुछ निश्चित समय के लिये एक ही स्थान में खड़ा या बैठा नहीं रह सकता है। यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व यदृच्छाभाव ये यत्र तत्र फैल कर अव्यवस्थित हो जायेगा और वर्तमान में जो विश्व की संगठन (संरचना) है, वह नहीं रह सकती हैं। शरीर का भी जो संगठन है, वह भी फैलकर के विस्फोट होकर यत्र-तत्र बिखर जायेगा।

आधुनिक विज्ञान की अपेक्षा जो केन्द्राकरण शक्ति Gravitational force है उसके साथ अधर्म द्रव्य की कुछ सदृश्यता पायी जाती है। परंतु अधर्मद्रव्य की

जो सटीक वैज्ञानिक सूक्ष्म परिभाषा है, वह केन्द्राकर्षण शक्ति में नहीं है। इसके बारे में विशेष जानने के लिए द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। अधर्म द्रव्य का वर्णन जैन दर्शन में ही है, अन्य दर्शनों में नहीं है।

### 5. आकाश द्रव्य का धर्म

**अमुत्त णिच्च सुद्धं सव्वापि महादव्यम्।**

**सग-परओगासदाणं आगास दव्याणं धम्मम्।**

आकाश द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य, शुद्ध है, सर्व व्यापी है, सबसे बड़ा द्रव्य है, स्व-पर को अवकाश (स्थान) देना इस का धर्म है।

आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी, सर्वव्यापि, सबसे बड़ा द्रव्य है। अन्य पुद्गल आदि पांच द्रव्य इस आकाशके जिस मध्य भाग में रहते हैं उसे लोकाकाश (विश्व) कहते हैं। लोकाकाश केवल असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाश अमूर्तिक होने के कारण इसका भाग (टुकड़ा) नहीं हो सकता है तो भी यहाँ पर अन्य-अन्य द्रव्य पाये जाते हैं उसको लोकाकाश तथा शेष भाग को अलोकाकाश रूप में व्यवहार चलाने के लिए कल्पित किया गया है। आकाश (Space) अन्य द्रव्य से रहित एक शून्य खोखलापन नहीं है परन्तु वह स्वयं अस्तित्व, वस्तुत्व, अमूर्त आदि अनंत गुण सहित एक वास्तविक द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य के रहने के लिए यह द्रव्य सहायक होता है इसके अभाव में रहना असम्भव हो जायेगा। कुछ दर्शन आकाश को मानते हैं तो कुछ इसको नहीं मानते हैं। विज्ञान भी अभी जिस प्रकार जैन धर्म (दर्शन) में वर्णन है, इसी प्रकार मानता है। लोकाकाश के तीन भेद हैं। ऊर्ध्व लोक (स्वर्ग लोक) मध्य लोक (जिसमें भारत, एशिया, पृथ्वी, जम्बूद्वीप, लवण समुद्र आदि असंख्यात द्वीप समुद्र हैं) अधोलोक (नरकलोक)। आकाश में पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, निहारिकायें आदि रहते हैं।

### 6. काल द्रव्य का धर्म

**अमुत्त णिच्च सुद्धं पत्तेयं लोयाप्पदेसे द्विदं।**

**सग परपरिणयाणं णिमित्तं काल दव्यस्स धम्मं॥३॥**

अर्थ— काल द्रव्य अमूर्तिक, नित्य, शुद्ध एवं लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में स्वतन्त्र-स्वतन्त्र रूप से अवस्थित है। काल द्रव्य स्वयं के परिणमन के लिए तथा

जीव-पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश के परिणमन के लिए निमित्त सहायक होता है।

काल के दो प्रकार (1) निश्चय काल (2) व्यवहार काल।

(1) निश्चय काल — रलों की राशि की तरह स्वतन्त्र रूप से लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में स्थित होने वाले असंख्यात कालाणु निश्चय काल द्रव्य है।

(2) व्यवहार काल— सूर्य, चन्द्र आदि के गमन के कारण जो दिन, रात, ऋतु, अयन, घड़ी, घण्टा आदि जो व्यवहार होता है उसको व्यवहार काल कहते हैं। अढाई द्वीप में सूर्य, चन्द्र के गमन के कारण व्यवहार काल है। स्वर्ग, नरक में व्यवहार काल नहीं होनेपर भी यहाँ अर्थात् मध्यलोक की अपेक्षा वहाँ का व्यवहार चलता है। परन्तु निश्चय काल स्वर्ग— नरकादि सम्पूर्ण लोकाकाश में विद्यमान है। प्रत्येक द्रव्य में जो उत्पाद— व्यय आदि शुद्ध परिणमन होता है उसके लिये भी काल द्रव्य चाहिये। काल द्रव्य के अभाव से परिणमन का अभाव हो जायेगा, जिससे प्रत्येक द्रव्य कूटस्थ हो जायेगा, अर्थात् अपरिवर्तनशील हो जायेगा। कूटस्थ के कारण कोई भी कार्य नहीं हो सकेगा।

कुछ दार्शनिक केवल व्यवहार काल को मानते हैं और निश्चय काल के सद्भाव का निषेध करते हैं किन्तु निश्चय काल के अभाव में व्यवहार काल भी नहीं हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु प्रतिपक्ष सहित होती है अर्थात् व्यवहार का प्रतिपक्ष निश्चय होना चाहिये। वर्तमान में वैज्ञानिक लोग इसको (Time Substance) कहते हैं।

सारांश— विश्व संरचना के लिये जीव का स्थान सबसे महत्वपूर्ण हैं। जीव ज्ञाता है, दृष्टा है, कर्ता है, भोक्ता है, प्रभू है, विभु है। जीव बिना समस्त विश्व शमशान के समान सन्नाटामय चैतन्य रहित है। द्वितीय महत्वपूर्ण भूमिका पुद्गल द्रव्य की है। विश्व के संचालन में जितना जीव का हाथ है उतना ही हाथ पुद्गल का भी है। विश्व की समस्त भौतिक-संरचना पुद्गल से होती है। विश्व को गृह मानने पर गृह का मालिक जीव है एवं गृह निर्माण पुद्गल से होता है। धर्म द्रव्य, आने वाले पथिक के लिये मार्ग का काम करता है, जबकि अधर्म द्रव्य पथिक के लिये स्टेशन है। काल पुरातन को मिटाकर नवीनीकरण के लिये सूत्रधार है तो आकाश सबको विश्राम देने के लिए सहायता करता है। इस प्रकार विश्व के लिये छह द्रव्य परस्पर सहयोग देकर अनादि से सह-अवस्थान कर रहे हैं

एवं करते रहेंगे।

विश्व शाश्वतिक होने के कारण विश्व में स्थित संपूर्ण द्रव्य भी शाश्वतिक है। उनमें परस्पर सहकार से परिणमन होता रहता है। जैन धर्म, स्वाभाविक विश्व एवं द्रव्यों को मानता है। जैन धर्म वस्तु स्वभाव धर्म होने से विश्व जैसे अनादि-अनंत है, उसी प्रकार जैन धर्म भी स्वाभाविक एवं शाश्वतिक धर्म है। ऐतिहासिक शोध के अभाव से कुछ वर्ष पूर्व कुछ ऐतिहासिक विद्वान् एवं दार्शनिक विद्वान् जैनधर्म को अर्वाचीन मानते थे। कोई जैन धर्म को हिन्दु धर्म की शाखा, तो कोई बौद्ध धर्म की शाखा मानते थे, कोई जैन धर्म के संस्थापक महावीर या पार्श्वनाथ भगवान् को मानते थे। कोई-कोई प्राचीन सिन्धु करने के लिए आदिनाथ (ऋषभनाथ) भगवान् को मानते थे। परंतु जैन धर्म के संस्थापक अर्थात् धर्म को प्रारम्भ करने वाले कोई नहीं हो सकते हैं क्योंकि जैनधर्म एक प्राकृतिक (स्वाभाविक) धर्म है। ऋषभदेव-पार्श्वनाथ-महावीर या अन्यान्य जितने भी तीर्थकर हुये हैं, गणधर हुये हैं, आचार्य हुये हैं वे सब धर्म में आने वाले विकृति-मिथ्या मत तथा अंध-विश्वास को दूर करने वाले प्रचारक-प्रसारक हैं। किसी कारण से धर्म में आने वाले पतन का उत्थान करने वाले हैं। ऐसे तीर्थकर अभी तक अनन्त 24 तीर्थकर के रूप में हुये हैं और भविष्यत् में भी अनंत 24 तीर्थकर प्रचारक-प्रसारक होंगे। जैसे आकाश को कोई तैयार नहीं कर सकता है, किन्तु आकाश के विषय में जान सकता है, पुस्तक लिख सकता है, उसके बारे में व्याख्या कर सकता है, उसी प्रकार जैन धर्म का संस्थापक कोई नहीं हो सकता है परंतु उसको जान सकता है, उसका पुनरोद्धार कर सकता है। इसलिए जैन धर्म, हिन्दू धर्म या बौद्ध धर्म की शाखा नहीं है। जैन धर्म को, अन्य धर्मों की शाखा मानना, अपनी अयोग्यता का परिचय देना मात्र है। सत्य को न मानने पर भी कभी सत्य को आंच नहीं लगती न कभी आगे लगेगी।

### अनेकान्त एवं स्याद्वाद् धर्म

#### अनेकान्त-

स्वभाव से ही प्रत्येक द्रव्य अनेक धर्म से युक्त होता है इसलिये प्रत्येक द्रव्य स्वभावतः ही अनेकान्तमय है। जैसे रामचन्द्र एक मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे लव-कुश की अपेक्षा पिता, दशरथ की अपेक्षा पुत्र, लक्ष्मण की अपेक्षा बड़े भाई, सीता की अपेक्षा पति, जनक की अपेक्षा दामाद (जमाई), सुग्रीव की अपेक्षा मित्र, रावण की अपेक्षा पति, जनक की अपेक्षा दामाद (जमाई), सुग्रीव की अपेक्षा मित्र, रावण

की अपेक्षा शत्रु, हनुमान की अपेक्षा प्रभु आदि अनेक धर्म से युक्त थे। राम एक होते हुये भी दशरथ की अपेक्षा पुत्र होते हुये भी लव-कुश की अपेक्षा पिता रूप विरोधी गुण से युक्त थे। तो भी अपेक्षा की दृष्टि से किसी प्रकार का विरोध नहीं है। इसी प्रकार अन्यान्य गुण अपने अपने स्थान पर अविरुद्ध एवं उपयुक्त हैं।

100 संख्या 10 संख्या की अपेक्षा अधिक होते हुए भी 1000 संख्या की अपेक्षा कम है। जैसे सेव फल नारियल से छोटा होते हुये भी आँवले की अपेक्षा बड़ा है। आँवला सेव फल से छोटा होने पर भी इलायची की अपेक्षा बड़ा है। धी निरोगी के लिये शक्तिदायक होते हुए भी ज्वर-रोगी के लिये हानिकारक है। अग्नि चिमनी में रहते हुए उपकारक है परंतु पेट्रोल-टंकी में डालने पर अपकारक है। अग्नि एक होते हुए भी पाचकत्व, दाहकत्व, प्रकाशकत्व आदि गुणों के कारण अनेक भी है। एक आत्मा स्वभावतः एक होते हुए भी अस्तित्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य गुण के कारण अनेक हैं। इस प्रकार विश्व के प्रत्येक द्रव्य अनेक विरोधी गुणों से एवं अविरोधी गुणों से युगपत् (एक साथ) युक्त होने के कारण अनेकान्तमय हैं।

#### स्याद्वाद्

वक्ता एक समय में एक ही धर्म को कह सकता है, अन्य अनेक धर्म होते हुए भी वह नहीं कह सकता है। प्रतिपादित धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को स्वीकार करने के लिये अथवा सूचना के लिये स्यात् या कथंचित् शब्द प्रवक्ता प्रयोग करता है। अनेकान्त प्रकरण में बताया गया है कि प्रत्येक द्रव्य में एक साथ अनन्त धर्म विद्यमान रहते हैं। शब्द में सीमित शक्ति होने के कारण वक्ता एक समय में एक गुण का वर्णन कर पाता है अन्य धर्म का नहीं तो भी अन्य धर्म लोप नहीं होते हैं, किन्तु अविवक्षित हो जाते हैं। जैसे एक वक्ता बोलता है कि रामचन्द्र दशरथ के पुत्र थे। इस वाक्य में पुत्रत्व को छोड़कर पितादि अन्य धर्म का वर्णन नहीं किया, तो भी पितादि गुण लोप नहीं हो गये। इस पितादि गुण को सुरक्षित करने के लिये, उनकी सत्ता को स्वीकार करने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग करता है। स्यात् का अर्थ है, अपेक्षा से, कथंचित्, एक दृष्टि से। यदि वक्ता हठग्राही पूर्वक बोलेगा कि रामचन्द्र केवल पुत्र ही है तो अन्य पितादि धर्म लोप करने के कारण उसका अभिप्राय एवं वचन मिथ्या हो जायेगा।

## स्याद्वाद के सप्त भंग (प्रकार) हैं

1. स्यात् अस्ति— एक अपेक्षा से द्रव्य हैं। जैसे— रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं।

2. स्यात् नास्ति — अन्य अपेक्षा से द्रव्य नहीं। जैसे— रामचन्द्र लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है।

3. स्यात् अव्यक्तव्य — एक साथ दो गुणों का वर्णन एक शब्द में नहीं हो सकता है अतः अव्यक्तव्य है। जैसे— रामचन्द्र, दशरथ एवं लवकुश की अपेक्षा एक साथ क्या हो सकता है? पुत्र अथवा पिता? इस पिता—पुत्र रूपी गुण को हम दशरथ एवं लवकुश की अपेक्षा एक शब्द में वर्णन नहीं कर सकते हैं। इसलिये अव्यक्तव्य अर्थात् वचन के अविषय है।

4. स्यात् अस्ति नास्ति — स्वगुण की अपेक्षा एवं पर गुण की अपेक्षा जो क्रम से वर्णन किया जाता है उस भंग को अस्ति नास्ति भंग कहा जाता है। जैसे— रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है।

5. स्यात् अस्ति अव्यक्तव्य— क्रमशः स्वगुण की अपेक्षा द्रव्य है, और युगपत् स्वपर की अपेक्षा वस्तु अव्यक्तव्य है। जैसे— रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है और दशरथ तथा लवकुश की अपेक्षा युगपत् अव्यक्तव्य है।

6. स्यात् नास्ति अव्यक्तव्य— क्रमशः पर गुण की अपेक्षा द्रव्य नहीं है और युगपत् स्व पर गुण की अपेक्षा अव्यक्तव्य है। जैसे रामचन्द्र लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है और दशरथ तथा लवकुश की अपेक्षा युगपत् अव्यक्तव्य है।

7. स्यात् अस्ति नास्ति अव्यक्तव्य— क्रमशः स्वधर्म की अपेक्षा वस्तु है, पर धर्म की अपेक्षा वस्तु नहीं है, युगपत् स्वपर धर्म की अपेक्षा अव्यक्तव्य है। जैसे— रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है, दशरथ और लवकुश की अपेक्षा युगपत् कहने की अपेक्षा अव्यक्तव्य है।

अनेकान्त भावात्मक अहिंसा है, स्याद्वाद वाचनिक अहिंसा है। अनेकान्त एवं स्याद्वाद, समन्वय के लिये, विश्व शांति के लिये अमृततुल्य है।

द्रव्य में स्थित समस्त गुण, धर्म, पर्यायों की सत्ता को स्वीकार करने से द्रव्यों के पूर्ण गुणादि की रक्षा होती है तथा मन में यथार्थ भाव होने के कारण भाव अहिंसा होती है। अहिंसा का अर्थ दूसरों की सत्ता को स्वीकार करना भी है। स्याद्वाद स अन्य अविवक्षित धर्मों को वचन के माध्यम से घात नहीं पहुंचाने के कारण

वाचनिक अहिंसा हुई। विश्व में जो अशान्ति, विष्वाव, युद्ध होता है, उसका मूल कारण दूसरों की सत्ता को ठुकराना, अधिकार को स्वीकार नहीं करना, उनके सत्यांश को मान्यता नहीं देना है परन्तु अनेकान्त एवं स्याद्वाद उपरोक्त दोषों को दूर करते हैं, जिससे विश्व में समन्वय एवं शांति की स्थापना हो सकती है। दोनों सिखाते हैं कि तुम्हारा जो सत्य है उस सत्य को बिना त्याग किये अन्य के सत्यांश को स्वीकार करो, सन्मान दो।

"Right is mine" जो सत्य है वह मेरा है, यह अनेकान्त का अमर संदेश है। परन्तु "Mine is right" मेरा जो कुछ हो वह सब सत्य है मानना अनेकान्त एवं स्याद्वाद की उदारनीति के विरुद्ध है। वे इस संकीर्ण स्वार्थपूर्ण हठग्राहिता को नहीं मानते हैं। अनेकान्त से मनोभाव, हृदय उदार एवं विशाल हो जाता है। स्याद्वाद से वचन हित, मित, प्रिय अमृतोपम हो जाता है। अनेकान्त मानसिक औपर्याधि है एवं स्याद्वाद वाचनिक औपर्याधि है। पहिले अनेकान्त—स्याद्वाद के ऊपर गहन अध्ययन के अभाव से या कुछ संकीर्ण मनोभाव से कुछ लोग इसका विरोध करते थे। परंतु जितना—जितना मनुष्य समाज तार्किक की ओर बढ़ा, निरपेक्ष दृष्टि से देखने लगा, विज्ञान का नवीन खोज हुई धर्म एवं दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ तब अनेकान्त, स्याद्वाद का महत्व दिन दुगना रात चौंगुना बढ़ रहा है। इसका वर्णन अन्य धर्म में चत्र तत्र आंशिक रूप में होते हुये भी विधिवत् रूप से सूक्ष्म वर्णन नहीं है। वर्तमान भौतिक विज्ञान जगत् में महामना, सात्त्विक, समन्वय एवं अहिंसावाद के पुजारी महावैज्ञानिक आईन्स्टीन ने जो शोध, बोध करके जगत् को चमत्कृत कर दिया है। इससे विज्ञान में एक नई क्रांति एवं दिक् परिवर्तन हुआ है। उसका मूल कारण सापेक्ष सिद्धांत है। वर्तमान में डार्शनिक हो, वैज्ञानिक हो या राजनैतिक सब की दृष्टि अनेकान्त की ओर बढ़ रही है, यह विश्व के लिये मंगल सूचक है। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है—

जेण विणा लोगस्स य ववहार सवदा ण निवद्दुई।

तेण भुवणैकगुरुणां णमो अनेकान्त वायस्स॥

जिस अनेकान्त वाद के बिना लोक व्यवहार भी नहीं चलता है उस जगत का एकमेव गुरु अनेकान्त वाद को मेरा नमस्कार हो।

## मोक्ष मार्ग (रत्नत्रय धर्म)

सम्यक्‌श्रद्धान्, सम्यक्‌ज्ञान एवं सम्यक्‌चारित्र धर्म है, क्योंकि ये तीनों मिलकर मुक्ति का मार्ग बनते हैं। मिथ्या श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र अधर्म है, संसार का कारण है, बन्धन का कारण हैं।

यह रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चरित्र) धर्म है एवं मोक्ष मार्ग है, तीनों आत्मस्वरूप हैं, इसीलिये आत्मा ही मोक्षमार्ग है।

रत्नत्रय को व्यवहार से मोक्षमार्ग कहते हैं, परन्तु निश्चय से आत्मा ही मोक्षमार्ग है एवं स्वयं आत्मा ही मोक्ष है।

जैसे—मंजिल पर चढ़ने के लिये सीढ़ी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मोक्ष महल पर आरुढ़ होने के लिये मोक्षमार्ग रूपी सीढ़ी की आवश्यकता होती है। सीढ़ी के दो पैर के लिये दो लम्बी लकड़ी एवं बीच की आड़ी लकड़ी—सोपान के लिये छोटी—छोटी लकड़ियां चाहिये। इसी प्रकार मोक्षमार्ग ही सीढ़ी बन जाती है। एक या दो से नहीं बनती बल्कि तीनों चाहिये। इसी प्रकार मोक्षमार्ग के लिये उपरोक्त तीनों आवश्यक हैं, एक या दो से मोक्षमार्ग नहीं बना है। सम्यग्दर्शन एवं सम्यक्‌ज्ञान दो सीधी लकड़ी के समान हैं, तो सम्यक्‌चारित्र आड़ी लकड़ी (छोटी—छोटी लकड़ी) के समान है। जैसे सीढ़ी के मध्यवर्ती सोपान के लिये दोनों पैर रूपी आवलम्बन जरूरी है, उसी प्रकार सम्यक्‌चारित्र के लिये यथार्थ श्रद्धान् एवं ज्ञान चाहिये। जिस प्रकार भात बनाने के लिये चावल, अग्नि, पानी नितान्त आवश्यक है एवं एक के भी अभाव में भात नहीं बन सकता है उसी प्रकार मोक्ष के लिये रत्नत्रय की आवश्यकता है।

सम्यग्दर्शनादि तीनों को रत्नत्रय कहते हैं। जिस प्रकार रत्न, भौतिक द्रव्यों में मूल्यवान् श्रेष्ठ एवं दुर्लभ है, इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् में इन तीनों का मूल्य सबसे श्रेष्ठ है। इसलिये इनको रत्नत्रय कहते हैं। यह रत्नत्रय बाह्य भौतिक जगत् में नहीं है, परन्तु आध्यात्मिक जगत् में अर्थात् आत्मा में है। जैसे बर्फ के लिये पानी साधन है और वह साधन ही परिणमन करके बर्फ रूप में परिणमन करता है, उसी प्रकार मोक्ष के लिये व्यवहार से ये साधन हैं, परन्तु अन्त में जाकर रत्नत्रय ही मोक्ष रूप बन जाता है। रत्नत्रय, आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्यों में अर्थात् बाह्य अजीव द्रव्यों में नहीं होने के कारण स्वयं आत्मा ही रत्नत्रय स्वरूप है एवं मोक्षमार्ग स्वरूप है।

जैसे—एक बन्दी, विश्वास करता है—मैं बन्धन—मुक्त होऊँगा। तब वह कोई उपाय से उन बन्धन को काटता है एवं मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार कर्मों से बँधा हुआ जीव विश्वास (श्रद्धा) करता है कि, मैं कर्मों (संस्कार) से बँधा हुआ हूँ। बन्धन को काटने से मैं स्वतन्त्र सुख को प्राप्त करूँगा। किस प्रकार बन्धन मुक्त होऊँगा इस प्रकार जानना ज्ञान है एवं उस बन्धन को काटने के लिये प्रयत्न करना चारित्र है। इस को ही मोक्ष मार्ग कहते हैं। मोक्ष के लिये ही केवल श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र नहीं चाहिये परन्तु लौकिक एवं अलौकिक समस्त कार्य के लिये भी ये तीनों उपाय केवल आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हैं।

### रत्नत्रय की परिभाषा

सत्य की प्रतीति या विश्वास (आस्था) सम्यग्दर्शन है। तत्त्व का यथार्थ निश्चय करना उत्तम ज्ञान है। स्व—स्वरूप में आचरण करना उत्तम चारित्र है। इसके विपरीत रूप से अधर्म होता है अर्थात् सत्य की विपरीत प्रतीति, अयथार्थ निर्णय, स्व—स्वरूप से विपरीत आचरण अधर्म है।

### सम्यग्दर्शन की परिभाषा

मोक्ष मार्ग, मोक्ष मार्गी, मोक्ष तत्त्व, सत् शास्त्रों के ऊपर विश्वास रखना, यथार्थ दर्शन है और वह सम्यग्दर्शन आठ अंग सहित एवं तीन मूढ़ता रहित होता है। मोक्ष मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र, मोक्ष मार्गी अर्थात् साधु परमेष्ठी, मोक्ष तत्त्व अर्थात् शुद्ध आत्म तत्त्व, सत् शास्त्र अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग द्वारा प्रतिपादित, सर्व हितकारी अहिंसात्मक शास्त्र के ऊपर जो विश्वास (श्रद्धा) है, उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन तीन मूढ़ता रहित अर्थात् लोक मूढ़तादेव मूढ़ता और गुरु मूढ़ता रहित तथा अष्ट अंग सहित अर्थात् (1) निःशंकित (2) निःकांकित (3) निर्विचिकित्सा (4) अमूढदृष्टि (5) उपगृहन (6) स्थितिकरण (7) वात्सल्य (8) प्रभावना अंग सहित होता है।

### तीन मूढ़ता

(1) लोक मूढ़ता — धर्म भाव से नदी, समुद्र में स्नान करना, पत्थर, वृक्ष, दीवार, ईट, देहरी, सर्प, गाय, सिलोडा आदि को पूजना लोक मूढ़ता है। धर्म मानकर पहाड़ से गिरकर मरना, नदी या समुद्र में डूबकर मरना, तीर्थ क्षेत्र में आत्म हत्या करना, जमीन के अन्दर बैठकर मिट्टी से शरीर को ढांककर आर्त—रीद्र ध्यान से मरना, अग्नि में कूदकर मरना ये लोक मूढ़ता है। कांटे के ऊपर

सोना, चारों तरफ अग्नि जलाकर बीच में बैठना, मूढ़ता सहित विभिन्न काय क्लेश करना भी लोक मूढ़ता है। धर्म मानकर बलि आदि देना मूढ़ता है। पति के मरने के पश्चात् सती बनने के लिये अग्नि में गिरकर मरना भी लोक मूढ़ता है। इससे धर्म नहीं होता है, इसे धर्म मानना ही मूढ़ता है।

(2) देव मूढ़ता – राग-द्वेष-मोह विकार भाव से सहित स्त्री, परिवार, अस्त्र-शास्त्र, राग-रंग सहित देवों को वर आदि की अभिलाषा से पूजना देव मूढ़ता कहा जाता है। रागी-द्वेषी, स्त्री सहित, अस्त्र-शास्त्र धारी सच्चे देव नहीं होते हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप, मोह, विकार भाव से रहित, काम विकार से रहित, स्त्री-परिवार से रहित, अस्त्र-शास्त्र से रहित सच्चे देव होते हैं। इस प्रकार के भगवान् की भक्ति में मूढ़ता नहीं है, परन्तु सच्ची श्रद्धा-भक्ति एवं गुणानुराग है।

(3) गुरु मूढ़ता – राग-द्वेष, स्त्री-कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह सहित, मद्य, मांस आदि व्यसनों के सेवी, गांजा, तम्बाकू आदि का सेवन करने वाले तथा विभिन्न वस्त्र धारण करके अपने आपको साधु (श्रमण) समझने वाले धर्म-पाखण्डियों को गुरु मानकर पूजन-सत्कार करना, दक्षिणा-देना गुरु मूढ़ता है। इस प्रकार मूढ़ता को धर्म में या धर्म नीति में कहीं भी स्थान नहीं है। धर्म तो एक निर्मल आध्यात्मिक सोपान में क्रमशः चढ़ने पर एक दिन यह आत्मा अपने आपको पा लेता है, यहीं उसकी पूर्णता होती है, जिसे सिद्ध कह सकते हैं। अतः उस सिद्धत्व की प्राप्ति के लिये अपनी कल्पना से स्वच्छ आचरण करने वाले साधु की उपासना करना ही गुरु मूढ़ता है जो कि अर्धर्म है।

### सम्यग्दर्शन के आठ अंग

(1) निःशंकित अंग – धर्म में, धर्म के फल में, सत्य में शंका नहीं करना निःशंकित अंग है। धर्म से सदा सुख ही मिलता है और धर्म ही शरण है, इसमें शंका नहीं रखते हुये श्रद्धान करना निःशंकित अंग है।

(2) निःकांकित अंग – धर्म करके उससे घ्याति-पूजा-लाभ की भावना नहीं करना ही निःकांकित अंग है।

(3) निर्विचिकित्सा अंग – गुणी ज्ञानियों को देखकर उनकी घ्याति-पूजा सुनकर धूणा नहीं करना किन्तु गुणों में आदर रखते हुये उनका सम्मान करना निर्विचिकित्सा अंग है।

(4) अमूढ़दृष्टि अंग – सत्य की परीक्षा करके ही उसको स्वीकार करना अमूढ़दृष्टि अंग है।

(5) उपगृहन अंग – किसी धर्मात्मा व्यक्ति से किसी कारणवशात् प्रमाद या अज्ञानता से या अन्य क्राणों से भूल हो जाने पर उसको दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना, उपगृहन अंग है।

(6) स्थितिकरण अंग – किसी कारणवश धर्म मार्ग से च्युत धर्मात्मा को पुनः धर्म मार्ग में रिथित करना रिथितिकरण है।

(7) वात्सल्य अंग – निःस्वार्थ भाव से धर्म प्रीति से धर्मात्माओं से गोवत्स के समान प्रेम करना वात्सल्य अंग है।

(8) प्रभावना अंग – सर्व जनहित के लिये सत्य धर्म का ज्ञान करना, प्रशिक्षण शिविर लगाना, धर्मोपदेश देना, धर्मात्मा पुरुषों पर आने वाले कष्टों को आहार आदि दान देकर दूर करना प्रभावना अंग है।

### सम्यग्ज्ञान

श्रद्धानं सहितं ज्ञानं येन आत्मा विशुद्ध्यते।

चारित्र साधकः ज्ञानं सुज्ञानं आत्म विज्ञानम्॥

सम्यग्दर्शन सहित जो ज्ञान आत्म विशुद्धि का कारण है, तथा चारित्र का साधक ऐसे आत्म विज्ञान को सुज्ञान कहते हैं। श्रद्धान रहित विपुल ज्ञान सुज्ञान नहीं है परन्तु श्रद्धान सहित किंचित् भी ज्ञान सुज्ञान है। क्योंकि श्रद्धान सहित ज्ञान से आत्मा विशुद्धि होती है। जिस ज्ञान से आत्म विशुद्धि नहीं होती है, उसको सम्यग्ज्ञान नहीं कह सकते हैं। यह ज्ञान चारित्र के लिये साधक है। आत्म विज्ञान को सुज्ञान कहते हैं। आत्म ज्ञान रहित ज्ञान कुज्ञान है। सुज्ञान ही प्रमाण है।

सम्यग्ज्ञान के पांच भेद हैं– (1) मतिज्ञान (2) श्रुत ज्ञान (3) अवधिज्ञान (4) मनःपर्यय ज्ञान (5) केवलज्ञान।

### सम्यग्चारित्र

सुचारित्र पाप कर्मों से रहित होता है। आत्मामृत रस में लीन होना सुचारित्र है। यह सुचारित्र रलत्रय में सर्वत्रैष्ठ है क्योंकि ये साक्षात् मुक्ति के लिये साधक है। व्यवहार से पांचों पापों का त्याग करके निश्चय से आत्मा का रसास्वाद लेना सम्यक् चारित्र है। यह सुचारित्र जहाँ पर है वहाँ पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान निश्चित

रहेगा ही किन्तु जहाँ पर सम्यग्दर्शन एवं ज्ञान है वहाँ पर यह चारित्र हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। जैसे बंदी का श्रद्धान है कि में बंधन में हूँ, बंधन काटने पर मैं मुक्त होऊँगा किन्तु बंधन नहीं काटने के कारण अभी मुक्त नहीं है, परन्तु जहाँ पर वह बंधन को काटकर मुक्त हुआ, उसका श्रद्धान-ज्ञान रहता ही है। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा श्रद्धा की पूर्णता चतुर्थ गुणस्थान में हो जाती है तो भी पूर्ण रूप से बन्धन मुक्ति नहीं है, मात्र वह दृष्टि मुक्त है। सम्यग्ज्ञान की पूर्णता केवलज्ञान की अपेक्षा तेरहवें गुणस्थान में हो जाती है, परन्तु वहाँ पर भी पूर्ण रूप से मुक्ति नहीं है, क्योंकि अभी शेष अधातिया कर्म तथा नोकर्म सद्भाव है किन्तु जीवन मुक्त है। परन्तु जब चौदहवें गुणस्थान के अन्त में चारित्र की पूर्णता होती है, तत्क्षण ही पूर्ण रूप से बन्धन रहित होकर मुक्ति का पात्र होता है। तब वे सिद्ध, निरंजन, शाश्वतिक मुक्ति सुख को प्राप्त होते हैं। इसी कारण रत्नत्रय में सम्यक्चारित्र श्रेष्ठ है एवं मोक्ष के लिये साक्षात् उपादान कारण है। शेष दो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, चारित्र के लिये साधक है, अतः मोक्ष मार्ग में इसे परम्परा से मोक्ष का कारण भी कह सकते हैं।

## विश्व धर्म के 10 लक्षण

### (1) उत्तम क्षमा-धर्म

प्रतिशोध समर्थोऽपि यः आत्मभाव स्वभावतः।  
क्षमिस्यन्ति स्वपरान् सा उत्तम क्षमा भवेत्॥

**अर्थ—** प्रतिशोध शक्ति के होते हुए भी जो आत्मा के सहज स्वभाव से स्व-पर को क्षमा करता है, उसको उत्तम क्षमा कहते हैं।

क्ष=पृथ्वी। पृथ्वी जैसे सहन करती है, उसी प्रकार समता भाव से सहन करना उत्तम क्षमा है। जैसा कि पृथ्वी के ऊपर कृषक खेती करता है, तालाब कुओं, नहर, खान आदि खुदवाते हैं तो भी पृथ्वी क्षुभित नहीं होती है, उसी प्रकार दुष्ट अज्ञानी जीव गाली-निन्दा, प्रताङ्गना आदि करने पर भी जो समता भाव से सहन किया जाता है उसको 'उत्तम क्षमा' कहते हैं। क्षुभित होने के कारण होते हुए भी एवं प्रतिशोध लेने की शक्ति होने पर भी क्षुभित नहीं होना उत्तम क्षमा है। श्लोक में 'क्षमिस्यन्ति स्वपरान्' शब्द दिया गया है। इसका कारण यह है कि क्रोध से दूसरों से प्रतिशोध लेने के भाव होना अर्थात् अपनी आत्मा को क्षमा नहीं करना

है, जिससे महान् अक्षमा हुई। इसलिये मन में स्वयं क्षुभित नहीं होना वास्तव में स्वयं के ऊपर क्षमा है। अन्तरंग क्षमा भाव से दूसरों पर क्षमा भाव रखना दूसरों के ऊपर क्षमा है। जो इस प्रकार दोनों प्रकार की क्षमा धारण करता है वही यथार्थ में क्षमावान् है। किसी शक्तिशाली जीव के द्वारा कष्ट देने पर अपनी दुर्बलता के कारण तत्काल तो कोई प्रतिशोध नहीं लेता परन्तु मन में प्रतिशोध की भावना रखकर मन में वचार करता है कि "सुयोग्य अवसर प्राप्त होने पर बदला लूँगा" तब वह व्यक्ति यथार्थ से क्षमावान् नहीं है। कोई शक्तिशाली अन्याय- अत्याचार करता है, उसका विरोध करने के लिए शक्ति के अभाव से कोई बोलता है कि मैंने तुमको क्षमा कर दिया तो क्षमा नहीं हुई। अन्याय-अत्याचार-दुराचार का हिंसात्मक साधन या उपाय से विरोध नहीं करना चाहिये किन्तु अहिंसात्मक उपाय से निराकरण करना ही क्षमा है। यदि विरोध नहीं करते हैं तो वह अक्षमा धर्म है क्योंकि उससे दुनिया में अन्याय-अत्याचार-दुराचार एवं अन्यायियों का प्रभाव बढ़ता जाता है।

यदि सन्तान कुमारगामी है तो माता-पिता को अन्तरंग करुणा भाव से उसको दण्ड देकर सन्मार्ग में लगाना भी क्षमा धर्म है। क्योंकि उसमें प्रतिशोध की भावना नहीं बल्कि दूसरे का सुधार हो यही भावना है। जैसे-शिष्य के लिये गुरु, प्रजा के लिये राजा, जनता के लिये नगराधिपति, रोगी के लिये वैद्य, दोषी के लिये न्यायाधीश अपराधानुसार दण्ड देता है, तो वह भी क्षमा-धर्म के विरुद्ध नहीं है।

### (2) मार्दव धर्म

अभिमान का कारण होते हुए भी मृदुस्वभाव से अहंकार नहीं करना 'उत्तम मार्दवधर्म' है। यह मृदुता धर्म महान् गुणों का साधक है। अहंकार के कारणभूत विशेष ज्ञान, पूजा (बड़प्पन-प्रतिष्ठा) कुल, जाति, शारीरिक बल, ऋद्धि, (धन, वैभव, शक्ति) तप, शरीर की सुन्दरता आदि के होते हुए भी अहंकार नहीं करके मृदुता धारण करना मार्दव धर्म है। ज्ञानी सोचता है कि यह सब वैभव पूर्व कर्म के उदय से मिला है, पुण्य के अभाव से ये सब विलीन हो जायेंगे। इसलिये यह वैभव मेरा स्वभाव नहीं है, कर्मजनित है। मेरा आत्म वैभव, इस बाह्य वैभव से अनंत गुणा अधिक एवं शाश्वतिक है। कर्म ने मुझे ठगकर मेरे यथार्थ वैभव को लूट लिया है और यह तुच्छ वैभव मुझ को दे दिया है। दूसरी दृष्टि से मुझसे भी महामानी, वैभव सम्पन्न, शक्तिशाली, तपस्वी, सुन्दर आदि गुणों से अलंकृत

विश्व में विविध मानव हैं। उनके सामने मैं तो सूर्य के सामने जुगनू सदृश्य हूँ। इस प्रकार विचार करके ज्ञानी जन अहंकार नहीं करते हैं। जो जितना-जितना मृदु, विनयशील होता जाता है, उसको उतना-उतना सम्मान-महत्ता मिलती जाती है।

**सम्पूर्ण कुंभं न करोति शब्दं, अर्द्धघटं शब्दं करोति नूनम्।**

**सज्जन महान् न करोति गर्वं, गुण विहीनं बहुजल्प्ययंति॥**

पानी से भरा हुआ कलश शब्द नहीं करता है, अर्द्ध भरा हुआ कलश छल-छल शब्द करता है। जो सज्जन ज्ञानी महान् होते हैं, वे गर्व नहीं करते हैं। परन्तु जो गुण विहीन होते हैं, वे बहुत बकवास करते हैं। अहंकारी व्यक्ति, गुरुजनों को सम्मान नहीं देता है, विनय नहीं करता है। महाप्रवाह (Flood) से बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ जाते हैं, परन्तु बेंत, धास आदि को किसी प्रकार की क्षति नहीं होती है, क्योंकि पेड़ झुकता नहीं है जिससे पानी उसको उखाड़कर फेंक देता है परन्तु धास आदि नम्रता से झुकने के कारण पानी ऊपर से बह जाता है और उसकी किसी प्रकार की क्षति नहीं होती है। इस प्रकार दुनिया में जीने की एक बड़ी कला है नम्रता (विनयी) होना। जब वृक्ष में पुष्प-फलादि नहीं रहते हैं तब वृक्ष सीधा खड़ा रहता है, फूल आने के पश्चात् नम्र होता है। जितने फल अधिक आयेंगे एवं फल बड़े होते जायेंगे उतना ही वृक्ष अधिक नम्र होता जाता है। उसी प्रकार गुण विहीन नम्र नहीं होता है, अर्थात् झुकता नहीं है। अहंकारी ऊँट के समान सिर ऊपर करके अभिमान में चलता है और गुणी व्यक्ति नम्र होकर चलता है।

### (3) आर्जव धर्म

मन-वचन-काय से जो सरल भाव है उसको आर्जव धर्म कहते हैं। यह आर्जव गुण से महान् है और यह स्वर्गादि अभ्युदय-सुख एवं मोक्ष-सुख को देने वाला है।

बालिकवत् मन से, वचन से, काय से कपटता-मायाचार-वक्रता छोड़कर जो सरल चिंतन, सरल कथन एवं सरल काया से व्यवहार करते हैं उसको आर्जव धर्म कहते हैं।

**मनस्यैक वचनस्यैक कर्मण्येकं महात्मनाम्।**

महात्माओं की मन-वचन-काय की सरलतापूर्ण एक सी प्रवृत्ति होती है एवं दुर्जनों की मन, वचन, काय की प्रवृत्ति दूसरी ही होती है। जैसे-बगुला एक पैर से खड़ा रहकर ध्यानी के समान ध्यान करता है परन्तु मछली को देखते ही पकड़कर

खा जाता है। उसी प्रकार जो बगुला-ज्ञानी-ध्यानी रहते हैं, वे बाह्य से तो साधु पुरुष दिखाई देते हैं परन्तु अन्तरंग में महान् दुष्ट रहते हैं। ऐसे लोग ‘दिन का साधु रात का चोर’ कहावत को चरितार्थ करते हैं। उनके ‘मुख में राम बगल में छुरी’ रहती है। किसी भी प्रकार का पाप करके छिपाने से नहीं छिपता है और अधिक विकृतरूप धारणकर प्रकट होता है। जैसे कि लोक कहावत है-

पाप न छिपे कभी छिपाय, आग न छिपे रूई लिपटाय।

पाप का छिपाना अर्थात् अग्नि को रूई में छिपाने के सदृश्य है। जैसे आग को रूई से छिपाने से अग्नि छिपती नहीं है और अधिक प्रज्ञवलित हो उठती है, उसी प्रकार पाप को छिपाने से और भी अधिक पाप प्रज्ञवलित हो उठता है। मायाचारी से तिर्यक्य गति प्राप्त होती है और मायाचारी व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता है। बालक सरल होने से सब कोई उसको प्रेम, रनेह, आदर देते हैं और बालक से किसी भी प्रकार से दोष होने पर भी उसे विशेष दोषी नहीं मानते हैं, इसका मूल कारण है, सरलता है।

### (4) उत्तम शौच धर्म

लोभ कषाय रूपी कल्पष के त्याग से जो आत्मा में पवित्र, निर्मल भावना उत्पन्न होती है, उसको ‘शौच धर्म’ कहते हैं। यह शौच धर्म सर्व तीर्थ में उत्तम तीर्थ है। और यह तीर्थ समस्त सन्ताप को दूर करने वाला है।

‘लोभपाप का बाप बखाना’ के अनुसार लोभ पापों में बड़ा पाप एवं सर्व पापों का मूल लोभ प्रवृत्ति है इसलिये आदर्श जीवन धापन करने के लिये यह कलंक स्वरूप है। इस लोभ रूपी कलंक से आत्मा दृष्टित हो जाती है। लोभ रूपी कलंक के त्याग से, कीचड़ से रहित पानी जैसे स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा स्वच्छ हो जाती है। यह निर्लोभता रूपी शौच धर्म उत्तम तीर्थ है, जैसे उत्तम तीर्थ में स्नान करने से शारीरिक ताप नष्ट हो जाता है इसी प्रकार शौच रूपी तीर्थ में स्नान करने से तृष्णा, इच्छा, आकांक्षा रूपी अग्नि शान्त हो जाती है। जिससे मनुष्य को महान् आध्यात्मिक मानसिक शांति मिलती है।

अन्तरंग शुचिता रहित बाह्य शुचिता, उसी प्रकार है जैसे विष्ठा के घड़े को ऊपर से स्वच्छ करना। केवल बाह्य चर्म को धोने से अन्तरात्मा पवित्र नहीं होती है। महाभारत में कहा है-

आत्मा नहीं संयम पूर्ण तीर्था, सत्योदका शील तटोदयोर्मिः।

तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्रः न वारिणा शुद्धति चान्तरात्मा॥

आत्मा ही पवित्र नदी है, संयम रूपी पवित्र तीर्थ है, जो सत्य रूपी नीर (पानी) से भरा है, शील रूपी तट है, दया रूपी लहरें हैं ऐसे आत्म गंगा (नदी) में है पाण्डु नन्दन! तुम स्नान करो, जिससे आपकी आत्मा पवित्र होगी। केवल गंगा के पानी से स्नान करने से अन्तरात्मा पवित्र नहीं होगी। गंगा स्नान से आत्मा पवित्र हो जाती तो उसमें रहने वाले मेंढक-मछली की आत्मा पवित्र क्यों नहीं होती? आन्तरात्मा पवित्र करने के लिये लोभ कषाय रूपी कलंक त्याग करके शौच रूपी निर्मल जल से स्नान करना अत्यन्त अनिवार्य है।

### (5) उत्तम सत्य धर्म

सभ्दोहितं सत्यं वचः सत्यंशिवंसुन्दरम्।

सत्यं वस्तु-स्वरूपं च चिदानन्दं मंगलम्॥

प्राणियों के लिये हितकर वचन सत्य वचन हैं। सत्य ही शिव स्वरूप है एवं सुन्दर है। सत्य ही वस्तु का स्वभाव है और सत्य ही चिदानन्दमय एवं मंगल स्वरूप है।

केवल वह सत्य, सत्य नहीं है, जिससे प्राणियों का हित नहीं होता है किन्तु अहित होता है। परन्तु वह वचन सत्य है, जिससे प्राणियों का हित होता है। केवल सत्य वाचनिक नहीं होना चाहिये, वह मानसिक एवं शारीरिक भी होना चाहिये। सत्य को छोड़कर विश्व में अन्य कोई शाश्वत वस्तु नहीं है। सत्य ही शिव (शाश्वतिक मंगल) है। जो मंगल एवं शाश्वत होता है, वही सुन्दर है। यह जगत् सत्य में ही प्रतिष्ठित है। क्योंकि वस्तु स्वरूप सत् स्वरूप है। चिदानन्दमय मंगलमय भगवान् भी सत् स्वरूप है। महात्मा गांधी सत्य को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे, वे बोलते थे "Truth is God and God is truth" सत्य ही भगवान् है एवं भगवान् ही सत्य है। उनकी दृष्टि में सत्य को छोड़कर अन्य कोई भगवान् नहीं था। जैनाचार्यों ने भी कहा है—

'सच्च भयवम्' अर्थात् सत्य ही भगवान् है। जो सत्य बोलता है एवं सत्य आचारण करता है, वह जो कुछ बोलता है, उसको सब कोई मान्यता देते हैं और उसका वचन मंत्रवत् शक्तिशाली हो जाता है। सम्पूर्ण धर्म, दर्शन का साहित्य सत्य उपासक महापुरुषों के पवित्र वचन है, उनके पवित्र वचन ही उन् उन सम्प्रदाय के शास्त्र

बन गये हैं और अपने—अपने सम्प्रदाय के लोग उन् उन शास्त्रों को बहुत ही पूज्य दृष्टि से देखते हैं।

### (6) उत्तम संयम धर्म

पंचन्द्रियों का, मन का, निरोध करना एवं प्राणियों की रक्षा करना एवं आत्मा में लीन होकर आत्म-अमृत रूपी भोजन करने को संयम धर्म कहते हैं।

संयम दो प्रकार का है (1) इन्द्रिय संयम (2) प्राणी संयम

इन्द्रिय संयम— 1. स्पर्शन इन्द्रिय 2. रसना इन्द्रिय 3. ग्राण इन्द्रिय 4. चक्षु इन्द्रिय 5. कर्ण इन्द्रिय ये इन्द्रियाँ पांच हैं।

इन्द्रियों को अपने—अपने दुष्प्रवृत्ति रूपी विषयों से रोकना एवं मन की दुष्प्रवृत्ति को रोकना इन्द्रिय संयम है।

प्राणी संयम— 1. पृथ्वीकायिक 2. जलकायिक 3. अग्निकायिक 4. वायुकायिक 5. वनस्पतिकायिक 6. त्रसकायिक (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय) जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है। इन्द्रिय संयम एवं प्राणी संयम से आत्मा संयमित होकर आत्मा में ही रमण करने लगता है जिससे उसको आत्मानुभव रूप अमृत मिलता है। उस अमृत का पान करके वीर्यवान् होकर कर्म रूपी यम को नाश करके अजर—अमर शाश्वतिक मोक्ष रूपी अमृत पद को प्राप्त कर लेता है।

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।

दुर्भागाभरणप्रायो ज्ञानं भारः क्रिया विना॥

जिसका मन और इन्द्रिय असंयमित है, उसकी समस्त धार्मिक क्रियायें गज स्नान के समान हैं क्योंकि हाथी जैसे स्नान करके पुनः धूल, मिट्टी शरीर में डालकर गंदा हो जाता है, उसी प्रकार असंयमित व्यक्ति धर्म कार्य से जो कुछ शुद्धता को प्राप्त करता है, असंयम के माध्यम से पुनः मलिनता को प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार विधवा स्त्री आभूषण से अलंकृत होने पर शोभा नहीं देती है उसी प्रकार चारित्र रहित ज्ञान शोभा नहीं देता है, वह ज्ञान भार स्वरूप है।

जैसे सुशिक्षित भद्र शक्तिशाली घोड़ा मालिक का उपकार करता है एवं दुष्ट घोड़ा मालिक को विपत्ति में डालकर अपकार करता है, उसी प्रकार संयमित इन्द्रिय एवं मन प्राणी का उपकार करते हैं एवं असंयमित अवस्था में प्राणी को विपत्ति रूपी गड्ढे में डाल देते हैं। संयमित मन एवं इन्द्रिय, मन्त्री की पुलिस के समान

है एवं असंयमित मन एवं इन्द्रिय, चोर की पुलिस के समान है। मंत्री की सुरक्षा पुलिस करती है एवं मंत्री की आज्ञानुसार पुलिस चलती है। और पुलिस के अनुसार चोर चलता है एवं पुलिस चोर को दण्डित करती है। इसी प्रकार असंयम है। असंयमित मन एवं इन्द्रियाँ प्राणी के ऊपर शासन करते हैं एवं विभिन्न यातनाएँ देते हैं।

संयमित रूप से रेल गाड़ी चलती है तो किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं होती है, यदि रेल गाड़ी संयम को छोड़कर अर्थात् पटरी से हटकर चलती है तो दुर्घटना निश्चित है। उससे गाड़ी की भी क्षति होती है और यात्रियों की भी क्षति होती है। संयम से चाकू से फल काटने पर हाथ नहीं काटता है एवं असंयम से फल काटने पर अंगुली कट जाती है। संयम से अग्नि से काम लेने पर अनेक उत्तमोत्तम कार्य हो सकते हैं एवं असंयमित होकर अग्नि से कार्य करने पर अनेक विध्वंसक घटनायें घटती हैं।

महावीर भगवानने गौतम गणधरस्वामी को संबोधन करते हुए कहा था—  
“गोयम ! पमायेण एक समय न मुक्कऊ !”

हे गौतम! आपका एक क्षण भी प्रमाद से, असंयम से, लापरवाही से नहीं जाना चाहिये। क्योंकि—

संयम ही जीवन है एवं असंयम ही मृत्यु है।

अनेक दुर्घटनाएँ असंयम के कारण घटती हैं। लगाम रहित दुष्ट घोड़े पर बैठकर जाने वाले यात्रियों की जो दशा होती है, वर्तमान संयम रहित मनुष्य की भी वही स्थिति है। आधुनिक सभ्य व्यक्ति तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, परन्तु उसका लक्ष्य निश्चित नहीं है, मनोव्यापार डावाँडोल है, सुरक्षा की निश्चितता से रहित है। जैसे एक कार के लिये गति चाहिये, प्रकाश चाहिये एवं ब्रेक चाहिये उसी प्रकार जीवन रूपी कार के लिये उन्नति रूपी गति चाहिये, ज्ञान रूपी प्रकाश चाहिये एवं संयम रूपी ब्रेक चाहिये। ब्रेक रहित कार बेकार है उसी प्रकार संयम रहित जीवन बेकार है। ब्रेक रहित गतिशीलता जैसे अनेक दुर्घटनाओं का कारण बनती है, उसी प्रकार संयम रहित जीवन में अनेक दुर्घटनाएँ छा जाती हैं।

## (7) उत्तम तप धर्म

इच्छा निरोध को तप कहते हैं। वह तप बहिरंग अंतरंग के भेद से दो प्रकार का है। वह तप सम्पूर्ण मनोवांछित फल को देता है। कर्म रूपी वन को नाश करने के लिये अग्नि के तुल्य है।

अज्ञानी जीव मृग के समान मृगमरीचिका रूपी वैभव को, विषय वासना को

प्राप्त करके सुखी होना चाहता है, परन्तु अंततोगत्वा इच्छित फल को प्राप्त नहीं करके स्वयं ही मृग के समान मर मिटता है। जो ज्ञानी होते हैं, वे सोचते हैं एकतः संसार में सुख नहीं है। इच्छा की कभी पूर्ति होगी नहीं तब विफल प्रयास करना वृथा ही है। जिस प्रकार सूर्य की ओर पीठ करके अपनी छाया को पकड़ने के लिये दौड़ने पर छाया आगे-आगे भागती जाती है, उसी प्रकार वैभव को, इन्द्रिय जनित सुख को पकड़ने के लिये जितना उनके पीछे भागेंगे वे उतने ही आगे भागेंगे। परन्तु जैसे बैठ जाने से छाया पैर के नीचे स्वयमेव बैठ जाती है उसी प्रकार जो इच्छा को त्याग कर स्वयमेव में रिथर हो जाते हैं, उनकी इच्छा उनके चरण के नीचे बैठ जाती है।

**बाह्य-अभ्यन्तर भेद** से तपाचरण दो प्रकार के हैं। बाह्य तप छह प्रकार के हैं। 1. अनशन 2. अवमौदर्य 3. वृत्ति परिसंख्यान 4. रस त्याग 5. एकांतवास 6. काय क्लेश। ये बाह्य तप अन्तरंग तप के लिए साधन हैं। इससे अंतरंग तप वृद्धि को प्राप्त होता है।

### बाह्य तप

1. **अनशन तप**— इन्द्रियों का दमन करने के लिये, स्वारथ्य सम्पादन करने के लिये, कषायों को मंद करने के लिये, आत्म बल वृद्धि के लिये, ब्रह्मचर्य को निर्मल बनाने के लिये, शरीर को हल्का एवं रूक्तिमय बनाने के लिये ज्ञान-ध्यान सम्पादन के लिये जो 4 प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है उसे अनशन कहते हैं।

2. **अवमौदर्य तप**— आलस्य एवं प्रमाद को दूर करने के लिये एवं उपरोक्त अनशन के कारण को यथायोग्य सम्पादन के लिये भूख से कुछ कम आहार करना अवमौदर्य तप है।

3. **वृत्ति परिसंख्यान**— इच्छा निरोध के लिये, इन्द्रिय दमन के लिये, अनियत आहार के लिये, राग-द्वेष दूर करने के लिए आहार संबंधी जो नियम होते हैं उसे वृत्तिपरिसंख्यान तप कहते हैं।

4. **रस परित्याग**— जिव्हा-लालसा को जीतने के लिये, इन्द्रिय दमन के लिये, ब्रह्मचर्य व्रत निर्मल बनाने के लिये, रस की गृद्धता कम करने के लिए एकाधिक रस तथा सर्व रसों का त्याग करना रस परित्याग तप है।

5. **एकांतवास-** ध्यान-अध्ययन, मनन चिंतन सुचारू रूप से करने के लिये,

राग-द्वेष कम करने के लिये, प्रशांत भावना के लिये, स्त्री- पुरुष, नपुंसक, पशु, दुष्ट व्यक्ति, क्षुद्र जीव से रहित एकान्त स्थान में बैठना-उठना-शयन करना अध्ययन करना एकान्तवास या विविक्त शव्यासन है।

**6. काय-क्लेश-** शरीर से ममत्व घटना के लिये, आत्म साधन के लिये जो शरीर को अनेक प्रकार के आतापन योगादि से सुसंस्कारित या प्रशिक्षित किया जाता है उसको कायक्लेश तप कहते हैं। किन्तु रलत्रय से रहित या विशुद्ध परिणाम रहित अज्ञानता से किया जाने वाला काय-क्लेश तप नहीं, वह स्वयं की मूढ़ता के साथ मूर्खता है।

### छह अन्तरंग तप

1. प्रायश्चित्त 2. विनय 3. वैद्यावृत्ति 4. स्वाध्याय 5. व्युत्सर्ग 6. ध्यान ये छह प्रकार के अन्तरंग तप हैं।

**1. प्रायश्चित्त-** पूर्व कृत मिथ्या भाव, कर्म एवं प्रवृत्ति का शोधन करने के लिये चित्त विशुद्धि के लिये, कर्म निर्जरा के लिये, सब के विश्वास पात्र बनने के लिये, गुरु-साक्षी पूर्वक या गुरु के नहीं रहने पर भगवान् के समक्ष, स्व साक्षी पूर्वक स्व निंदा-गर्हा आलोचना-प्रतिक्रमण आदि पूर्वक जो आत्म शोधन किया जाता है, उसको प्रायश्चित्त कहते हैं। प्रायश्चित्त से मन की शुद्धि होती है, जिससे अनेक मानसिक तनाव, ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, मन स्वच्छ-निर्मल हो जाता है। अनेक मानसिक रोग के साथ-साथ शारीरिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं। वर्तमान की मानसिक चिकित्सा की प्रणाली अधिकांशतः इसके ऊपर निर्भर है।

**2. विनय-** गुण एवं गुणी के प्रति जो आदर-सत्कार पूज्य एवं विनम्र भाव है उसी को विनय तप कहते हैं। विनय के पात्र की दृष्टि से पाँच प्रकार है—

1. ज्ञान विनय 2. दर्शन विनय 3. चारित्र विनय 4. तप विनय 5. उपचार विनय

**1. ज्ञान विनय** — ज्ञान एवं ज्ञानी पुरुष का विनय करना ज्ञान विनय है।

**2. दर्शन विनय** — दर्शन से यहाँ सम्यग्दर्शन लेना। सम्यक् दर्शन एवं सम्यग्दृष्टि का विनय करना दर्शन विनय है।

**3. चारित्र विनय**— चारित्र एवं चारित्रवान् पुरुषों का विनय करना चारित्र विनय है।

**4. तप विनय**— तप एवं तपस्वियों का विनय करना तप विनय है।

5. उपचार विनय— गुरुजन आदि तथा अपने से बड़े गुणवान्, सज्जन, धर्मात्माओं को उच्चासन देना, अभिवादन करना, उनकी प्रत्यक्ष और परोक्ष से प्रशंसा करना, उनके साथ भेद-भाव रहित व्यवहार करना आदि उपचार विनय है।

### विनय का फल

विनयवान् व्यक्ति जिस गुण का विनय करता है उसे उस गुण की प्राप्ति हो जाती है। आचार्य कुन्दकुन्द देव जैसे अध्यात्म के अमरगायक भी कहते हैं कि—

विणओ सासण मूलो, विणयादो संयमो तवो णाणं।

विणयेण विष्पृणसस्स, कुदो धम्मो कुदो य तवो।

(मूलाचार)

विनय शासन का मूल है। विनय से संयम, तप, ज्ञान की प्रगति होती है। विनय से रहित व्यक्ति का धर्म कहाँ है ? तप कहाँ है ? अर्थात् विनय रहित धर्म एवं तप निष्फल है।

विणयेण विष्पृणस्स हवदि सिक्खा णिरत्थ्या सव्वा।

विणओ सिक्खाह फलं विणय फलं सव्व कत्त्वाणं॥661॥

विणओ मोक्खद्वारो विणयादो संजमो तवो णाणं।

विणएणागाहिज्जदि आयरिओ सव्व संघो य॥662॥

विनय से रहित सम्पूर्ण शिक्षा निरर्थक हो जाती है क्योंकि शिक्षा का फल विनय है। यदि शिक्षा के माध्यम से विनय प्रकट नहीं हुआ तो विनय के अभाव से शिक्षा निष्फल होने से शिक्षा निरर्थक हुई, विनय का फल सर्व कल्याण है अर्थात् विनय से इह लोक में सम्मान-पूज्यता तथा परभव में स्वर्ग-मोक्ष मिलता है।

विनय मोक्ष के लिये द्वारा स्वरूप है। विनय से संयम, तप एवं ज्ञान प्राप्त होता है, विनय से आचार्य सम्पूर्ण संघ को अनुशासित करते हैं। निग्रह-अनुग्रह करते हैं एवं धर्म मार्ग में प्रवृत्त करते हैं। विनयशील शिष्य को गुरु प्रेम-आदर देते हैं, उसको योग्य शिक्षा ज्ञान-उपदेश देते हैं। विनय रहित शिष्य गुरु से तथा सहधर्मियों से भी सन्मान-आदर नहीं पाता है। गुरु उसको विशेष शिक्षा, ज्ञान व उपदेश नहीं देते हैं, जिससे उसके संयम-तप-ज्ञान की वृद्धि नहीं होती है परन्तु हास को प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है।

वर्तमान परिवारिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, शैक्षणिक क्षेत्र में, प्रशासनिक

क्षेत्र में, धार्मिक क्षेत्र आदि में केवल अविनय, उदण्डता एवं स्वेच्छाचार ही चल रहा है, जिससे अशांति-कलह, असंगठन, तनाव आदि का ही बातावरण है। अतः देश, राष्ट्र, समाज, परिवार में शांति का बातावरण बनाना चाहते हो तो आज विनय, सहन-शीलता को अपनाना ही अत्यावश्यक है।

3. वैद्यावृत्ति तप— गुरुजन, सहपाठी, साधर्मी, रोगी, विपत्तिग्रस्त जीवादि की निर्मल भाव से सेवा करना वैद्यावृत्ति तप है।

#### 4. स्वाध्याय तप

नामूनास्ति न वा भविष्यति तपः स्कन्धे तपो यत्सम्।

कर्मान्यो भव कोटिभिः क्षिपति यथोन्तर्मृहूर्तेन तत्॥

शुद्धि वानशनादि तोऽमित गुणां येन श्रुतेश्रन्नपि।

स्वाध्यायः सततं क्रियते स मृतावाराधना सिद्ध्येऽ।

अनशनादिक तप करके जो विशुद्ध परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, उनसे भी अनंत गुणी विशुद्धि को स्वाध्याय के द्वारा यह जीव प्रतिदिन भोजन करता हुआ भी प्राप्त कर लेता है। यथोशक्ति उपवासादिक करते हुये यदि स्वाध्याय किया जाय तब तो बात ही क्या है? इसी तरह जिन कर्मों को दूसरे तपेनिधि करोड़ों भवों में निर्जीर्ण कर सकते हैं, उन्हीं कर्मों को यह स्वाध्याय केवल अन्तर्मृहृत (कुछ कम दो घड़ी) मात्र काल में खपा देता है। तथा यह स्वाध्याय एक अपूर्व ही तप है जो कि अनेक अतिशयों से युक्त है। जैसा कि पहले बताया भी जा चुका है।

अनशनादिक छह प्रकार के बाह्य तप और प्रायश्चित्तादिक छह प्रकार के अंतरंग तप, इन सबमें इस स्वाध्याय के समान न तो कोई तप हुआ है, न है, न होगा। अतः मरण समय में आराधना की सिद्धि के लिये मुमुक्षुओं को नित्य ही स्वाध्याय करना चाहिये।

जो अध्ययन आत्मोन्नति के लिये किया जाता है वही यथार्थ स्वाध्याय है, यदि स्वाध्याय श्वाति-पूजा-लाभ या स्वयं के आचरण से पतित होकर अर्थोपार्जन के लिये, या केवल परोपदेशादि के लिये किया जाये तो वह स्वाध्याय यथार्थ से स्वाध्याय नहीं है। परन्तु अपध्यान या अर्थध्यान है एवं जिस शास्त्र से अर्थध्यान होता है किन्तु शास्त्र नहीं वह शरस्व है क्योंकि उसमें स्वयं का धातक है।

#### कायोत्सर्ग

कुछ निश्चित समय के लिये शरीर को पर द्रव्य मानकर, उससे निर्मम होकर एवं सम्पूर्ण अनर्थ का मूल मानकर शरीर से ममत्व त्याग करना कायोत्सर्ग है, इससे शारीरिक रोग नष्ट होते हैं, असंख्यात गुणित कर्मों की निर्जरा भी होती है।

#### ध्यान

जो सारो सब्ब सारेसु सो सारो एस गोयम।

सारं ज्ञाणंति पामेण सब्बं बुद्धेहिं देसिदं॥ (प्रतिक्रमण)

हे गौतम! विश्व में जो अनेकानेक सार वस्तु है उन समस्त सार वस्तुओं में भी सार अर्थात् श्रेष्ठ ध्यान है। इस प्रकार का उपदेश महावीर भगवान् ने अपने प्रिय शिष्य गौतम को दिया था।

“एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं”

चित्त को कोई एक ध्येय वस्तु में स्थिर करना ध्यान है। मन जब विभिन्न विषयों में विभक्त हो जाता है, तब मन में स्थिरता नहीं रहती है। अस्थिरता के कारण मन की ग्रहणशक्ति, स्मरणशक्ति, बुद्धि-प्रज्ञाशक्ति, आदि क्षीण हो जाती है। एक मानसिक शक्ति विभिन्न दिक् में विभाजित होने से उसकी संगठन शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिससे कोई भी कार्य करने के लिये पर्याप्त ऊर्जा का अभाव होता है, उससे कार्य उत्तम रीति से नहीं हो पाता है। इसलिये ध्यान की परम आवश्यकता है।

दीपशिखा स्वभाव से सीधी ऊपर जाती है। परन्तु वायु के संचार से शिखा अपनी उर्ध्व गति को छोड़कर इधर-उधर अस्त-व्यस्त गमन करती है, उसी प्रकार वित्त शक्ति भी राग-द्वेषादि विकार भाव रहित अवस्था में ऊर्ध्वमुखी होती है परन्तु राग-द्वेष रूपी वायु के प्रभाव से विक्षिप्त होकर अस्त-व्यस्त हो जाती है। इससे उसकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जब सूर्यरश्मि यवकाच (लेन्स) के माध्यम से केन्द्रित हो जाती है तब शीघ्र ही अग्नि उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार जब मन का केन्द्रियकरण (एकाग्र) हो जाता है तब ध्यान रूपी अग्नि शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। वह ध्यान अग्नि सम्पूर्ण कर्म ईंधन को जला डालती है।

“ध्यानाग्नि कर्मेन्धन भस्मसात् कुरुते क्षणात्।”

जैसे स्थिर-स्वच्छ पानी में मुख का दर्शन हो जाता है। परन्तु वायु के माध्यम

से जब पानी अस्थिर हो जाता है तब मुख का प्रतिबिंब नहीं दिखता। इसी प्रकार जब चित्तरूपी जल निर्मल एवं स्थिर होता है, तब आत्म साक्षात्कार—आत्मावलोकन होता है। परन्तु जब मन राग—द्वेष मोह—अज्ञान आदि भावों से विशुद्ध होकर अस्थिर एवं मलीन हो जाता है, तब आत्म साक्षात्कार—आत्मावलोकन नहीं होता है, होता है तो विकृत रूप से होता है; अतः प्रत्येक कार्य सुचारू रूप से करने के लिये, ऊर्जा संरक्षण, संवर्धन करने के लिये, आत्म—साक्षात्कार करने के लिये, कर्म रूपी ईंधन को जलाकर आत्मा को विशुद्ध करने के लिये, स्मरण शक्ति, मेघा शक्ति वृद्धि के लिये, सम्पूर्ण असाध्य कार्य की सिद्धि करने के लिये ध्यान अत्यन्तावश्यक है।

ध्यान से शारीरिक तनाव, मानसिक स्नायु तनाव, ज्ञान तंतुओं का तनाव शांत हो जाता है जिससे शारीरिक—मानसिक रोग दूर होकर मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त होती है एवं चिर सुख शांति मिलती है। वर्तमान आधुनिक मनोविज्ञान में भी आरोग्य के लिये ध्यान को बहुत महत्व दिया है। आधुनिक—नारा है ‘योग भगवान् रोग’ अर्थात् योग से ध्यान की सिद्धि होती है और ध्यान से रोग का नाश होता है। जब आधुनिक वैज्ञानिक लोग, डॉक्टर लोग भी रोग निवारण के लिये अपनी विश्वासी (पेटेंट) औषध—ऑपरेशन (शल्य चिकित्सा) से भी अनेक रोगों को दूर नहीं कर पाये एवं अनेकानेक तनाव जनित नवीन—नवीन रोग उत्पन्न हुये, तब कुछ मनोवैज्ञानिक चिकित्सक, डॉक्टर एवं वैज्ञानिक लोग प्राकृतिक चिकित्सा, ध्यान, आसन, आहार, उपवास, शारीरिक श्रम का अवलंबन लेकर अनेक रोगों का सरल—सहज, मितव्य एवं स्वल्प समय में रोग निवारण करने का लिये समर्थ हुये हैं और इनका अवलंबन अधिकाधिक ले रहे हैं।

इस प्रकार अंतरंग एवं बहिरंग तप से शरीर, मन एवं वचन तप करके शुद्ध हो जाते हैं। तप समस्त उत्थान के लिये कारण है। जो तप नहीं करता है और उसके विशुद्ध चलता है, उसका पतन होना अनिवार्य है।

### 8. त्याग धर्म

पर संयोग से अशुद्ध दशा होती है और अशुद्ध दशा दुःख के लिये कारण है। संयोग से दुःख होने के कारण संयोग को मनसा, वचसा, काया से सर्वदा त्याग करना चाहिये। आत्मा एक शुद्ध द्रव्य है, पुद्गल भी एक शुद्ध द्रव्य है परन्तु जब दोनों मिलने हैं तब दोनों ही अशुद्ध हो जाते हैं। अशुद्धता से विकृति उत्पन्न

होती है, विकृति से सम्पूर्ण दुःख की परम्परा चलती है। इसलिये सुख प्राप्ति के लिये उपरोक्त क्रिया की प्रतिलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् समस्त संयोग को समस्त रूप से त्याग करना चाहिये।

**त्यागो हि परमो धर्मस्त्याग एवं परं तपः।**

**त्यागादिह यशो लाभः परत्राभ्युदयो महान्॥**

त्याग ही परम धर्म है, त्याग ही परम तप है, त्याग से इहलोक में यश लाभ होता है एवं परलोक में महान् अभ्युदय मिलता है।

**परोपकाराय फलंति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्याः।**

**परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय सत्ता प्रवृत्तयः॥**

परोपकार के लिये जीवन भर वृक्ष, जीवन शक्ति प्रदायक अमृत तुल्य उत्तमोत्तम फल देते हैं। परोपकार के लिये नदियाँ शीतल मधुर जल लेकर बहती हैं। परोपकार के लिए गायें अमृत समान दूध जीवन भर देती हैं। इसी प्रकार परोपकार के लिये सज्जन सतत प्रयत्नशील रहता है।

सम्पूर्ण मनुष्य समाज, वनस्पति एवं पशु समाज द्वारा ही जीवित है। समस्त आहार सामग्री उनसे ही प्राप्त करके सुख चैन से जीवन यापन कर रहा है। यदि वे त्याग करना छोड़ देते तो मनुष्य समाज में हाहाकार मच जाता। इतना ही नहीं अभी तक पृथ्वी—पृष्ठ पर मनुष्य समाज जीवित रहता या नहीं यह भी एक बड़ा प्रश्न हो जाता। यदि जीवित रहता तो उसका आकार—प्रकार कुछ अन्य ही होता। इसलिये मनुष्य समाज को भी इस निम्न श्रेणीय प्राणी जगत से उस आदर्श को अपना कर स्व—पर उन्नति के लिये सह—अस्तित्व एवं संवर्धन के लिये त्याग धर्म को जीवन में उतारना चाहिये।

जो कूप अपना पानी दूसरों को देता है, उस कुएँ में भी शीतल, निर्मल, (स्वच्छ) पानी अधिकाधिक भरता रहता है, जिस कुएँ से पानी लेना छोड़ देंगे तो उस कुएँ का जल अस्वच्छ हो जायेगा; दूषित—खराब हो जायेगा, उसमें कीड़े पड़ जायेंगे। अन्ततोगत्वा वह कुआँ ही एक दिन जल हीन हो जायेगा। इसी प्रकार जो जितना त्याग करता है, उसको उतना ही मिलता है।

So much give so much gain, no much give no much gain.

अधिक देने से अधिक मिलता है। कुछ भी नहीं देने पर कुछ भी नहीं मिलता

है। बादल त्याग करता है इसलिये बादल ऊपर रहता है। उसे समुद्र ग्रहण करता है, इसलिये समुद्र में अगाध पानी होते हुये भी समुद्र का स्थान नीचे है। बादल के त्याग करने से उसका पानी पवित्र है, मधुर है। किन्तु जल समुद्र की संगति करने से स्वयं भी समुद्र की तरह लवण युक्त होता है। इसी तरह और एक उदाहरण देखिये— तराजू के जिस भाग में वस्तु रखते हैं, वह भाग नीचे—नीचे चला जाता है और जो भाग खाली रहता है, वह भाग ऊपर—ऊपर चढ़ता जाता है। अभी तक मानव समाज की जो उन्नति हुई है, वह सब त्याग का ही फल है। त्यागी—वीरों ने धन, जन—जीवन, समय देकर मनुष्य समाज को उन्नति के शिखर तक पहुँचाया है। धार्मिक क्षेत्र में त्याग के माध्यम से कला, संस्कृति, आदर्श के प्रतीक स्वरूप अनेक मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि बने हैं। सामाजिक क्षेत्र में अनेक धर्मशालायें, कूप, तालाब, औषधालय, अनाथाश्रम बनाकर नर नारायण की सेवा कर रहा है। शैक्षणिक क्षेत्र में अनेक स्कूल—विद्यालय, उच्च विद्यालय, विश्वविद्यालय, छात्रावास बनाकर ज्ञान पिपासु मनुष्य के लिये ज्ञानामृत पिलाकर तृप्त करा रहे हैं। इससे सिद्ध होता है— दान के बिना मनुष्य, मनुष्य समाज यहां तक की प्राणी समाज भी जीवित नहीं रह सकता है। इसलिये प्रत्येक प्राणी का परम कर्तव्य है कि यथा शक्ति, यथा भक्ति, दान देकर स्व—पर, समाज, राष्ट्र का कल्याण करें।

## 9. अकिञ्चन्य धर्म

मेरे आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य समस्त जड़, चेतन द्रव्य एवं उनकी सम्पूर्ण पर्यायें मेरी नहीं हैं। इसीलिये मेरे वे कभी नहीं हो सकते हैं। मेरा धर्म अकिञ्चन धर्म है। बाह्य स्थूल भौतिक द्रव्य तथा चेतन द्रव्य, मेरे से अत्यंत पृथक् होने से वे कभी मेरे नहीं हो सकते हैं। इतना ही नहीं मेरे आत्मा के साथ क्षीर—नीरवत् मिला हुआ यह भौतिक शरीर भी मेरा नहीं है। आत्म स्वभाव नहीं है। इस प्रकार जो स्वतंत्र—स्वाधीन, शुद्ध, मेरा आत्मा है, वही मेरा सर्वस्व है। इस प्रकार आत्मा ही अकिञ्चन्यमय धर्म स्वरूप है।

## 10. ब्रह्मचर्य धर्म

सम्पूर्ण बाह्य द्रव्यों में रमण रूप ममत्वरूप या आसक्तिरूप संयोग संग को त्याग करके शुद्ध चिन्मय स्वरूप अनन्त सुख के धाम स्वरूप ब्रह्मरस में लीन

होना ब्रह्मचर्य धर्म है।

यह ब्रह्मचर्य धर्म जगत् पूज्य है। ब्रह्मर्य धर्म में अन्यान्य समस्त धर्म समाहित है, जैसे आकाश में समस्त द्रव्य समाहित हैं, इसी प्रकार ब्रह्म+चर्य = ब्रह्मचर्य, (आत्मा में रमण करना) में सम्पूर्ण मूलगुण—उत्तरगुण अर्थात् अन्यान्य गुण समाहित हैं। ब्रह्मचर्य का विस्तृत वर्णन इस कृति में परिच्छेद 1 में है वहाँ से अध्ययन करें।

## कर्म स्थिरान्त का वैज्ञानिक विश्लेषण

विश्व शाश्वतिक अनादि—अनंत है। इस शाश्वतिक विश्व में संचरण करने वाले जीव भी अनादि से हैं। विश्व में जीव को परिभ्रमण कराने का जो कारण है वह है 'कर्म'। बिना कर्म के संयोग से जीव की विचित्रपूर्ण विभिन्न अवस्थायें, गतिविधियाँ नहीं हो सकती। संसार अनादि होने के कारण संसार में संसरण करने वाले संसारी जीवों के कर्म भी अनादि हैं। परन्तु जो भव्य हैं, वह अनादि परम्परा से प्रवाहमान कर्म को सम्पूर्ण रूप से नष्ट करके निष्कलंक सिद्ध, बुद्ध बन जाता है। इसलिए भव्य जीव की अपेक्षा कर्म अनादि होते हुए भी सान्त हैं। परन्तु जो अभव्य जीव हैं, जो कभी भी कर्मों के बन्धन से विमुक्त होकर शाश्वत सुखका अनुभव नहीं कर सकते, उनकी अपेक्षा कर्म अनादि अनन्त है।

कर्म को प्रायः प्रत्येक दार्शनिक एवं धार्मिक परम्परा स्वीकार करती है। कोई कर्म को भाग्य कहता है तो कोई अदृष्ट अन्य एक पूर्वकृत। अन्यान्यदर्शन कर्म को स्वीकार करते हुये भी और उसका प्रतिपादन करते हुए भी जैन धर्म में जो सूक्ष्म वैज्ञानिक तर्कपूर्ण गणितिक विस्तृत वर्णन पाया जाता है, वैसा वर्णन मुझे अन्य किसी दार्शनिक या धार्मिक साहित्य में देखने को नहीं मिला। जैन दर्शन कर्म को केवल एक भावात्मक संस्कार रूप में ही, स्वीकार नहीं करता है, अपरंच भौतिक (पौद्गलिक, जड़ात्मक, रासायनिक, जैविक—रासायनिक) संस्कार (संश्लेष—बन्धन, संयोग) भी मानता है। जिस समय में जीव अज्ञान, ईर्ष्या, काम—क्रोधादि के वशीभूत होकर कुछ मन, वचन या काय से कार्य करता है, उस समय में जीव के सम्पूर्ण आत्मप्रदेश में परिस्पन्दन होता है। उस परिस्पन्दन से आकर्षित होकर ज्ञान विश्व में व्याप्त कर्मवर्गणाओं में से कुछ वर्गणायें आकर्षित होकर आती हैं, इसको कर्मस्त्रिव कहते हैं। यह कर्मण वर्गण भौतिक (पौद्गलिक परमाणुओं के समूह स्वरूप) होती है। रागद्वेषादि कषाय भाव से आकर्षित हुई

कर्म वर्गणाएँ आत्मा के असंख्यात प्रदेश में संश्लेष रूप से मिल जाती हैं, इसको कर्मबन्ध कहते हैं। जैसे धनविद्युत एवं ऋणविद्युत से आवेशित होकर के लोहखण्ड, चुम्बक रूप में जब परिणमन करता है तब स्वक्षेत्र में स्थित योग्य लौहखण्ड को आकर्षित करता है। उसी प्रकार राग (धनात्मक आवेश, आसक्ति / आकर्षण) द्वेष (ऋणात्मक आवेश, विद्वेष, विकर्षण) से आवेशित होकर, जीव भी स्वयोग्य कर्माण वर्गणाओं को आकर्षित करके स्वप्रदेश में संश्लेष रूप से बाँधता है, और कुछ यहाँ ध्यातव्य विषय यह है कि कार्माण वर्गणाएँ भी जब तक जीव के योग और उपयोग से प्रभावित नहीं होती तब तक बंधरूप में परिणमन करके कर्म अवस्था को प्राप्त नहीं करती है। उनमें से कुछ वर्गणाएँ सामान्य वर्गणायें हैं तो कुछ वर्गणायें उम्मीदवार (प्रत्याशीरूप) हैं। जैसे—देश के सामान्य नागरिक होते हैं, उनमें से कुछ नागरिक, एम.एल.ए., एम.पी. बनने के लिए प्रत्याशी होते हैं। जब नागरिकों से मत (वोट) प्राप्त करके जययुक्त होते हैं, तब वे एम.एल.ए., एम.पी. मंत्री बन जाते हैं। मंत्री आदि बनने पर सामान्य नागरिक से अधिक सत्ताधारी होकर दूसरों पर अनुशासन करते हैं उसी प्रकार सामान्य वर्गणायें सामान्य नागरिक के समान होती हैं। जब राग—द्वेष रूपी मत प्राप्त कर लेती हैं। तब विशेष शक्तिशाली होकर जीव के ऊपर ही अनुशासन चलाती हैं। जैसे सामान्य नागरिक मत प्राप्त करके विभिन्न विभाग के मंत्री आदि बनते हैं। उसी प्रकार कार्माण वर्गणाएँ, राग—द्वेष आदि मत प्राप्त करके ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमत कर लेती हैं। एक समय में, एक साथ एक—दो परमाणु कर्मरूप परिणमन नहीं करते, इतना ही नहीं, करोड़ों, अरबों, संख्यात्, असंख्यात् अनन्त परमाणु भी कर्मरूप में परिणमन नहीं करते हैं, किन्तु केवल अनन्तानन्त परमाणु कर्मरूप में एक साथ परिणमन करते हैं। जिस समय में कर्म बाँधते हैं उस समय में आत्मा के एक दो एक या करोड़ों अरबों प्रदेश में एक साथ नहीं बँधेंगे हैं किन्तु जब कर्म बन्धेंगे तब सम्पूर्ण आत्मा में एक साथ ही कर्म बाँधते हैं। प्रत्येक जीव के मध्य के आठ आत्म प्रदेश चलायमान नहीं होने पर भी कर्मबन्धन से सहित ही हैं क्योंकि अन्यान्य आत्मप्रदेश में जब परिस्पन्दन होता है तब कर्म वर्गणाएँ आकर्षित होकर आती हैं। आत्मा के असंख्यात प्रदेश अखण्ड होने के कारण तथा आठ मध्य प्रदेश में द्रव्य कर्म, भावकर्म, नो कर्म होने के कारण आकर्षित हुई कार्माण—वर्गणाएँ भी आठ मध्यप्रदेश में विभाजित होकर बाँध जाती हैं। यदि आठ मध्य

प्रदेश कर्म से रहित हो जायेंगे तब प्रत्येक संसारी जीव भी अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्य का स्वामी बन जायेगा, परन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष विरोध है।

यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि अनंतानंत परमाणु को छोड़कर संख्यात्, असंख्यात्, परमाणु कर्मरूप में परिणमन क्यों नहीं करते ? इसका उत्तर देते हुये पूर्वाचार्य ने कहा है कि अनंतानंत परमाणु के समूह स्वरूप वर्गणा को छोड़कर अन्य वर्गणा में कर्मरूप परिणमन की योग्यता नहीं होती है। यह तो हुआ आगमोक्त उत्तर। कुछ तार्किक दृष्टि से विचार करने पर यह सत्य सिद्ध भी होता है। तर्क यह है जब बंध होता है तब युगपत् आत्मा के असंख्यात प्रदेश में कर्मबन्ध होते हैं। असंख्यात प्रदेश में युगपत् कर्मबन्ध होने के कारण युगपत् सम्पूर्ण आत्म प्रदेश में योग (परिस्पन्दन) एवं उपयोग (कषाय भाव) का होना है। यदि एक साथ असंख्यात प्रदेश में कर्म बंधते हैं तब असंख्यात से कम परमाणु से तो कार्य ही नहीं चलेगा। दूसरा तर्क यह है कि एक आत्मा अनादि से कर्म से बछू होने के कारण एक—एक आत्मप्रदेश में अनंतानंत परमाणु बंधे हुये हैं। जो नये कर्म परमाणु बंधते हैं, वे प्राचीन कर्म परमाणु के साथ बंधते हैं इसलिए उन कर्म परमाणु के साथ बंधने के लिए अनंतानंत परमाणु की आवश्यकता होती है, और भी एक तर्क यह है कि प्रत्येक आत्मप्रदेश में अनंत ज्ञान, सुख, वीर्य आदि मौजूद हैं। उन अनंत शक्तियों को पराभूत करने के लिए अनंत शक्ति की भी आवश्यकता होती है। इसीलिए अनंत शक्तिशाली जीव को पराभूत करके, बंधन में डालकर, संसार में परिभ्रमण कराने के लिये अनंतानंत परमाणु की आवश्यकता होती है। जैसे— सामान्य पशु को बांधने के लिए सामान्य रस्सी से काम चल सकता है, परन्तु विशेष शक्तिशाली पशु सिंह, हाथी आदि के लिए विशेष रस्सी आदि की आवश्यकता होती हैं, और एक तर्क यह है कि एक समय में जो कर्म वर्गणाएँ निर्जरित होती हैं, उस वर्गणा में अनंतानंत परमाणु रहते हैं। “व्यय के अनुसार आय” इस न्यायानुसार व्यय परमाणु अनंतानंत होने के कारण आय परमाणु भी अनंतानंत होने ही चाहिए।

आस्त्रव एवं बंध तत्व संसार तत्व है। इस आस्त्रव एवं बंध तत्व के कारण ही जीव संसार में परिभ्रमण करता है। इसीलिए दोनों तत्व हेय (त्यजनीय) हैं। प्रत्येक समय में जीव .योग और उपयोग से जैसे—कर्म को आकर्षित करके बांधता

है, वैसे ही स्वाभाविक स्थिति बंध के क्षय से, कर्म की निर्जरा भी होती है, परन्तु यह निर्जरा नवीन कर्मबंध के लिए कारणभूत हो जाती है, क्योंकि जिस समय कर्म उदय में आकर निर्जर्ण होता है, उस समय जीव में उदय प्राप्त कर्म के निमित्त से तज्ज्योग्य, योग और उपयोग होता है। उस योग व उपयोग से प्रेरित होकर पुनः कर्म का आस्त्र एवं बंध हो जाता है। इसलिए इस प्रकार की निर्जरा को सविपाक्ष निर्जरा—अकुशल निर्जरा, अकाम निर्जरा कहते हैं। जैसे—बीज योग्य भूमि में गिरने के बाद वृक्ष रूप में परिणमन कर लेता है उसीप्रकार यह निर्जरा नए कर्मको जन्म देने के कारण भी बन जाती है। यह निर्जरा विशेषतः एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पञ्चेन्द्रिय तथा मिथ्यात्व गुण स्थान में होती है। सत्य-प्रीति, सद्ज्ञान, सदाचरण के माध्यम से जो कर्म आत्मा से पृथक् होता है उसको अविपाक्ष निर्जरा सकाम निर्जरा या सकुशल निर्जरा कहते हैं। यह निर्जरा परम्परा से मोक्ष तत्व के लिए कारणभूत है। आध्यात्मिक जागरण के बाद कुछ विशेष पापकर्म का आना रुक जाता है, उसको संवरण या संवर कहते हैं। संवर पूर्वक निर्जरा ही यथार्थ से उपादेय है, इसलिए संवर एवं निर्जरा मोक्ष तत्व के लिए कारणभूत हैं। जब सम्पूर्ण आध्यात्मिक जागरण या रत्नत्रय की पूर्णता होती है, तब सम्पूर्ण कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते हैं—गल जाते हैं, खिर जाते हैं तब उसको मोक्ष तत्व कहते हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह सिद्ध हुआ कि सम्पूर्ण जीव अनादिकाल से कर्मबंधन से जकड़े होते हुए भी आध्यात्मिक पुरुषार्थी जीव सम्पूर्ण बंधनों को तोड़कर, सर्वशक्तिमान, पूर्ण स्वतंत्र, शुद्ध-बुद्ध भगवान् बन जाता है परन्तु जो आध्यात्मिक पुरुषार्थ से हीन होते हैं, वे कर्म बंध से रहित होकर सुख का आस्वादन नहीं ले पाते हैं, अर्थात् अनादिकाल से कर्म बलवान् होते हुए भी भव्य जीव का पुरुषार्थ कर्म से भी अधिक शक्तिशाली होने से अन्त में भव्य जीव स्व पुरुषार्थ से सम्पूर्ण कर्म को नष्ट करके परमात्मा बन जाता है परन्तु अभव्य जीव के लिए कर्म अनादि से बलवान् है एवं अनंत तक बलवान् ही रहेगा। अन्य एक दृष्टिकोण से विचार करने पर जैसे बीज से वृक्ष की उत्पत्ति होती है, वैसे ही पुरुषार्थ से कर्म की उत्पत्ति होती है। वर्तमान का पुरुषार्थ भविष्य के लिए भाग्य बन जाता है, इसलिए भाग्य और पुरुषार्थ परस्पर में जन्य- जनकत्व, अनुपूरक- परिपूरक हैं। इससे सिद्ध होता है कि वर्तमान में कोई सुखी या दुःखी है तो सुख-दुःख का उत्तरदायित्व स्वोपार्जित पूर्व कर्म है। इसलिए उस सुख-दुःख के लिए निमित्त को ही मुख्य

कारण मानकर दूसरों पर रागद्वेष करना अज्ञानियों का काम है। प्रत्येक सुख-दुख के लिए स्वोपार्जित पूर्व कर्म ही उपादान कारण हैं तो अन्य बाह्य कारण निमित्त कारण हैं। ज्ञानियों को यथार्थ रहस्य का परिज्ञान करके मूल कारण को ही हटाना चाहिए। जैसे, सिंह पर कोई लाठी प्रहार करता है तो वह लाठी को नहीं पकड़ता है परन्तु प्रहार करने वाले को ही पकड़ता है। परन्तु कुत्ते को कोई लाठी से प्रहार करता है तो वह लाठी को ही पकड़ता है, आदमी को नहीं। उसी प्रकार ज्ञानी सिंह के समान सुख-दुःख का मूल कारण कर्म को जानकर उसके निर्मूलन करने का पुरुषार्थ करता है, परन्तु अज्ञानी कुत्ते के समान कर्म को नहीं जानता हुआ अन्य बाह्य कारण, अन्य जीव या वस्तु आदि को मानकर उसको ही नष्ट करने का पुरुषार्थ करता है। वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस कर्म बंध सिद्धान्त पर निम्नप्रकार से विचार कर सकते हैं।

प्रत्येक दृष्टव्य पदार्थ को छोटे-छोटे भागों में विभाजित किया जा सकता है, जिन्हें अणु कहते हैं। यह अणु ही परस्पर संयुक्त होकर इतना बड़ा कण (स्कन्ध) बनाते हैं अथवा बनाते चले जाते हैं कि वे दृष्टव्य हो जाते हैं। प्रश्न यह है कि यह अणु परस्पर संयुक्त क्यों होते हैं? इन सभी अणुओं में एक विशेष पारस्परिक आकर्षण बल होता है। जिसके द्वारा ही ये परस्पर संयुक्त होते हैं किन्तु यह बल स्थायी नहीं होता, इसी कारण किसी बाह्य अथवा आन्तरिक (बहिरंग या अंतरंग) बल से प्रेरित होकर ये विभक्त (पृथक्) हो जाते हैं। इस बल को वाण्डर बाल आकर्षण बल (Vander wals force of attraction) व बंध के टूटने को (Cleavage brabing) कहते हैं। जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त के आधार पर इस आकर्षण को आस्त्र बंध कहते हैं व वे पृथक् होने को 'निर्जरा' कहते हैं। जीव एवम् कार्माण वर्गाणां (Molecules having the nature of KARMA) के परस्पर संश्लेषण – संबंध को कर्म-बन्ध (Bond formation) कहते हैं।

अणुसिद्धान्त के अनुसार किसी भी पुद्गल का किसी अन्य पुद्गल से संबंध संसज्जन बल (Co-adhesive force) जो समान अणुओं में कार्य करता है। व असंज्जन बल (adhesive force) (जो विपरीत प्रकृति के अणुओं में कार्य करता है) के द्वारा होता है, चाहे वह एक से हो, दो से हो अथवा संख्यात या असंख्यात पुद्गलों से हो।

## भाग्य एवं पुरुषार्थ

विश्व में विभिन्न वैचित्र्यपूर्ण जीवन दृष्टिगोचर होते हैं। द्रव्य दृष्टि से अखिल जीव जगत् सूक्ष्मातिसूक्ष्म निगोदिया (वायरस) से लेकर पूर्ण विकसित मनुष्य तक ही नहीं परन्तु अनंत ज्ञान सम्पन्न अरिहन्त सिद्ध भगवान् भी एक समान है। यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि द्रव्य अपेक्षा तथा जातीय अपेक्षा सम्पूर्ण अनंतानन्त जीव एक समान होने पर भी उसमें आकार-प्रकार, शक्ति, बुद्धि, ज्ञान, आचार-विचार में जो विभिन्नता परिलक्षित होती है उसका कारण क्या है? बिना कारण से क्या उनमें यह वैचित्र्यपूर्ण अन्तर हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं; बिना विभिन्न प्रकार कारणों से विभिन्न कार्य होना असंभव है। आचार्य कुन्द-कुन्द देव नियमसार में संसारी जीव में जो विभिन्न प्रकार आचार-विचार परिलक्षित होता है उसका कारण बताते हुए कहते हैं कि-

**‘‘णाणा जीवा णाणा कर्मं णाणाविहं हवे लब्ध्वी।’’**

अनेक प्रकार के जीव हैं एवं अनेक-अनेक प्रकार के कर्म या दैव हैं। इसलिए उनके स्व-स्वदैवानुसार उनकी लब्धि भिन्न-भिन्न प्रकार होती है। मनुष्य गति एक होने पर भी प्रत्येक मनुष्य का आकार, प्रकार, बुद्धि, वैभव, स्वास्थ्य अलग-अलग होता है। इतना ही नहीं एक ही परिवार में एक ही माता-पिता से उत्पन्न होने वाली अनेक संतान के शरीर, आरोग्य, आचार-विचार, बुद्धि, वर्ण प्रायः वैषम्य रहते हैं और आशर्य की बात यह है कि एक ही व्यक्ति का हाथ व एक अवयव सबल होता है तो अन्य अवयव दुर्बल होता है। बाल्यावस्था में कोई जड़मति भोंदू रहता है तो वही युवावस्था में तीक्ष्ण बुद्धिशाली हो जाता है। पुनः वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति से रहित हो जाता है। अन्य कोई व्यक्ति उपरोक्त व्यक्ति से विपरीत भी हो सकता है। एक व्यक्ति बाल्यावस्था में उद्घट, उच्छृंखल होता है तो वही किशोर या युवावस्था में गंभीर धर्मात्मा हो जाता है। वे ही वृद्धावस्था में विपरीत परिणमन भी कर लेता है। उपरोक्त वैचित्र्यपूर्ण परिणमन का कारण क्या है? ऐसा प्रश्न होना स्वाभाविक है। उसका सटीक व संक्षिप्त उत्तर यह है कि उसका दैव एवं पुरुषार्थ ही मूल कारण है।

गति अपेक्षा तिर्यज्ज्य गति एक ही गति है। उनमें भी फिर एकेन्द्रिय, द्विन्द्रियादि जातीकी अपेक्षा पाँच उत्तर भेद हो जाते हैं। एकेन्द्रिय जाति में पुनः साधारण

एवं प्रत्येक उपभेद हैं। उनमें फिर अनेक अवान्तर उपभेद भी होते हैं। उदाहरण के तौर पर प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव को ग्रहण कीजिए। उनमें फिर (1) वनस्पति कायिक, (2) पृथिवीकायिक, (3) जलकायिक, (4) वायु कायिक (5) अग्निकायिक रूप से पाँच प्रभेद हैं। वनस्पतिकायिक के दस लाख (10,00,000) कुल कोटि योनि हैं। योनि की अपेक्षा वनस्पतिकायिक के दश लाख (10,00,000) कोटि पुनः अवान्तर भेद हो जाते हैं। उनमें से पुनः उदाहरण के तौर पर आम तथा आमवृक्ष को लीजिए। उनमें भी अनेक भेद-प्रभेद हैं—लंगड़ा, दशहरी, सीपिया, बीजू, बारहमासी, तोतिया, शुकूल आदि। एक ही पीपल (पीपर) पेड़ के प्रत्येक पत्र का आकार-प्रकार प्रायः एक प्रकार का नहीं होता, भिन्न-भिन्न होता है। उपरोक्त वैचित्र्यपूर्ण विभिन्नता का कारण अपना-अपना स्वयोग्यपूर्ण उपर्जित कर्म/दैव है।

यह अनुभव सिद्ध सिद्धान्त है कि कभी कभी इच्छित अभिलषित कार्य के विरुद्ध अनिच्छित, अनभिलषित कार्य हो जाता है। जैसे नीरोग, स्वस्थ रहने के इच्छुक एवं योग्य आहार-विहार करने वालों को भी रोग हठात् आ घेरता है। प्रायः कोई भी जीव दुःखी, निर्धन होने की अभिलाषा नहीं करता है। परन्तु अधिकांश मनुष्य रोगी, दुःखी एवं निर्धन होते हैं। इसका कारण पूर्व उपर्जित प्रबल दैविक शक्ति है। जैनाचार्यों ने कहा भी है—

**अबुद्धि पूर्वप्रेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।**

अबुद्धि पूर्वक सम्पादित कार्य की अपेक्षा से दुष्ट-अनिष्ट कार्य अपने पूर्वोपर्जित दैव से हुए हैं, ऐसा जानना चाहिए।

कुछ विशिष्ट प्रबल शक्ति सम्पन्न दैवयोग से कुछ अनिच्छित कार्य भी होता है। उस समय में प्रबल प्रचण्ड दैवशक्ति के सामने पुरुषार्थ की शक्ति अकिञ्चित् कर हो जाती है।

**कर्मचिंणति सवसा तस्युदयाम्मि उ परवसो होन्ति।**

**रुक्खं दुरुहइ सवसो, विगत्स परवसो ततो॥**

(विशेषावश्यक)

कर्म व दैव को सम्पादन करने में जीव स्वतन्त्र है। कर्म के फल भोगने पर जीव स्वतन्त्र नहीं है बल्कि कर्माधीन है। जैसे—वृक्ष पर आरोहण जीव स्वतंत्र स्वेच्छापूर्वक करता है परन्तु देवात् असावधानी से पैर फिसल कर गिर जाये तो

गिरते समय वह परतंत्र हो जाता है अर्थात् उस समय में उसका पुरुषार्थ विशेषकर कार्यकर नहीं हो पाता है। गीता में भी कर्मयोगी नारायण श्री कृष्ण इस कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये धनुर्धर अर्जुन को इस प्रकार उद्बोधन करते हैं—

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥47॥**

कर्म का ही तुझे अधिकार है उससे उत्पन्न होने वाले अनेक फलों में कदापि नहीं। गोस्वामी तुलसीदास भी हिन्दी साहित्य की अमर कृति रामचरितमानस में कहते हैं कि—

**विश्व प्रधान कर्म करि राखा।  
जो जस करहि सो तस फल चाखा॥**

पुराण प्रसिद्ध, इतिहास प्रसिद्ध अनेक महापुरुष हुये हैं जिनका जन्म गरीब, अशिक्षित परिवार में हुआ है परन्तु वे अपने अदम्य साहस, निष्ठा एवं पुरुषार्थ के माध्यम से महान् बने हैं। महान् बनने में दैव की अपेक्षा उनके पुरुषार्थ का योगदान अधिक रहा है। जैनाचार्यों ने कहा भी है—

**बुद्धि पूर्वाऽपेक्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात्।**

जो कार्य बुद्धि पूर्वक किये जाते हैं उस अपेक्षा से इष्ट और अनिष्ट कार्य अपने पुरुषार्थ से हुये हैं ऐसा जानना चाहिए।

जो कार्य अनुकूल हो या प्रतिकूल हो यदि वह अतर्कितोपस्थित है अर्थात् उस कार्य करने का विचार रहित (अबुद्धिपूर्वक) है तो ऐसी स्थिति में जो कार्य होता है उसको भाग्यकृत कहेंगे। बुद्धिपूर्वक जो भी कार्य है और उसमें जो सफलता मिलती है, उस समय वहाँ पुरुषार्थ प्रधान एवं दैव गौण माना जाता है। इस स्थिति में जो कार्य होता है उसको पुरुषार्थ से हुआ कहेंगे। इस तरह अबुद्धिपूर्वक जीव को जो दुःखादिक होते हैं वे दैव की प्रधानता से होते हैं तथा बुद्धिपूर्वक जो लाभ—अलाभ आदि जीव को होते हैं वे पूरुषार्थ की प्रधानता से होते हैं। इस प्रकार दोनों की प्रधानता एवं गौणता से कार्य बनता है। अनुकूल दैव और अनुकूल पुरुषार्थ, प्रतिकूल दैव और प्रतिकूल पुरुषार्थ होने पर भी एक मुख्य और दूसरा गौण रहता है।

संसारी जीवों की विभिन्न वैचित्र्यपूर्ण परिस्थिति, भावना, बुद्धि आदि को जानने के लिए कर्म सिद्धान्त को जानना केवल आवश्यक नहीं है परन्तु अपरिहार्य है।

कर्म सिद्धान्त में मनोविज्ञान, जीव-विज्ञान, आनुवांशिकी, जीन, D.N.A., R.N.A. आदि सिद्धान्त केवल गर्भित नहीं है परन्तु इन सिद्धान्तों के कारण तथा इन सिद्धान्तों से भी यह कर्म सिद्धान्त श्रेष्ठ तथा निभ्रान्त है। कर्म सिद्धान्त को विशेष जानने के लिए जिज्ञासु मेरी ‘‘कर्म का दार्शनिक वैज्ञानिक विश्लेषण’’, ‘‘भाग्य एवं पुरुषार्थ’’, ‘‘निमित्त उपादान मीमांसा’’, ‘‘पुण्य-पाप मीमांसा’’ कृतियों का अध्ययन करें।

### जैन श्रावकों के आष्ट मुलगुणों का वर्णन

मद्य, मांस मधु निशासन, पंचफली विरति पंचकाप्तनुती।

जीवदया जल गालनमिति च व्यवचिदष्टमूलगुणाः॥

(1) मद्य, (2) मांस, (3) मधु इन तीन मकार का त्याग, (4) रात्रि भोजन का त्याग, (5) पाँच उदुम्बर फलों १. बड़, २. पीपल, ३. गूलर, ४. अंजीर, ५. कठुमर का त्याग, (6) नित्य त्रिकाल देव—प्रार्थना करना (7) दया करने योग्य प्राणियों पर दया करना और (8) जल छानकर पीना अर्थात् काम में लाना इस प्रकार ८ मुलगुण कहे हैं।

(1) मद्यत्याग—मद्य पान करने से मन मोहित हो जाता है, धर्म को भूल जाता है तथा सदाचारण को भी विस्मरण कर देता है, उससे पापास्व छोटा होता है। मद्य में स्थित असंख्य सूक्ष्म जीव के वध से पाप बंध होता है।

चावल, महुआ, गुड़ आदि को घड़े में भरकर उसको जमीन में गाढ़ देते हैं। अनेक दिनों में चावलादि सङ्गे पर उसमें अनेक लट आदि त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पुनः उसको उबाल करके मद्य निकालते हैं— इसलिये मद्य त्रस जीवों का रस ही है। मद्य के वर्ण के सदृश असंख्यात् सूक्ष्म जीव प्रत्येक समय मद्य में रहते हैं। मद्यपायी के मद्य-पान से उसके ज्ञान तन्तु शिथिल हो जाते हैं, जिससे मन मोहित होकर स्मरण शक्ति को, विवेक शक्ति को खो डालता है, जिससे वह सदाचार को भूल जाता है, पागलों के समान कुछ न कुछ बकता रहता है, माँ, बहिन, स्त्री में किसी प्रकार का भेद नहीं देखता है, अनैतिकतापूर्ण आचरण भी कर लेता है तथा दूसरों को अपशब्द भी कहता है, मार-पीट भी करता है, अपना कर्तव्य सुचारू रूप से पालन नहीं कर पाता है। इससे पापास्व होता है। मद्य में स्थित जीवों के घात से भी पापास्व होता है। शरीर, मन, ज्ञान-तंतु,

स्नायु, पाचनशक्ति मध्य से क्षीण होने के कारण शरीर में अनेक रोग एवं अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे वह क्षीण शक्ति होकर विशेष कोई कार्य नहीं कर पाता है, अर्थाभाव से बाल-बच्चे अशिक्षित रहते हैं एवं खाद्य अभाव से योग्य पोषण भी नहीं हो पाता है, इससे संतान को भी बहुत बड़ी क्षति पहुँचती है। मध्यपान से अर्थ (धन) भी व्यर्थ में ही खर्च होता है। अज्ञानी मनुष्य अर्थ को देकर मध्य पीकर अनेकों अनर्थों को निमंत्रण देता है। एक पशु भी जानबूझकर अनर्थ अर्थात् विपत्तियों को निमंत्रण नहीं देता है, इस दृष्टि से वह पशु से भी गया बीता है।

केवल मध्यपान इस व्यसन में गर्भित नहीं है, इसके साथ-साथ विदेशी ब्रांडी, व्हिस्की, रम, ताड़ी, गांजा, भांग, चाय, कॉफी, चरस, तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, गुटखा, पान-पराग आदि-आदि मध्य व्यसन के अंतर्गत होते हैं। उपरोक्त नशीले पदार्थों में अनेक विषाक्त रसायन पदार्थ रहते हैं, जिससे टी.बी., कैंसर, रक्तचाप, दमा, खाँसी, कब्जियत, बदहजमी सिर-दर्द, अलसर आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। बीड़ी-सिगरेट-जर्दा-तंबाकू में निकोटिन विष होता है। चाय में कैफिन विष रहता है, मध्य में एल्कोहल विष रहता है। वे विष शरीर को बहुत क्षति पहुँचाते हैं और उनसे केंसर आदि रोग उत्पन्न होता है।

महात्मा गांधी स्वतंत्रता के पहले कहते थे, एवं उनकी तीव्र भावना थी कि भारत स्वतंत्र होने के पश्चात् मुझे सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ कुछ करना है तो वह है भारत में पूर्णरूप से मध्य-निषेध करना। महात्मा गांधी यहाँ तक कहते थे कि (Tea is white poison) चाय सफेद विष है। यदि चाय को सफेद विष मानते थे, तो क्या मध्यादि साक्षात् विष है— ऐसा नहीं कहते होंगे? इससे आप सहज ही समझ सकते हैं। परंतु अत्यंत शर्म की बात है कि वर्तमान स्वतंत्र भारत की सरकार स्वच्छंद होकर स्वयं मध्य की फैकट्री खोलकर, मध्य की दुकान प्रत्येक गाँव में खोलकर भारत की जनता को विष पिलाने में दिन रात कार्यरत है।

सरकार सोचती है कि इससे कुछ आर्थिक लाभ देश को होता है, परंतु मूँढ सरकार नहीं जानती है कि वह अर्थ किसका है और उस मध्य से जो शारीरिक-मानसिक क्षति होती है उस क्षति को पूर्ण करने के लिये सरकार को एवं जनता को कितना अर्थ व्यय करना पड़ता है। इससे उस लाभ की अपेक्षा व्यय कितना अधिक है। स्वास्थ्य के लिये सरकार अस्पताल खोलती है एवं रोगी बनाने के

लिए जनता को मद्य पिलाती है। इसलिये भारत की स्वतंत्र सरकार को तथा प्रादेशिक शासकों को, मद्य के प्रचारकों को, कुछ पूँजीपतियों को मद्य का दुष्परिणाम जानकर उसका संपूर्ण शासकीय क्षेत्र में कानून लगाकर निषेध करना चाहिये तथा प्रजा को स्वयं प्रवृत्त होकर स्व इच्छा से मद्य तथा अन्य-अन्य नशीली वस्तुओं का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

(2) मांस वृक्ष — मांस वृक्ष में नहीं लगता है, मांस के लिये त्रसकायिक बड़े जीवों का घात करना पड़ता है। उस मांस में कच्ची अवस्था में, पक्व अवस्थामें एवं पकती हुई अवस्था में उस जाति के कोट्यावधि जीव रहते हैं। मांस-भक्षण से द्रव्य हिंसा एवं भाव हिंसा सदा होती है। मांस भक्षी जीव द्रव्यतः भावतः तथा तात्कालिक एवं भावी नारकी है। वे सर्वत्र अनन्त दुःख को प्राप्त करते हैं।

मांसाहार से हानि— शाकाहारी के लिये जैसे धान्य-फलादि वनस्पति सरलता से प्राप्त होती है, उसी प्रकार मांस किसी भी वनस्पति से नहीं मिलता है। मांस के लिये, बकरा, गाय, भैंस, मुर्गा, मछली आदि बड़े-बड़े जीवों को निर्दय भाव से कत्ल करना पड़ता है। कत्ल के बाद भी वह मांस जीव से रहित नहीं है। किंतु मांस के प्रत्येक कण में जिस जीव का मांस है, उस जीव जाति के सूक्ष्म निगोदिया जीव असंख्यात कोटि प्रमाण प्रत्येक समय में रहते हैं। जैसे उदाहरण रूप में गाय का मांस है, तो उस मांस मैं गौ-जातीय पंचेद्रिय सूक्ष्म निगोदिया जीव होते हैं। वे मांस को पकाते समय में रहते हैं, पक्व होने के बाद अर्थात् पकाने के बाद भी रहते हैं, मांस को छूने मात्र से अनेक जीव मर जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक समय में असंख्यात जीवों का घात होता रहता है। यह हुई द्रव्य हिंसा। बिना कूर, निर्दय परिणाम से मांस के लिये किसी भी जीव का घात नहीं हो सकता है और भावों में जो कठोरता (निर्दय भाव) है वही महान् भाव हिंसा है। इसलिये मांस भक्षण से द्रव्य हिंसा — एवं भाव हिंसा होती है।

कोई जीव विचार करे कि स्वयं मरे हुए जीव के मांस के खाने में कोई दोष नहीं है, किंतु उपरोक्त वर्णित तज्जातीय जीवों का सद्भाव होने से एवं उन जीवों का घात होने से निश्चित रूप से दोष लगता ही है। कोई कहेगा— बना हुआ मांस खरीदकर खाने पर किसी भी प्रकार का दोष नहीं लगेगा किंतु मांस में भी असंख्यात जीव रहते हैं, जिस मांस को बाजार से खरीदकर लाये हैं और उन जीवों की हिंसा होने से निश्चित रूप से दोष लगता ही है। इस प्रकार जो वधिक मनुष्य,

जीव वध करता है वह तो हिंसा का भागी है ही। जो मांस परोसता है, वह भी दोष का भागी है, जो मांस खाता है, वह भी दोष का भागी है।

**अण्डा शाकाहार नहीं –** कोई–कोई जिह्वा– लोलुपी, कुतर्का, मूढ़ पुरुष मानते हैं कि आजकल का कृत्रिम अण्डा (हायब्रेड अण्डा) जिसमें से जीव उत्पन्न नहीं होता है, वह अण्डा मांस नहीं है, शाकाहार है। परंतु ऐसे अज्ञानी नहीं जानते हैं कि वह अण्डा रज और वीर्य के संयोग से बना है। मुर्गी के गर्भ में बढ़ा, गर्भ से अण्डा निकलने के बाद भी कुछ समय तक वृद्धि को प्राप्त होता है, यदि जीव नहीं होता तो वह अण्डा बढ़ता कैसे ? बढ़ने के कारण अर्थात् वृद्धि होने के कारण उसमें जीव निश्चित है, परंतु उसमें इतनी जीवनशक्ति नहीं है कि उसमें मुर्गी का बच्चा उत्पन्न हो सके। जैसे कुछ वृक्ष की शाखा को कलमी करने से नवीन वृक्ष होते हैं और कुछ से वृक्ष उत्पन्न नहीं होते हैं किंतु दोनों प्रकार की शाखा वृक्ष से संयुक्त हैं, दोनों शाखायें बढ़ती हैं, दोनों पत्ते, पुष्ट, फल धारण करती हैं। कदाचित् आपके मतानुसार इस अण्डा में पक्षी का जीव नहीं है तो भी उस मांस में तज्जातीय जीव करोड़ों की संख्या में रहते हैं। अण्डा भक्षण से उन जीवों का घात होता ही है।

प्रत्येक मांस में क्लोरिन आदि अनेक विषाक्त तत्व रहते हैं। जिससे कैंसर, टी.बी., रक्तचाप आदि रोग होते हैं।

### प्राकृतिक रूप से मनुष्य शाकाहारी है

मनुष्य शरीर के अवयव यथा दाँत, जिह्वा, आँत, नाखून आदि शाकाहारी प्राणी के समान हैं। मांसाहारी प्राणियों में जो शरीर के अवयव होते हैं, वे अवयव शाकाहारी प्राणियों से अलग प्रकार के होते हैं। मांसाहारी प्राणियों के नाखून–तीक्ष्ण, लंबे एवं शक्तिशाली होते हैं, जिससे वे शिकारी प्राणी को पकड़कर चीर–फाड़ कर सकें। किंतु मनुष्य का नाखून उस प्रकार का नहीं है। मांसाहारी पशुओं के दाँत अत्यंत तीक्ष्ण नोकदार रहते हैं, जिससे वे शिकार को फाड़कर खा सकें, परंतु मनुष्य के दाँत शाकाहारी गाय–भैंस के समान चपटे हैं। मांसाहारी प्राणी पानी को जीभ से चाट चाटकर पीते हैं, परंतु मनुष्य शाकाहारी प्राणियों के समान मुख में पानी भरकर पीता है। मांसाहारी प्राणियों की जिह्वा अत्यंत रुखी, करकसी एवं कांटेदार रहती है जिससे हड्डी से मांस चाटकर खा जाता है। शाकाहारी प्राणियों की जिह्वा चिकनी एवं कोमल रहती है। मांसाहारी प्राणियों की आँते छोटी

रहती हैं, किंतु मनुष्य की आँते शाकाहारी प्राणियों की आँतों के समान लंबी रहती हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति से भी मनुष्य शाकाहारी प्राणी है।

शाकाहारी भोजन करने से अर्थ व्यय कम होते हैं एवं मांसाहार में अर्थव्यय अधिक होता है। एक गाय से तो जीवन भर हजारों लीटर दूध प्राप्त कर सकते हैं। उससे दही, मट्ठा, धी आदि उत्तमोत्तम अमृत समान प्राणदायक आहार प्राप्त कर सकते हैं। परंतु गाय को मार करके मांस का प्रयोग मात्र एक–दो दिन के लिए ही कर सकते हैं। जिस गाय से जीवन भर अनेक संताने, हजारों लीटर दूध, अनेक टन प्राकृतिक खाद उत्पन्न हो सकते हैं, उस गाय को मारकर उससे अपना पेट भरना कितनी कृतज्ञता है ?

प्रकृति में एक प्रकार संतुलन रहता है। संतुलन के अभाव में एक विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे अनेक प्राकृतिक विलाव होते हैं, जैसे अनावृष्टि, भूकम्प, दूषित वायु मंडल (वायु प्रदूषण) तथा अनेक रोगों की उत्पत्ति आदि। उदाहरण स्वरूप कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने खेत के लिए एवं औद्योगिक कार्य के लिये वन–संपत्ति को काट डाला व वनस्पतियों की कमी से ऑक्सीजन (प्राण वायु) का अभाव (कमी) हुआ। उष्णता बढ़ी जिससे वर्षा होना कम हो गया। वातावरण दूषित हो गया, रोग की वृद्धि हुई। वनस्पति का हास हुआ। वन्य पशुओं का अभाव होने लगा। इन सब उपरोक्त दुर्घटनाओं का सरकार ने अनुभव करके पुनः वृक्षारोपण प्रारंभ किया। यदि केवल निम्न श्रेणीय जीवों के घात से इतना विपलव हो सकता है, तो क्या अभी जो सरकार पंचेदिन्य जीव गाय, बकरा, सूअर, मुर्गा, मछली आदि का निर्मम भाव से अरबों की संख्या में घात कर रही है, उससे क्या सफलता मिल सकती है ? अर्थात् तीन काल में भी नहीं मिल सकती है।

**मांस से रोग –** मांस में Cholesterol (कोलेस्टरोल) विष रहता है। इससे Blood Pressure (रक्तचाप) बढ़ता है एवं सांस फूलने लगता है, इसमें निहित तत्व C. 27. H. 460 है। मांस से कैंसर आदि भयंकर रोग होते हैं।

जलाशय से मछली, मेंढक आदि को मारने से पानी दूषित एवं कीड़ों से भर जाता है, क्योंकि मछली आदि दूषित अंश को खाकर पानी को स्वच्छ रखते हैं। अस्वच्छ पानी के सेवन से रोग होते हैं। पक्षियों को मारने से विषाक्त कीड़ों की संख्या बढ़ती है। सिद्धान्तः संपूर्ण विश्व प्रकृति का शरीर है। वनस्पति, पशु–पक्षी, मनुष्य, जलवायु आदि प्रकृति के शरीर के अवयव स्वरूप हैं। जैसे–एक

मनुष्य के एक हाथ को कष्ट देंगे तो दूसरा हाथ नहीं सोचेगा कि मुझे तो कष्ट नहीं दे रहा है तो मैं उसका क्यों विरोध करूँ? परंतु शरीर एक होने से जिसको क्षति नहीं पहुँच रही है, वह हाथ भी शरीर की रक्षा के लिये एवं स्व रक्षा के लिये विरोध करेगा। प्रतिकार प्रकृति के किसी भी अवयव को यदि मनुष्य क्षति पहुँचाता है, तो मनुष्य को जान लेना चाहिये कि संपूर्ण प्रकृति उसके विरोध में विपलव करेगी और मनुष्य समाज को ध्वंस करके ही रहेगी।

केवल मांस खाना हिंसात्मक नहीं है परंतु किसी प्रकार की चर्म की वस्तु जैसे- चप्पल, बेग, बेल्ट सौंदर्य प्रसाधन की वस्तु जैसे- नेलपॉलिश, लिपिस्टीक, शैम्पू, इत्र, सेंट, स्नो, पाउडर मूल्यवान साबुन आदि जो जीवों के शरीर के अवयवों से बनते हैं, उनका प्रयोग करना भी हिंसा है। हिंदू धर्म में कहा है-

मद्य मांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्द भक्षणम्।  
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थ यात्रा जपस्त्पः॥

(महाभारत)

मद्यपान, मांस भक्षण, रात्रि भोजन, जमीकंद सेवन (आलू, प्याज, मूली, गाजर, लहसुन आदि) जो करता है अर्थात् खाता है उसकी तीर्थ-यात्रा, जप-तप सब वृथा हो जाते हैं।

यावंति पशुरोमणि पशु गात्रेषु भारतः।  
तावद्वर्षसहस्राणि पच्चते पशु घातकाः॥  
शुक्रशोणितसंभूतं यो मांस खादते नरः॥  
जलेन कुरुते शौचं हसंते तत्र देवताः।  
अस्थिरानि वसति रुद्रस्तथा मांसे जनार्दनः।  
शुक्रे वसति ब्रह्मा तस्मान्मांस न भक्षयेत्॥

(विष्णु पुराण)

पशु में, जितने रोम रहते हैं, उस पशु के घात से उस पशुघातक को उतने ही हजार वर्ष नरक में कष्टों को प्राप्त करना पड़ता है। जैसे मान लो एक जीव में 100 रोम हैं, तो उस पशुघातक को  $1000 \times 100 = 1,00,000$  (एक लाख) वर्ष तक नरक में यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी। विचार करो कि एक जीव में कितने करोड़ रोम रहते हैं, तो उस पशुघातक को नरक में कितने वर्ष तक दुःख उठाना पड़ेगा?

प्राणियों का शरीर, रज-वीर्य से निर्माण होता है। जो मांस-अण्डे वगैरह खाता है वह दृष्टिं रज-वीर्य को खाता है। मांस खाकर ऊपर से पानी से शरीर की शुद्धि कराने से कभी भी शुद्धि नहीं हो सकती है। इसलिये मांस भक्षक जल में शुद्धि करता है तब देवता लोग उसे देखकर हँसते हैं।

जीव की हड्डी में रुद्र वास करते हैं। मांस में विष्णु वास करते हैं शुक्र में ब्रह्मा वास करते हैं। इसलिये मांस नहीं खाना चाहिये।

यूपं छित्वा पशुन् हत्वा कृत्वा रुधिरं कर्दमम्।  
यद्येवं गम्यते स्वर्गं नरकं केन गम्यते॥  
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं सुसंयमः।  
मद्य मांसादि त्यागश्च तद्वि धर्मस्य लक्षणम्॥

(महाभारत, शति पर्व)

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं सुसंयमम्।  
मद्य-मांस-मधु त्यागो रात्रि भोजन वर्जनम्॥

(मार्कण्डेय पुराण)

जो यूप (यज्ञ की विशेष लकड़ी) को छेदकर, पशु को मारकर रुधिर को कीचड़ बनाकर यदि स्वर्ग जावे तो नरक किस पाप से जायेगा?

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, उत्तम संयम, मद्य-मांस सेवन त्याग, रात्रि भोजन त्याग धर्म है।

भांग मछली सुरापान जो-जो प्राणी खाये।  
तीर्थ वरत अरु नेम किये सबे रसातल जाये॥

(कबीर)

भांग खाना, मछली खाना, सुरापान, जो जो प्राणी करते हैं वे कितनी भी तीर्थ यात्रा करें, ब्रतादि पालन करें, नियम धारण करें, तो भी वे रसातल (नरक) में जायेंगे।

मुसलमान मारे करद, हिंदू मारे तलवार।  
कहे कबीर दोनों मिती, जाये जम के द्वार॥

मुसलमान करद (चाकू से गला काटता) करता है, हिंदू तलवार से काटता है, कबीर कहते हैं कि मुसलमान और हिंदू दोनों मिलकर यम के द्वार पर जायेंगे।

मांसाहारी मानव, परतछ राक्षस अंग।  
तिन की संगति मत करो, परत भजन में भंग।

जो मांस खाता है वह प्रत्यक्ष राक्षस है, उसकी संगति मत करो। क्योंकि उससे भजन-कीर्तन में, प्रभु नाम गाने में, धर्म कार्य में विपत्ति आती है।

है भला तेरा इसी में, मांस खाना छोड़ दे।  
इस मुवारक पेट को, कब्र बनाना छोड़ दे॥

इसी में तेरी भलाई है कि तू मांस खाना छोड़ दे। मांस खाने से तेरा पवित्र पेट कब्रखाना बन जाता है। तू माँस नहीं खायेगा तो तेरा पेट कब्रखाना नहीं बनेगा।

जो शिर काटे और का, अपना रहे कटाय।  
धीर-धीरे नानका, बदला कहीं न जाय॥

जो दूसरों का सिर काटता है, उसका सिर एक न एक दिन कट जाता है। सिक्ख के आदि गुरु नानक देव कहते हैं कि बदला कभी चुकता नहीं है।

जो रक्त लंगे कापड़े, जामा होवे पलीत।  
जो रक्त पीवे मानुषा, तिन क्यों निर्मल चित्त॥

कपड़े में रक्त लगने पर कपड़ा अपवित्र हो जाता है और जो मनुष्य रक्त पीता है, मांस खाता है, उसका मन पवित्र कैसे हो सकता है?

कोई भी प्राणी को मत मारो।

(ईसा मसीह)

Thous shaln't kill.

हिंसा प्रसूतानि सर्व दुःखानि।

हिंसा संपूर्ण दुःखों को जन्म देती है।

Animal food for those, Who will fight and die,

And vegetable food for those, Who will live and think.

मांस आहार उनके लिये है, जो लड़ेंगे एवं मरेंगे। शाकाहार उनके लिये है, जो जीवित रहेंगे एवं चिंतन करेंगे।

हिंदू धर्म में कहा गया है कि पहले धर्मात्मा शाकाहारी ब्राह्मण धर्मशक्ति से आकाश में उड़कर गमन करते थे, परंतु ब्राह्मण लोगों के मांस खाने से धार्मिक शक्ति क्षीण हो गयी तब से ब्राह्मण लोग जमीन पर चलने लगे। इससे सिन्धु होता

है कि मांस नहीं खाने से कितनी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है और खाने से कितनी क्षति होती है।

संपूर्ण जीवन में जो मांस के विषतुल्य त्याग कर देता है, वशिष्ठ भगवान् कहते हैं कि वह स्वर्ग संपत्ति को प्राप्त करता है। यथा—

यावज्जीवं च यो मांस विषवत्परिवर्जयेत्।

वशिष्ठो भगवानाह प्राप्नुयात् स्वर्गसंपदम्।

अन्यत्र कहा है— स्वत मात्र प्रवाहेण स्त्री निंदा जायते स्फुटम्।

द्विधातुजं पुनमांस पवित्रं जायते कथम्॥

ऋतुवर्ती के समय में अर्थात् रज निकलने से स्त्री अपवित्र हो जाती है और निश्चय से निंदनीय होती है। परंतु मांस, रज एवं वीर्य से बनना है तब मांस पवित्र कैसे हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि इसमें तो दो अपवित्र वस्तुओं का मिश्रण है।

(3) मधु त्याग— मधुमक्खियां धूम-धूम कर पुष्पों से मधु को मद्दङ्ग में भरकर लाती हैं, और अपने छते में उस मधु को (उल्टी) करके संग्रह करती हैं। मधु (शहद) को प्राप्त करनेके लिये छते के नीचे धुआँ करके मधु, मक्खियों को मारकर उस छते को बाद में निचोड़कर मधु निकाला जाता है जिससे अनेक मधु मक्खियों के अण्डे फूटकर उनका रस भी मधु के साथ आ जाता है। प्रथमतः मधु मक्खियों की वांति (उल्टी) है। कोई भी स्वयं की वांति (उल्टी) होने पर उसे धृणा के कारण नहीं खाते हैं, फिर विचार करना चाहिये कि मक्खियों की वांति धृणास्पद कैसे नहीं होगी? अर्थात् अवश्य होगी।

उस मधु में उस वर्ण के असंख्यात सूक्ष्म जीव रहते हैं जिससे मधु सेवन से उन जीवों का घात हो जाता है। मधु (शहद) मधुमक्खियों का संग्रहित भोजन है। मधु निकालना अर्थात् उनके आहार को छीन लेना है। मधु निकालते समय अनेक अण्डों का संहार हो जाता है, जिससे महान हिंसा होती है। उस मधु में उन मधुमक्खियों की टट्टी, पेशाब मिले रहते हैं। कदाचित् मधु-मक्खी-पालन से, दिना मधुमक्खियों को मारकर मधु प्राप्त करने पर भी उस मधु में उस वर्ण के असंख्यात जीव रहते हैं तथा उस मधु सेवन से उन जीवों का संहार हो जाता है। दूसरा पक्ष यह है कि मधुमक्खियों की वांति, टट्टी-पेशाब मधु में होते हैं।

सप्त ग्रामेषु यत्पापमग्निना भस्मसाकृते।  
तन्यापं जायते जंतोर्मधुबिंदैक भक्षणात्॥

(मनुसृति)

सात ग्रामों को अग्नि से जलाने से जो पाप होता है वह पाप एक बिंदु मात्र मधु खाने से होता है इसलिये विवेकी पुरुषों को मधु का त्याग करना चाहिये। यदि औषधि के लिये मधु का प्रयोग करना पड़ा तो उसके बदले में गुड़, चासनी, मुनक्का आदि मधुर रस का प्रयोग करना चाहिये परन्तु मधु सर्वथा त्यजनीय है। डॉक्टर लोग जो उसके सेवन के लिये सलाह देते हैं वे सर्वथा अनुचित हैं।

#### (4) रात्रि भोजन त्याग झट्ट धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण

रात को सूर्य की रश्मि के अभाव से क्षुद्र पतंगा आदि जीव गुप्त स्थान से निकल कर विचरने लगते हैं, वे सब आहारादि वस्तुओं में गिर भी जाते हैं, उस आहार का भक्षण करने से उन जीवों का भी भक्षण हो जाता है, जिससे हिंसा का दोष एवं मांस भक्षण का दोष लगता है। उन विषाक्त जीवों से अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। आहार में जूँ खाने से जलोदर रोग हो जाता है, मकड़ी खाने से कुछ रोग हो जाता है, मक्खी खा जाने से वमन होता है, केश खाने से स्वर भंग हो जाता है, चींटी खाने से पित्त निकल आता है, विषभरी छिपकली के विष से आदमी को अनेक रोग होते हैं एवं मरण को भी प्राप्त हो जाता है। रात को सूर्य रश्मि के अभाव से पाचन शक्ति मंद हो जाती है। जिससे खाया हुआ भोजन ठीक से पाचन नहीं होता है। उसे बदहजमी, गेस्टिक, पेट दर्द, सिर दर्द आदि रोग हो जाते हैं। इस प्रकार रात्रि भोजन सर्वत्र मांस भक्षण के सदृश्य हानिकारक होने से त्यजनीय है।

सूर्य-किरण में अनेक गुण हैं। विटामिन डी भी है। सूर्य-किरण से विषाक्त कीट पतंग-संचार नहीं करते हैं। वायु, वातावरण शुद्ध हो जाता है, पाचन शक्ति बढ़ती है। दिन को वनस्पति के अंगार विश्लेषण के कारण प्राण वायु (ऑक्सीजन) छोड़ती हैं जिससे दिन को पर्याप्त प्राण वायु मिलती है। दिन में जितना प्रकाश रहता है उतना प्रकाश और स्वास्थ्यकर प्रकाश, कृत्रिम किसी भी प्रकाश में नहीं हो सकता है। और रात को कृत्रिम प्रकाश से कीट-पतंग अधिक संख्या में आकर्षित होकर प्रकाश के स्थान में आते हैं। यह सब आप सब को अवगत है ही। इसी प्रकार अनेक कारणों से रात को भोजन करना धर्मतः एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से

भी हानि कारक है।

दिवसस्य मुखेचान्ते, मुक्त्वा द्वे द्वे सुधार्मिकैः।  
घटिके भोजनं कार्य, श्रावकाचार चंचुभिः॥

धर्मात्मा श्रावकों को सबेरे और शाम के आरम्भ और अन्त की दो-दो घड़ी (48 मिनट) छोड़कर भोजन करना चाहिये।

वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक एवं डॉक्टर लोगों ने सिद्ध किया है कि रात्रि में सूर्य किरण के अभाव में भोजन करके सोने से खाया हुआ भोजन ठीक से पाचन नहीं होता है इसलिये अनेक रोग होते हैं। इसलिये रात्रि के 3-4 घंटे पहले अल्पाहार करना चाहिये जिससे आहार शयन के पहले पच जायेगा। हिन्दु धर्म में कहा भी है

चत्वारो नरक द्वाराणि, प्रथमं रात्रि भोजनम्।  
परस्त्री गमनं धैव, संधानानन्तकायिके॥

नरक के 4 द्वार हैं: (1) रात्रि में भोजन करना (2) पर स्त्री गमन करना (3) अचार खाना (4) जमीकन्द खाना

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।  
अन्नं मांसं समं प्रोक्तं, मार्कण्डेय महार्षिणा॥

सूर्य अस्त होने के बाद जल को रुधिर कहते हैं और अन्न को मांस के समान कहते हैं यह मार्कण्डेय महारूषि ने कहा है।

मृत स्वजन मात्रेऽपि, सूतकं जायते किल।  
अस्त गते दिवानाथे, भोजनं किमु क्रियते॥

केवल स्वजन मरने से सूतक होता है, परन्तु जो जगत बन्धु सूर्य है उनके अस्त पर भोजन क्यों करते हो?

ये रात्रौ सर्वथाहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः।  
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते॥

जो रात को सर्वथा आहार-त्याग करता है, उस ज्ञानी के एक महीने में 15 दिनों के उपवास का फल मिलता है।

रात्रि भोजन के साथ-साथ रात को बनाया हुआ आहार भी नहीं खाना चाहिये क्योंकि रात्रि में बनाते समय अनेक सूक्ष्म जीव आहार में गिरकर आहार में मिल

जाते हैं। इसी प्रकार रात्रि भोजन में हिंसा होती है, अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, और वह जीव मरने के पश्चात् रात्रिचर जीव में जन्म लेता है अर्थात् उल्लू, सिंह, व्याघ्र, बिल्ली आदि योनियों में उत्पन्न होते हैं।

(5) पंचफल विरति— पाँचों उदुम्बर फलों का त्याग करना चाहिये। (1) बड़ (2) पीपल (3) गूलर (4) अंजीर (5) कटूमर।

उपरोक्त पाँचों फलों में साक्षात् त्रस जीव चलते हुए दिखायी देते हैं। उन फलों के भक्षण से विषाक्त त्रस जीवों का भक्षण हो जाता है, हिंसा होती है एवं विभिन्न रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं। इसलिये धर्मतः एवं स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी पंच उदुम्बरों का भक्षण करना हानिकारक होने से वर्जनीय है।

(6) पंचगुरु भक्ति— जो आध्यात्मिक गुणों से अलंकृत रहते हैं, जो गुणों से गुरु (भारी) रहते हैं जो मनुष्य समाज के लिये आदर्श स्वरूप, अनुकरणीय, समाज राष्ट्र के मार्गदर्शक होते हैं और जिनके लिये स्व-पर का भेद-भाव नहीं रहता है, “वसुधैव स्व कुटुम्बकम्” अर्थात् जिनका कुटुम्ब पूर्ण विश्व है उनको गुरु कहते हैं। वे पाँच प्रकार के हैं—

(1) शरीरधारी जीवन्मुक्त निर्मल वीतराग परमात्मा ‘अरिहंत’ (2) शरीर रहित, निरंजन, शुद्ध, बुद्ध, परमात्मा ‘सिद्ध’ (3) जो स्वयं धर्म के मार्ग पर सतत् विचरण कहते हैं, एवं अन्य धर्म प्रेमी शिष्य वर्गों को धर्म के रास्ते में चलने के लिये प्रशिक्षण देते हैं ऐसे ‘आचार्य परमेष्ठी’ (4) जो स्वयं सत्य के साक्षात्कार के लिये ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन करते हैं एवं दूसरों को करवाते हैं, ऐसे ज्ञानधनी ‘उपाध्याय संत’ (5) जो आत्म विशुद्धि के लिये एवं शाश्वत शांति के लिये आत्म साधन में तत्पर रहते हैं, अन्तरंग-बहिरंग ग्रन्थि से रहित ‘निर्ग्रन्थ साधुओं’ को मिलाकर पंच गुरु होते हैं। उनके गुणानुराग से उनकी सेवा, स्तुति, वन्दना, अर्चना, पूजा, संरक्षण, वैद्यावृत्ति आदि करना पंचगुरु भक्ति है।

(7) जीव दया—

‘धर्मस्य मूलं दया’ अर्थात् धर्म का मूल दया होने से धर्मात्मा के लिये जीव दया करना सर्वोपरि है।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।

तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण

(तुलसीदास)

मृत्यु-दण्ड से लोग डरते हैं। जीवन सबको प्यारा लगता है, दूसरों को अपने जैसा ही मानकर मनुष्य किसी को मारने की प्रेरणा न करें। (बुद्ध देव)

सब्वे वसन्ति दण्डस्य सब्वे भायन्ति प्रच्छुनो।

उतानं उपमं कत्वा न हन्तेय्यन धातये॥

(बौद्ध धर्म, धम्पद)

दण्ड से सभी लोग डरते हैं। मृत्यु से भी भय खाते हैं। दूसरों को अपने जैसा मानकर मनुष्य न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करे।

प्राणीघातात् यो धर्ममिहिते मूढ मानसः।

स वाञ्छति सुधावृष्टिं कृष्णाऽहि मुख कोटरात्॥

(व्यास वाक्य)

प्राणी घात से मूढ़ यदि धर्म को चाहता है, वह मानो अत्यन्त भयंकर विषधर कृष्ण सर्प के मुख से अमृत वृष्टि को चाहता है अर्थात् जैसे कृष्ण सर्प के मुख से अमृत वृष्टि नहीं हो सकती है उसी प्रकार प्राणी घात से धर्म नहीं हो सकता है। इसलिये अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं—

‘अमृतत्वं हेतु भूतं परममहिंसारसायनं लब्ध्या’

(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

अमृत तत्व के हेतुभूत अहिंसा परम रसायन है अर्थात् अहिंसा रूपी अमृत पान से जीव को शाश्वत अजरामर, अनन्त, सुख सम्पन्न मोक्ष मिलता है।

‘अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरि त्यागः’॥

(पातञ्जलियोग द.)

अहिंसा में स्थिर होने पर उस अहिंसक महात्मा के सम्पर्क-सहवास, दर्शन, स्पर्शन से सब प्राणियों का द्वेष भाव नष्ट हो जाता है।

अतः अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा ही परम नीति है, अहिंसा ही परम दान है, अधिक क्या अहिंसा ही अमृत है, अहिंसा ही परमात्मा स्वरूप है। इससे ही विश्वशांति, विश्वमैत्री, सह अस्तित्व, युद्ध में निःशस्त्रीकरण हो सकता है। अधिक क्या विश्व में युद्ध का नाम-निशान भी नहीं रह सकता है। अहिंसा के पूर्ण प्रसार से पुलिस, न्यायालय, मिलिट्री आदि की आवश्यकता ही नहीं होगी। प्रत्येक स्थान में धर्म-राज्य, रामराज्य ही हो जायेगा। इसलिये अहिंसा रूपी अमृत का सबको सेवन करना परम आवश्यक है।

(8) जल छानकर पीने का धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण

असंख्य त्रस जीवं अगालितजले निवसन्ति नित्यम्।

तेन तत्पानेन हिंसा च भवति बहु रोगम्॥

अगलित (बिन छना पानी) पानी में असंख्यात त्रस जीव सतत वास करते हैं। इसलिये बिना छना पानी पीने से हिंसा होती है एवं अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः कहा है—

दृष्टि पूर्तं न्यसेत्पादं वस्त्रपूर्तं जलं पिवेत्।

सत्यं पूर्तं वदेत्पादं मनः पूर्तं समाचरेत्॥

(मनुस्मृति)

देख कर जीवों की रक्षा करते हुये चलना चाहिये। वस्त्र से पानी को छानकर पीना चाहिये। मन को पवित्र बनाकर आचरण करना चाहिये।

आधुनिक वैज्ञानिक लोगों ने सिन्धु किया है कि एक जल बिन्दु में 36450 कीटाणु रहते हैं। जैन विज्ञान के आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने आध्यात्मिक दिव्य ज्ञान से प्राग् ऐतिहासिक काल से “जल में त्रस जीवों का सद्भाव है” यह स्पष्ट एवं प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित किया है। वैज्ञानिक यंत्र में सीमित शक्ति होने के कारण एक निश्चित आकार के जीव दिखाई देते हैं किन्तु उसमें अत्यन्त सूक्ष्म जीव उस सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से दिखाई नहीं देते हैं। इसलिये वैज्ञानिकों ने एक बिन्दु में 36450 जीवों को अभी तक पाया है। परन्तु सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, वीतराग-विज्ञान के ज्ञाता-मनीषियों ने एक जल बिन्दु में जो जीव स्पष्ट अवलोकन किया है उनकी संख्या वर्तमान संख्या की अपेक्षा कई अरबों, खरबों गुनी है। यह संख्या स्थावर जीवों की नहीं है यह त्रस जीवों की है। स्थावर जीव भी उनमें अनेक हैं, असंख्यात है इसीलिये अहिंसा एवं आरोग्य की दृष्टि से पानी छानकर भोजन में प्रयोग करना अत्यन्त अनिवार्य एवं विधेय भी है।

### पानी छानने की विधि

पानी छानने के लिये सफेद, नवीन, मोटा कपड़ा प्रयोग में लाना चाहिये। कपड़ा यदि रंगीन होगा तो उस कलर-केमिकल (रंगीन रसायन) से जीवों को बाधा पहुँचेगी एवं धात भी होगा, इसलिये कपड़ा सफेद होना चाहिये। पहने हुए कपड़े या प्रयोग में लाये हुये कपड़े गंदे होने से जीवों को बाधा पहुँचेगी एवं जल दूषित

हो जायेगा। कपड़ा पतला होने से जीव छानकर कपड़े के ऊपर नहीं रहेंगे। जिस बर्तन में पानी छानना है उस बर्तन से कपड़ा तीन-चार गुना बर्तन के मुँह से बड़ा होना चाहिये जिससे कपड़े को दोहरा करके छानने में सुविधा होगी। कपड़ा इतना मोटा होना चाहिये, जिसको दोहराने के बाद सूर्य की किरणें उससे पार नहीं हो सकें। जिस बर्तन में, जलाशय से पानी निकालना है एवं जिसमें पानी छानना है, इस प्रकार के दोनों बर्तन स्वच्छ होने चाहिये। जिस साधन से पानी निकालना है, वह साधन रसी आदि भी स्वच्छ होना चाहिये। कुआँ से पानी निकालने की बाल्टी आदि के नीचे भी रसी होनी चाहिये जिससे छने हुये जीवों को सुरक्षित रूप से पानी में पहुँचाया जा सके।

जलाशय से पानी निकालने के पश्चात् दूसरे स्वच्छ बर्तन के ऊपर उपरोक्त कपड़े (छन्ना, नातना) को डालकर पानी सावधानी से छानना चाहिये जिससे छना हुआ पानी नीचे न गिरे, जीवों का धात न हो, जल का अपव्यय नहीं होवे। पानी छानने के बाद तत्क्षण ही छने हुये जीव सहित कपड़े को सावधानी से लेकर जिससे जीव नीचे न गिरे, दूसरे पात्र के ऊपर रखकर छने हुए पानी को उस कपड़े के ऊपर डालना चाहिये, छने हुये जीव उस पात्र में बाधा रहित पहुँच जायेंगे। उन जीवों को सावधानी पूर्वक पानी के पास पहुँचाकर रसी ऊपर खींच देना चाहिए, जिससे पात्र उल्टा होकर पानी सहित जीव, पानी में प्रवेश कर जायेंगे। छने हुये जीवों को कपड़े के ऊपर जल एवं वातावरण के अभाव में जीव मरण को प्राप्त हो जायेंगे। ऊपर से भी जीवों को नहीं डालना चाहिये, क्योंकि ऊपर से गिरने से प्रतिघात के कारण जीव मर जायेंगे। छने हुए जीवों को ऊपरी स्थल भाग में नहीं फेंकना चाहिये क्योंकि वे वहाँ पर जीवित नहीं रह सकते। जिस जलाशय से पानी निकाला गया है उसी जलाशय में उन जीवों को डालना चाहिये क्योंकि अन्य जलाशय का पानी का गुण, रासायनिक धर्म अलग होने के कारण उन जीवों को कष्ट पहुँचेगा एवं धात भी हो सकता है।

वर्तमान में जलनलियों का प्रयोग ज्यादा हो रहा है, उससे ही जल लाते हैं— पानी छानने के लिये अधिकतर लोग नल में कपड़ा बाँध देते हैं, और कपड़ा जब तक गलकर नष्ट नहीं होता है, तब तक बंधा रहता है, यहाँ तक कि नीचे कपड़ा गलकर फट जाने पर भी दूसरा नया कपड़ा प्रयोग में नहीं लाते हैं। नल से पानी छानने के पश्चात् नल में बंधे कपड़े को सावधानी से खोलकर छने हुये

पानी से धोकर उस कपड़े को सुखा देना चाहिये। उन जीवों को जिस नाली में स्वच्छ पानी बह रहा है, वहाँ छोड़ देना चाहिये। वस्तुतः उनकी सम्पूर्ण सुरक्षा के लिए जहाँ से पानी नल में आ रहा है वहाँ ही छोड़ना चाहिये। परन्तु यह असम्भव नहीं होने पर भी प्रायः कष्ट साध्य होने से स्वच्छ बहती हुई नाली में छोड़ना अपवाद मार्ग है। वहाँ पर भी उनकी सुरक्षा होना प्रायः असम्भव है, क्योंकि नाली में दूषित पानी बहता रहता है जिससे उन जीवों का धात होना प्रायः सम्भव है। इसलिये दयालु धर्मात्माओं को इस प्रकार के जलाशयों से पानी लाना चाहिये, जहाँ पर जीव सुरक्षित रूप से पहुँच सकते हैं।

### छने पानी का मर्यादा

उपरोक्त विधि से पानी को छानने के बाद पानी की मर्यादा अर्थात् अवधि अन्तर्मुहूर्त अर्थात् 48 मिनिट के अन्दर—अन्दर है। इसी प्रकार त्रस जीव से रहित शुद्ध पानी का प्रयोग स्नान करने के लिये, कपड़े धोने के लिये, पीने के लिये, भोजन तैयार करने के लिये, वर्तन—मांजने—धोने के लिये, पीने के लिये आदि समस्त कार्य में प्रयोग करना चाहिये। वर्तमान में कुछ लोग पीने के लिये येन—केन—प्रकारेण सुबह छना हुआ पानी दिनभर अर्थात् शाम तक प्रयोग करते हैं। परन्तु स्नानादि में पानी का जो उपयोग होता है उसमें क्या जीवों का धात नहीं होता है? अवश्य होता है।

एक बार छानने के बाद गृहस्थ लोग 48 मिनिट के पहले—पहले तक उसको प्रयोग करते हैं, उसके पश्चात् प्रयोग करना है तो पुनः उपरोक्त रीति से ही छानकर पानी का उपयोग करना चाहिये। पानी की मर्यादा इससे अधिक बढ़ाना हो तो उसमें इलायची, लोंग पीसकर इतनी डालनी चाहिये जिससे पानी का स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण बदल जाना चाहिये। इस प्रकार की विधि से प्रासुक किये पानी की मर्यादा 6 घण्टे है तथा थोड़ा गर्म करने पर भी पानी की मर्यादा 6 घण्टे होती है। इससे भी अधिक मर्यादा के लिये पानी को खूब उबाल लेना चाहिये, जिससे उस पानी की मर्यादा 24 घण्टे हो जाती है। 24 घंटों के बाद उस पानी को उबालकर या छानकर या उसी अवस्था में प्रयोग नहीं करना चाहिये।

### दूध, दही, धी, मक्खन की मर्यादा

प्रासुक पानी से थनों को धोकर, हाथ को पानी से धोकर, स्वच्छ बर्तन में दूध निकालना चाहिये, उस दूध को अन्तर्मुहूर्त अर्थात् 48 मिनिट के अन्दर—

अन्दर छानकर गर्म करना चाहिये। ठीक से अर्थात् उबाल आने पर उस दूध की मर्यादा 24 घण्टे हो जाती है। 24 घण्टे के पश्चात् या बिना गर्म किया दूध में तज्जातिय अर्थात् जैसे गाय के दूध में गाय जातिय असंख्यात सूक्ष्म (बैकिटरिया) जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिये अशुद्ध दूध सेवन से हिंसा होती है एवं रोग का कारण बनता है।

उस शुद्ध दूध में शुद्ध चांदी, मारबल—पत्थर, नारियल की नेरठी डालकर दही जमाना चाहिये। पहले का दही, मट्ठा डालकर तैयार किया हुआ दही अमर्यादित है। कच्चे दूध में दही डालकर तैयार किया गया दही भी अशुद्ध है। अमर्यादित दूध से दही बनाने से, अशुद्ध पात्र या जामन होने से उस दही में अनेक बैक्टरिया उत्पन्न होते हैं, उस प्रकार का दही खाने योग्य नहीं है। परन्तु उपरोक्त शुद्ध दही में जीव नहीं होने से 24 घण्टे के पहले—पहले भोजन में प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार दही मधने से शुद्ध मट्ठा (मही) बनता है एवं शुद्ध मक्खन निकलता है। उस मक्खन को अन्तर्मुहूर्त अर्थात् 48 मिनिट के पहले धी बना लेना चाहिये, नहीं तो उस वर्ण के असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उससे जो धी बनता है वह भी अशुद्ध होता है। अन्तर्मुहूर्त के पहले मक्खन में जीव नहीं होने पर भी मक्खन कामोदीपक, इन्द्रिय उत्तेजक होने से खाने के लिये योग्य नहीं है। इसी प्रकार यह अष्ट मूलगुण प्रत्येक आदर्श नागरिक के लिये, नैतिक उन्नति के लिये, धार्मिक जागृति के लिये अत्यन्त अनुकरणीय है।

### जैन श्रावक के छ: दैनिक धर्म

देव पूजा गुरुपास्ति च स्वाध्याय संयम तपः।

दानं कर्त्तव्यः श्रावकाणां च उभय लोक हिताय॥

(1) देव पूजा (2) गुरुओं की सेवा (3) आर्ष—ग्रन्थों का स्वाध्याय (4) प्राणी रक्षा एवं इन्द्रिय मन निग्रह (5) तपश्चरण (6) स्व—पर उपकार के लिये दान देना। यह उभय लोक के हित के लिये श्रावकों को दैनिक करने योग्य कर्त्तव्य हैं। जैन धर्मावलम्बी गृहस्थाश्रमी को श्रावक कहते हैं।

### (9) देवपूजा

जो आध्यात्मिक महापुरुष इन्द्रिय, मन, अन्तरंग शत्रु—क्रोध—मान—माया—लोभादि को जीतते हैं ऐसे जितेन्द्र देव, सर्वज्ञ एवं वीतराग होते हैं। उनके गुणानुराग

से गुण स्मरण करना, प्रार्थना करना, पूजा (अर्चना), बन्दना आदि करना देव पूजा है। इससे मन प्रशम भाव को प्राप्त होता है जिससे मानसिक शान्ति मिलती है, पाप नष्ट होता है, पुण्य की प्राप्ति होती है और परम्परा से स्वर्ग मोक्ष की उपलब्धि होती है।

### (२) गुरु सेवा

धर्म की साक्षात् जीवन्त मूर्ति स्वरूप, अन्तरंग-बहिरंग ग्रन्थियों से विमुक्त सांसारिक पापात्मक कार्य के जो त्यागी हैं वे गुरु हैं। उनकी सेवा, विनय आदि करना गुरुपास्ति है। गुरु के बिना धर्म का यथार्थ प्रतिपादन संरक्षण, संवर्धन नहीं हो सकता है। इसलिये गुरु बिना धर्म भी स्थिर नहीं रह सकता है। धर्म बिना सुख नहीं है इसलिये सुख के लिये गुरुओं की सेवा नित्य करना चाहिये।

### गुरु सेवा का फल

उच्चैर्गोंत्रं प्रणते भर्भो गो दानादु पासनात्यूजा।  
भवतेः सुन्दरसुपं स्तवनात्कीर्तिस्तपो निधिषु॥15॥

(श्रवकाचार— समन्भद्राचार्य)

गुरुओं को प्रणाम करने से उत्तम गोत्र की प्राप्ति होती है, दान देने से उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है, उपासना करने से स्वयं की पूजा होती है, भक्ति करने से कामदेव सदृश्य लावण्य युक्त सुन्दर शरीर की प्राप्ति होती है, स्तवन करने से कीर्ति दशों दिशाओं में फैलती है। कविने कहा है—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाय।  
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय॥  
गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।  
पापं तापं तथा दैन्यं सर्वं सज्जन संगमः॥

गंगा के स्नान से ताप नष्ट होता है, चन्द्र किरण से संताप नष्ट होता है, कल्पवृक्ष से दरिद्रता नष्ट होती है, परन्तु सज्जन (गुरु) की संगति से पाप, ताप तथा दीनता सर्व एक साथ विलीनता को प्राप्त होती है।

गुरु भक्ति सती मुक्त्यै, क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।  
त्रिलोकी मूल्य रलेन, दुर्लभः किं तुषोत्करः॥

यदि गुरु भक्ति से मोक्ष रूपी अत्यन्त मूल्यवान वस्तु मिल सकती है, तो क्या

अन्य क्षुद्र कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती है?

जिस अमूल्य रत्न से त्रिलोक मिल सकता है उस रत्न से क्या सामान्य तुष नहीं मिल सकता है? अर्थात् निश्चय से मिल सकता है। इसलिये हितकांक्षियों को सतत प्रयत्नशील होकर गुरुओं की सेवा करनी चाहिये। एक कविने कहा भी है—

हरि सुजन सु हेत कर, कर हरिजन सु हेत।

मातृ मूलक हरि देत है, हरि जन हरि ही देत॥

भगवान् की सेवा करने से भगवान् धन सम्पत्ति दे सकते हैं, परन्तु गुरुओं की सेवा करने से गुरुजन, भगवान् को ही दे देंगे।

प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रान्ति हुई है, हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरु ही है। गुरु एक क्रांतिकारी, सत्य-शोधक, नवीन-नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरुष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेक्जेंडर (सिकन्दर) महान् बना अरस्तु के कारण। चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्विजयी बना गुरु कौटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी, छत्रपति बना गुरु समर्थ रामदास के कारण। मोहनदास, महात्मा गांधी बने श्रीमद् रायचन्द्र के कारण। इसी प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले ही राजा महाराजा, सम्राट् भी गुरुओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान-विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्ध विद्या, कला कौशल, ग्रहण करते थे।

### गुरु बिना सर्वे भवन्ति पशुभिः सन्निभः

गुरु के बिना मनुष्य पशु के सदृश हैं।

“गुरु बिना कौन दिखावे वाट, अवगड़ डोंगर घाट”

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुःख, भयंकर जंगलघाट के समान है। उसको पार करने के लिये गुरु रूपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।

### (३) स्वाध्याय

आत्म कल्याण के लिये विवेक ज्योति प्राप्त करने के लिये सत्गुरु के चरण सानिध्य में एवं उनके मार्गदर्शन में सत् साहित्यों का पठन करना स्वाध्याय है।

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।

सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यन्य एव सः॥

अनेक संशय को छेद करने वाला, परोक्ष पदार्थ को दर्शने वाला एवं सब के चक्षु स्वरूप शास्त्र है। जो शास्त्र अध्ययन नहीं करता है वह आँख वाला होते हुए भी अन्ये के सदृश्य है।

**जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।**

**जर मरण वाहि हरणं खय करणं सव्य दुक्खाणं॥17॥**

(अष्ट पाहुड, कुन्दकुन्दाचार्य)

जिनेन्द्र भगवान् की अमृतवाणी महान् औषधि है। इसके सेवन से काम, भोग, विषय रूपी विष की वांति (उल्टी) हो जाती है। यह अमृत तुल्य है। इस वचनामृत का पान करने से जन्म-मरण-व्याधि नष्ट हो जाती है और सम्पूर्ण दुःखों का विलय हो जाता है।

#### (४) संयम

आत्मा की सुक्षा के लिये, आत्मा की उन्नति के लिये दुष्ट इन्द्रिय एवं मन का सम्यक् निरोध करना संयम है।

#### (५) तप

आकांक्षा का नियंत्रण करना तप है। यह तप बाह्य एवं अन्तरंग के भेद से दो प्रकार का है। तप तपन (सूर्य) के समान समस्त अज्ञान, मोह, अविद्या-अन्धकार को नाश करने वाला है।

#### (६) दान

स्व-पर हित साधन के लिये चार प्रकार का दान देना चाहिये। दान के बिना दया नहीं है, दया के बिना धर्म नहीं है।

जो दान देता है वह दान देते हुए अंतरंग में एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है। दान से उसकी कीर्ति दश दिशाओं में फैल जाती है, पाप कर्म का नाश करता है, सातिशय पुण्य वृद्धि को प्राप्त होता है। उस पुण्य से इस लोक में ख्याति, पूजा, वैभव, प्राप्त होता है। परलोक में भोगभूमि, स्वर्ग, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती की विभूति मिलती है। दान के चार प्रकार हैं— (1) आहार दान, (2) औषधि दान, (3) ज्ञान दान, (4) वस्तिका दान या अभय दान।

#### आहार दान

“शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्” धर्म साधन के लिये शरीर सर्वश्रेष्ठ एवं प्रथम

साधन है। योग्य शरीर से धर्म साधन विशेष होता है। आहार के बिना शरीर दुर्बल हो जाता है। शरीर रक्षा के लिये आहार चाहिये। आहार के बिना शरीर स्थिर नहीं रह सकता है। क्षुधा एक भयंकर रोग है। क्षुधारूप रोग से सम्पूर्ण शरीर जलने लगता है, शरीर दुर्बल हो जाता है, इन्द्रिय-मन एवं अवयव शिथिल पड़ जाते हैं, जिसके कारण धर्म साधन विशेष नहीं हो पाता है, इसलिये क्षुधारूपी रोग को दूर करने के लिये भोजन रूपी आहार की नितान्त आवश्यकता है। सर्व आरम्भ, परिग्रह त्यागी साधु केवल भिक्षा से प्राप्त अन्न से ही उदर पोषण करते हैं जिससे उनकी धर्म-साधना उत्तम रीति से चलती रहे। इसलिये सद्-गृहस्थों का पवित्र श्रेष्ठ कर्तव्य है कि ऐसे धर्मात्मा साधु पुरुषों को शुद्ध आहार दान दें, उनकी रक्षा करें जिससे धर्म की भी रक्षा होगी। धर्म की रक्षा से विश्व में सुख शान्ति फैलेगी।

**दानं दुर्गति नाशाय शीलं सद्गति कारणं।**

**तपः कर्म विनाशाय भावना भव नाशिनी॥**

दान से दुर्गति नाश होती है, शील से सद्गति मिलती है, तप से कर्म नाश होता है, भावना से संसार नाश होता है।

**हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कंठस्य भूषणम्।**

**श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं, भूषणैः किं प्रयोजनम्॥**

हस्त का भूषण सोने का कड़ादि नहीं है परन्तु दूसरों को दान देना ही भूषण है। कंठ का भूषण रत्नादि हार नहीं है परन्तु साधुओं का आत्म उद्घारक उपदेश सुनना भूषण है। इसी प्रकार जो भूषण से अलंकृत है उसको भौतिक भारस्वरूप भूषण से क्या प्रयोजन है?

**गजतुरंगसहस्रं गोकुलं भूमि दानम्।**

**कनकरजतपात्रं मेदीनी सागरान्तं।**

**सुख्युवती समानं कोटिकन्या प्रदानम्।**

**नहि भवति समानं हृयन्नदानं प्रधानं॥**

हजारों हाथी, घोड़ा, गाय, भूमि, स्वर्ण-पात्र, रजत-पात्र, सागर पर्यंत पृथ्वी, अस्सरा के समान सुन्दरी कोटि कन्या प्रदान करना भी अन्न दान के समान नहीं है। अन्न दान प्रधान दान है क्योंकि भोजन से क्षुधा रोग मिटता है जिससे निराकुल

रूप से धर्म साधना होती है; जिससे शाश्वत सुख मिलता है, शान्ति मिलती है।

**सत्पात्र दानेन भवेद्वनान्ध्ये धनप्रकर्षेण करोति पुण्यम्।**

**पुण्याधिकारी दिवि देवराजः पुनर्धनान्ध्यः पुनरेव त्यागी॥**

सत् पात्र दान से पुण्य संचय होता है। पुण्य के प्रभाव से धनी बनता है, धन बढ़ने से पुनः दानादि करके पुण्य कार्य करता है जिससे सातिशय पुण्य होता है जिससे स्वर्ग में देवराज इन्द्र बनता है। स्वर्ग से च्युत होकर पुनः वैभवशाली धर्मात्मा मनुष्य बनता है। यहाँ पर पुनः त्याग करता है।

**दिण्णई सुपत्तदाणं विसेसदो होइ भोगसग्गमही।**

**णिव्वाणसुहं कमसो णिदिट्ठं जिणवरिदेहि॥16॥**

(रणसार)

उत्तम साधु पुरुष को दान देने से नियम से भोग एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा निर्वाण सुख भी मिलता है ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवान ने दिव्य संदेश दिया है।

**जो मुणि भुक्तवसेसं भुंजइ सो भुंजए जिणुवदिट्ठं।**

**संसार सार सोक्खं कमसो णिव्वाणवरसोक्खं॥22॥**

(रणसार)

जो भव्यजीव मुनिश्वरों को आहार दान देने के पश्चात् अवशेष अन्न को प्रसाद समझकर सेवन करता है वह संसार के सारभूत उत्तम सुखों को प्राप्त होता है और क्रम से मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इससे सिद्ध होता है कि अतिथियों को पहले आहार दान देकर उसके पश्चात् ही सद्गृहस्थ भोजन करता है। गाँव में साधु नहीं होने पर भी आहार के समय में द्वारप्रेक्षण करना चाहिए अर्थात् साधु कहीं से आ रहे हैं या नहीं इसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि आ रहे हैं तो उनका स्वागत करके भोजन देना चाहिये।

**गृहकर्माणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तनाम्।**

**अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥14॥**

(रलकरण)

गृहस्थ के गृह सम्बन्धी आरम्भ, कृषि, व्यापार, भोजनादि बनाने से जो पापरूपी कलंक लिप्त होता है, उस कलंक को धोने के लिये गृह त्यागी अतिथि मुनियों को आदर पूर्वक दान देने से वे कर्म धुल जाने हैं जैसे रक्त से लिप्त कपड़ा पानी

से धोने से स्वच्छ हो जाता है।

**न वे कदरिया देव लोकं व्रजन्ति, वालाह वे न पसंसन्ति दानम्।**

**धीरोव दानं अनुमोद मानो, तेनेव सो होति सुखी परत्थ्य॥**

(धम्पद. वौद्र.)

कंजूस आदमी देव लोक में नहीं जाते, मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते, पंडित लोग दान का अनुमोदन करते हैं। दान से ही मनुष्य लोक परलोक में सुखी होते हैं।

### औषधि दान

**रोगिभ्यो भेषजं देयं, रोगो देह विनाशकः।**

**देहे नाशे कुतो ज्ञानं, ज्ञानाभावे न निवृत्तिः॥**

रोगियों को औषधि देना चाहिये, क्योंकि रोग शरीर का नाशक है। शरीर का नाश होने पर ज्ञान कैसे हो सकता है और ज्ञान के बिना निर्वाण कैसे प्राप्त हो सकता है ?

इसलिये जो औषधि दान देता है, वह शरीर को बचाता है, तथा ज्ञान एवं निर्वाण प्राप्ति के लिये सहकारी कारण बनता है।

गुरुओं को, धार्मिक जनों को, रोगियों को, अहिंसात्मक प्रासुक शुद्ध औषधि देना औषधि दान है तथा शुद्ध औषधालय खोलना, रोगियों की सेवा, चिकित्सा करना, उसको सांत्वना देना, प्रिय वचन बोलना, साहस दिलवाना आदि औषधि दान में आता है।

### ज्ञान दान

**यो ज्ञान दानं कुरुते मुनीनां स देवलोकस्य सुखानि भुक्ते।**

**राज्य च सत्केवलबोधलत्व्यं लब्ध्या स्वयं मुक्तिपदं लभेत्॥**

जो मुनियों के लिये ज्ञान दान करता है वह स्वर्ग लोक से सुख भोगकर राज्य को प्राप्त करता है और केवलज्ञान को प्राप्त कर स्वयं मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

मुनियों को शास्त्र, ज्ञान उपकरण जैसे— कागज, कलम आदि देना ज्ञान दान कहा जाता है। सत्साहित्यों का प्रकाशन-वितरण करना भी ज्ञान दान है। स्वयं दूसरों पढ़ाना, धार्मिक उपदेश करना, धार्मिक शिविर खोलना, धार्मिक स्कूल खोलना, उसके लिये आर्थिक सहयोग देना भी ज्ञान दान है।

### अभय दान व वसतिका दान

प्रत्येक जीव की रक्षा करना, गुरुओं का उपसर्ग, परिषह दूर करना, योग्य वसतिका (निवास गृह) देना पिंच्छी-कमण्डलादि उपकरण देना, अभयदान वसतिका दान में गर्भित है।

जीव की रक्षा करना, उनको किसी प्रकार के कष्ट नहीं पहुँचाना बहुत बड़ा दान है क्योंकि उससे जीवन की रक्षा हुई, जीवन रक्षा से वह अन्य धार्मिक कार्य कर सकता है।

**दाणु ण दिण्णउ मुणि वरउँ ण वि पुञ्जिउ जिणणाहु।**

**पंच ण वंदिय परम गुरु किमु होसइ सिव लाहु॥**

जो मुनिश्वरों को दान नहीं देता है, जिनेन्द्र भगवान् की पूजा नहीं करता है, पंच परमेष्ठियों की वन्दना नहीं करता है, उसको शिव सुख साम्राज्य कैसे प्राप्त हो सकता है?

### दान फल

**ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः।**

**अन्नदानात्सुखी नित्यं निर्वाधि भेषजाद् भवेत्॥**

ज्ञान दान से दानी ज्ञानवान बनता है, अभयदान देने से दानी निर्भय बनता है, अन्न दान से दानी नित्य सुखी रहता है, औषधि दान से दानी नरोग शरीर को धारण करता है।

### श्रमण (साधु) की आचार संहिता

सुख, शांति, स्वातंत्र्य-सुख के इच्छुक गृहस्थाश्रमी और भी आगे बढ़ना चाहता है तो समस्त बंधनों को काटकर विहंगम (स्वतंत्र पक्षी) के समान स्वतंत्र होकर आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने के लिये लालायित हो उठता है। वह आत्म-साधन के लिये साधु चरित्र का अवलंबन लेता है।

अंतरंग- बहिरंग समस्त ग्रन्थियों से रहित सर्व पापों से विमुख 28 मूलगुण सहित साधु का चरित्र होता है।

अन्तरंग परिग्रह- 1. मिथ्यात्व 2. क्रोध 3. मान 4. माया 5. लोभ 6. हास्य 7. रति 8. अरति 9. शोक 10. भय 11. जुगुप्सा 12. पुरुष वेद 13. स्त्री वेद 14. नपुंसक वेद।

बहिरंग परिग्रह- 1. क्षेत्र 2. वस्तु 3. हिरण्य 4. सुवर्ण 5. धन 6. धान्य 7. दासी 8. दास 9. कुप्य 10. भाण्ड

**28 मूलगुण-** 1. पांच महाव्रत 2. पांच समिति 3. पांच इन्द्रिय निरोध 4. छह आवश्यक क्रिया 5. सात विशेष गुण

(1) **पांच महाव्रत** - 1. अहिंसा महाव्रत 2. सत्य महाव्रत 3. अचौर्य महाव्रत 4. ब्रह्मचर्य महाव्रत 5. अपरिग्रह महाव्रत।

(2) **पांच समिति-** 1. ईर्या समिति 2. भाषा समिति 3. एषणा समिति 4. आदान निक्षेपण समिति 5. उत्सर्ग समिति।

(3) **पांच इन्द्रिय निरोध-** 1. स्पर्शन इन्द्रिय 2. रसना इन्द्रिय 3. ग्राणेन्द्रिय 4. चक्षु इन्द्रिय 5. कर्ण इन्द्रिय। उपरोक्त पांच इन्द्रियों का निरोध इन्द्रिय निरोध है।

(4) **छह आवश्यक क्रिया-** 1. समता 2. स्तुति 3. वंदना 4. प्रतिक्रमण 5. प्रत्याख्यान 6. कायोत्सर्ग।

(5) **सात विशेष गुण-** (1) अचेलकत्व गुण (नानत्व) (2) स्थिति भोजन (3) एक भुक्त भोजन (4) अदंत धावन (5) केशलोच (6) अस्नान (7) भूमि शयन

उक्तंच :-

**वद समिदिंदियरोधो लोचो, अवासमचेलमण्हाणं।**

**खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तंच॥**

पुस्तक का आकार बढ़ जाने के भय से मुनि चरित्र संबंधी सम्पूर्ण वर्णन यहाँ नहीं कर रहे हैं। इस विशेष ज्ञान के लिये जिज्ञासु व्यक्ति मूलाचार-मूलाराधना आदि आचार शास्त्रों को देखने का कष्ट करें। यहाँ कुछ विशेष महत्वपूर्ण विषय के बारे में ही प्रकाश ढालेंगे। कुछ विषय का वर्णन संदर्भ के अनुसार पहले किया गया है।

### पांच समिति

**समिति-** सावधानी पूर्वक जीवों का संरक्षण करते हुए धार्मिक कार्य करना उठना-बैठना आदि को समिति कहते हैं। असावधानी पूर्वक, प्रमाद सहित, कषाय युक्त होकर कार्य करने से हिंसा होती है। सम्पूर्ण विश्व में सूक्ष्म-स्थूल-चर-अचर जीव भरे हैं। जब मुनिगण आहार-विहार करते हैं तब क्या उनसे जीव धात नहीं हो सकता है? इस प्रकार प्रश्न होना सहज है। जिस प्रकार स्वयं गौतम गणधर ने महावीर स्वामी से प्रश्न किया था।

कथं चरे कथं चिद्दे कथमासे कथं सये।  
कथं भुंजेज्ज भासेज्ज कथं पावं ण बज्जदि॥

(मूलाचार)

गौतम गणधर पूछते हैं— हे भगवान्! कैसा आचरण करें? कैसे ठहरें? कैसे बैठें? कैसे सोये? कैसे भोजन करें एवं किस प्रकार बोलें? जिससे पाप नहीं बंधे? महावीर भगवान् उत्तर देते हैं—

जदं चरे जदं चिद्दे जदमासे जदं सये।  
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्जदि॥

हे! गौतम गणधर, यत्पूर्वक गमन करें, यत्पूर्वक खड़े हों, यत्पूर्वक बैठें, यत्पूर्वक सोयें, यत्पूर्वक आहार करें और यत्पूर्वक बोलें, इस तरह करने से पाप बंध नहीं होता। यह है समिति का रहस्य एवं हृदय।

(1) ईर्या समिति— सूर्य के प्रकाश में मन को स्थिर करके इधर-उधर नहीं देखते हुए सन्मुख चार हाथ ढृगी को देखते हुए देव वंदना, विद्या अध्ययन, स्वारथ्य संपादन, समाधि की खोज के लिये जीवों का बिना घात करते हुए गमन करना ईर्या समिति है।

इससे सिद्ध होता है कि, बिना उत्तम अभिप्राय इधर-उधर नहीं धूमना चाहिये क्योंकि उससे वृथा समय एवं शक्ति नष्ट होती है और जीवों का घात होता है। ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक चलने से स्वयं की रक्षा- कंकड़-पत्थर-गढ़ा-कांटा आदि से भी होती है।

(2) भाषा समिति— हित, मित, प्रिय, समयानुकूल, आगम-अविरोध बोलना भाषा समिति है। इससे झगड़ा आदि नहीं होता है। इससे गम्भीरता एवं भद्रता- विनय गुण प्रकट होता है।

(3) एषणा समिति— क्षुधा रोग उपशमन के लिये, ध्यान-अध्ययन, पठावश्यक क्रिया, सेवा आदि धार्मिक क्रियाओं को पालने के लिये जो शुद्ध शाकाहारी भोजन, दूसरों को कष्ट नहीं देते हुए सीमित प्रमाण से, दोषों को नहीं लगाते हुए भोजन करना एषणा समिति है। सद्गृहस्थ स्वेच्छा पूर्वक, नवधा भक्ति पूर्वक मुनि को स्वयं आह्वान करते हुए देता है। उस समय मुनि लोग दीन भाव रहित, याचना भाव रहित होते हुए भोजन ग्रहण करते हैं। इससे सिद्ध होता है आहार, दाता की स्वेच्छा, भक्ति पूर्वक आहार देने पर मुनि को धर्म के लिये दीनता-हीनता,

याचक प्रवृत्ति से रहित होते हुए आहार करना चाहिए।

(4) आदान निक्षेपण समिति— धर्म साधन के उपकरणों को सावधानी पूर्वक देखकर एवं कोमल मयूर पीच्छी से जीवों को उस उपकरण से सावधानी पूर्वक पृथक् करके उपकरण को उठाना एवं जहाँ रखना है उस स्थान को भी देखकर एवं जीवों को पिच्छि से हटाकर उस उपकरण को रखने को आदान-निक्षेपण समिति कहते हैं।

इससे सिद्ध होता है उपकरण से रहित अनावश्यक वस्तुओं को भी नहीं उठाना रखना चाहिए। क्योंकि उससे समय एवं शक्ति का दुरुपयोग होता है।

(5) उत्सर्ग समिति— ग्राम, नगर से दूर एकांत विस्तीर्ण निर्जतुक एवं बाधा रहित स्थान को पिंच्छी से परिमार्जन करके मल-मूत्र के विसर्जन करने को उत्सर्ग समिति कहते हैं।

इससे सिद्ध होता है मल-मूत्र, ग्राम के समीप विसर्जन नहीं करना चाहिए। क्योंकि अयोग्य स्थान में मल-मूत्र विसर्जन करने से जनता को कष्ट होता है, ग्राम नगर आम स्थान अस्वच्छ हो जाता है, वातावरण दृष्टित हो जाता है जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं एवं फैलते हैं। अनुपयुक्त स्थान एवं मनुष्य जहाँ बैठते हैं वैसे स्थान में मल-मूत्र विसर्जन करने से निंदा होती है, ग्लानि उत्पन्न होती है और स्वारथ्य क्षय भी होती है।

वर्तमान भारत में गृहस्थ लोग घर की गन्दी वस्तुएँ यहाँ तक कि मल-मूत्र भी आमरास्ता या राज-मार्ग में निःसंकोच होकर फेंकते हैं। चाय पीकर चाय का सकोरा रास्ते में ही फेंक देते हैं, चाट खाकर पत्ते को रास्ते में ही फैंकते हैं, पान खाकर पानपीक यत्र-तत्र रास्तादि में थूकते हैं। बीड़ी सिगरेट पीकर झूठन के शेष भाग को जहाँ तहाँ फेंकते हैं। कफ को जहाँ तहाँ थूकते हैं। यह सब असम्भ्यता, अनागरिकता एवं अशिक्षितपना का परिचायक हैं। हमारे देशवासी वर्तमानमें आकारिक शिक्षित थोड़े बहुत हुए हैं परन्तु यथार्थ से नैतिक शिक्षा से दूर हट रहे हैं। बाहर बगुला के समान हैं परन्तु अन्तरंग में कौवे से भी काले हैं। महात्मा गांधी को जातीय पिता एवं महा आदर्श पुरुष मानते हुए एवं उनका गुण गान करने से नहीं थकते हुये भी उनके आदर्श का एक कण भी अनुकरण में कोई लाते हैं क्या? महात्मा गांधी, विनोबा भावे केवल स्वयं का ही संडास-गृह स्वच्छ नहीं करते थे किन्तु गांव गांव में धूम कर वहाँ के रास्ते, तालाब, संडास-गृह

भी स्वच्छ करते थे। क्या आज उस आदर्श को हृदय-साक्षी पूर्वक विचार करके इन्हें कोई अनुकरण करता है? देश में अस्वच्छता फैलाकर देश की पवित्रता नष्ट कर रहे हैं। विदेश का अंधानुकरण करते हुए उनके फैशन, भोग-विलासिता, अनैतिकता, कामुकता आदि दुर्गुणों को ग्रहण कर रहे हैं परन्तु विदेश में जो स्वच्छता, देश-भक्ति, प्रामाणिकता, स्वावलंबनता आदि गुण हैं उसका क्या अनुकरण कर रहे हैं?

### पचेन्द्रिय निरोध

इन्द्रियों की अन्यथा प्रवृत्ति को अर्थात् दुष्ट-प्रवृत्ति को निरोध करके सत् प्रवृत्ति में उनको लगाना इन्द्रिय निरोध है।

#### (1) स्पर्शन इन्द्रिय निरोध

स्पर्शन इन्द्रिय मृदु स्पर्शादि को चाहती है एवं विषय की प्राप्ति के लिये नैतिक बंधन को भी तोड़ देती है जिससे अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ फैलती हैं। इस प्रकार अनीति से बचने के लिये शक्ति संरक्षण के लिए एवं शक्ति सदुपयोग के लिये स्पर्शन इन्द्रिय को यथार्थ कार्य में विनियोग करना चाहिये। स्पर्शन इन्द्रिय (उपस्थ) इन्द्रिय के वशवर्ती होकर महान् शक्तिशाली जंगल में स्वच्छन्द विचरण करने वाला मत्तहस्ती भी बंधन में पड़कर के मनुष्य की आङ्गो के अनुसार चलता है, बैठता है और अनेक काम करता है।

#### (2) रसना इन्द्रिय निरोध

रसना (जिह्वा) इन्द्रिय मधुर स्वादिष्ट रस को चाहती है। रसना इन्द्रिय के वशवर्ती होकर जीव मांस, अण्डा, मछली आदि अभक्षों का भी भक्षण करता है। जिससे महान पाप के वशवर्ती होकर रस लोलुपी जीव असमय में भी अति भोजन करता है। पानी में स्वच्छंद विचरती हुई मछली कांटे में लगे मांस को खाने के लिये दौड़ती है जिससे वह जीवन ही गवां देती है। वर्तमान जनता जिह्वा इन्द्रिय के वशवर्ती होकर घर का शुद्ध, कम खर्चीला भोजन करना छोड़कर अशुद्ध, अधिक खर्चीला, बासी आहार होटल में करती हैं। होटल में स्वच्छता नहीं रहती है। बचा हुआ बासी आहार भी मिलाकर पुनः ताजा आहार बनाकर दे देते हैं। जिस पात्र में रोगी, व्यसनी, पापी आदि भोजन करते हैं उस पात्र को भी स्वच्छता पूर्वक नहीं धोते हैं, उस पात्र में ही दूसरों को भोजन देते हैं जिससे रोग फैलता

है। होटल में खाद्य वस्तुओं को ढक कर भी नहीं रखते हैं जिसेस मक्खी भिन-भिन करती हैं और उसमें ही मल-मूत्र करती हैं। धूल आदि गिरकर के उसमें ही जम जाते हैं। बनाने वाले भी स्वच्छता से नहीं रहते हैं। बनाते बनाते उनका पसीना भी भोजन में गिर जाता है, यहां तक कि नाक आदि छिड़कने पर भी हाथ नहीं धोते हैं। जिस पात्र में भोजन बनाते हैं उस पात्र को भी स्वच्छता से नहीं धोते हैं, मात्र परोसने वाला पात्र ऊपर से ही चमकीला रहता है। जिस पात्र में सब लोग खाते हैं उस पात्र को एक बाल्टी के पानी में डुबा देते हैं। वही गन्धी बाल्टी के पानी में ही अन्य रोगी-कुष्ठी-भिखारी-व्यक्तियों के पात्र को भी डुबाकर उस पात्र में पुनः परोसते हैं। विचार करिये कि वह भोजन पात्र किस प्रकार शुद्ध है? उस प्रकार के धृणित, गन्दगी, सब की झूठन से मिला हुआ, मद्य, मांस, कंद-मूल बासी आहार से युक्त भोजन खाने से आरोग्य के पतन के साथ-साथ नैतिक एवं धार्मिक पतन भी हो जाता है। केवल जिह्वा इन्द्रिय को लगाम में रखने से उक्त अनर्थ नहीं हो सकते हैं।

#### (3) प्राण इन्द्रिय निरोध

नासिका सुगन्ध को चाहती है। उसके लिये जीव सुगन्धित इत्र, सेंट, स्नो, पावडर आदि का इस्तेमाल करता है। केवल प्राण इन्द्रिय के वशवर्ती होकर जी भ्रमर लकड़ी को भी काट सकता है वह कोमल कमल में बन्द होकर प्रिय प्राण को भी गंवा देता है। वर्तमान में सेंट आदि बनाने के लिये अनेक प्रकार के जीवों को मारकर उनके अवयवों से सेंटादि बनाया जाता है। इस प्रकार सुगन्धित द्रव्यों के प्रयोग से हिंसा का भी दोष लगता है। कृत्रिम खाद्य वस्तुओं को सुगन्धित बनाने के लिए हिंसात्मक, रासायनिक द्रव्य मिलाते हैं। इस प्रकार की वस्तुओं के सेवन से स्वास्थ्य के साथ-साथ धर्म को भी धक्का पहुँचता है।

#### (4) चक्षु इन्द्रिय निरोध

आँख मनोहर, सुन्दर वर्ण को देखना चाहती है। चक्षु इन्द्रिय के वशवर्ती होकर पतंग अग्नि से आकर्षित होकर अग्नि में जलकर राख हो जाता है। वर्तमान में चक्षु इन्द्रिय को पुष्ट करने के लिए अनेकानेक अश्लील, काम-उत्तेजक एवं अनैतिक सिनेमा का प्रचार-प्रसार हो रहा है। अभी तो सिनेमा देखना मानो जनता का एक अनिवार्य कर्तव्य ही हो गया है। सिनेमा देखने से समय का दुरुपयोग, अर्थनाश, नैतिक पतन, कुसंस्कार का प्रशिक्षण होता है एवं आँख, स्वास्थ्य को

क्षति पहुँचती है तथा संक्रामक रोग फैलता है। चक्षु इन्द्रिय के वशवर्ती होकर रूपये देकर कुसंस्कार एवं रोग को खरीदते हैं। वर्तमान में जो कुसंस्कार फैला हुआ है, नैतिक पतन हो रहा है, चोर बाजारी, (दो नम्बर का काम) डाकू बनने का प्रशिक्षण मिल रहा है, शील का सत्यानाश हो रहा है उनका उत्तरदायित्व बहु-अंश में चित्र मन्दिर (सिनेमा गृह) है। सिनेमा मानो एनिमा हैं। जैसे-पेट स्वच्छ करने के लिये एनिमा लिया जाता है उसी प्रकार धार्मिक, नैतिक भावों को हृदय से निकालने के लिये सिनेमा रूपी एनिमा लिया जाता है। इस सिनेमा रूपी एनिमा से धार्मिक, नैतिक सदाचार हृदय से निकल जाते हैं। सिनेमा से फैशन, आराम-खोर, बाबू-चाल, टीपटॉप, वैदेशिक कुस्तित रीति-रिवाज आदि का प्रशिक्षण मिलता है।

किसी भी साधन से रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक कार्य मनुष्य स्वयं विवेक से कर सकता है। सिनेमा के माध्यम से नैतिक, शैक्षणिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि प्रशिक्षण दिया जाता है तो सिनेमा मनुष्य समाज के लिए वरदान स्वरूप होता जैसे-वर्तमान में टी.वी. में रामायण चलती है। वह रामायणादि नैतिक, विनय, राजनीति, नीति, भारू-प्रेम, पितृ-भक्ति, गुरु-आज्ञा पालन आदि के लिये प्रेरणा स्रोत है। ऐसे कार्यक्रमों का समाज में गौरव होना चाहिये तथा अनैतिकता विरोध भी होना चाहिए।

### (5) कर्ण इन्द्रिय निरोध

कान, कर्ण-रसायन, सुललित, राग-रागिणी पूर्ण संगीत, स्वर; शब्द आदि चाहता है। कान के वशवर्ती होकर स्वरुप्न दोमल घास को इच्छापूर्वक चरने वाला हिरण जो कि वायु के वेग से गति करता है वह भी शिकारी के स्वर, ध्वनि से कीलित होकर प्रिय प्राणों को गवां देता है। अब कर्ण इन्द्रिय को पुष्ट करने के लिये रेडियो, टी.वी. सिनेमा में अश्लील, अनैतिक गाना विशेषकर आता है। अश्लील गाने का इतना प्रभाव पड़ता है कि मनुष्य इनसे इतना प्रभावित होता है कि छोटे-छोटे बच्चे भी उन अश्लील गानों को खाते-पीते, चलते-फिरते हुए गुन-गुनाते हैं, किन्तु धार्मिक, राष्ट्रीय गाना बुलवाने पर भी नहीं बोल पाते हैं। जैनियों के बच्चों को जैनियों का महामंत्र-णमोकार मंत्र भी नहीं आता है परन्तु सिनेमा का गाना, ऐक्षण, चाल-चलन जीवन के प्रत्येक समय में उभरते रहते हैं। इन्द्रियों के दासों की दुर्दशा का चित्रण एक कवि ने निम्न प्रकार किया है-

करि मृग मीन अलि सरभा, जो एक-एक पर मरते हैं।

उनकी क्या दशा होगी, जो पाँचो ही को करते हैं॥

हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के कारण, हरिण कर्ण इन्द्रिय के कारण, मछली रसना इन्द्रिय (जीभ) के कारण, भ्रमर ग्राण इन्द्रिय के कारण, पतंगा चक्षु इन्द्रिय के कारण नाश को प्राप्त होते हैं परन्तु खेद एवं विचार की बात है कि वे तो पशु हैं, अविवेकी हैं, वे एक-एक इन्द्रिय के वशवर्ती होकर प्रिय प्राण गँवा देते हैं किन्तु विवेकी-विचारशील, विश्व के अति उन्नतशील प्राणी मनुष्य पाँचों इन्द्रिय का दास होकर जो उनके पीछे भागता रहता है उसकी क्या दशा होगी ? थोड़ा स्वयं विचार करिये।

उपरोक्त दोष और गुण का विचार कर आत्म-हितैषी जितेन्द्रिय स्वतंत्र प्रेम के रसिक साधु-महात्मा पाँचों इन्द्रियों को कश्यप (कछुआ) के समान निरोध करके उपयुक्त कार्य में उनको लगाते हैं जिससे कि उनके प्रगतिपथ में किसी प्रकार अवरोध नहीं आवें।

### सात विशेष गुण

#### (1) नग्नत्व- (अचेलक) गुण

वत्थाजिण वक्तेण य अह्वा पत्तादिणा असंवरण।

णिव्यूसण णिग्नंथं अच्चेलक्वकं जगदि पुज्जं॥

(मूलचार)

वस्त्र, चर्म, वल्कलों अथवा पत्ते आदिकों से शरीर को नहीं ढकना, भूषण अलंकार से और परिग्रह से रहित निर्गन्ध वेष जगत में पूज्य अचेलकत्व नाम का मूलगुण है।

अचेलक का अर्थ निर्गन्धता या दिग्म्बर। दिक्+अम्बर। दिक् अर्थात् दिशा, अम्बर का अर्थ वस्त्र।

दिक् एव अम्बर यस्य सः दिग्म्बरः। जिसका वस्त्र दिक् अर्थात् आकाश हो वह दिग्म्बर। यहाँ दिग्म्बर उपलक्षण मात्र है। केवल वस्त्र रहित होने से कोई दिग्म्बर नहीं होता है। जैसे गाय, बैल, पक्षी, नारकी, पागल आदि। दिक् के समान अन्तरंग, बहिरंग स्वच्छ, निर्मल व्यापक निःसंग रूप को दिग्म्बर कहते हैं। उनका दूसरा नाम निर्गन्धता है। निर्गन्धता का अर्थ क्रोध-मान-माया-लोभ-अविद्या, कुसंस्कार,

काम आदि अन्तरंग ग्रंथि, धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, सम्पत्ति, विभूति आदि बहिरंग ग्रंथि से जो विमुक्त है उसको निग्रन्थ कहते हैं।

अशक्य धारणं चेदं जन्तुनां कातरात्मनाम्।  
जैनं निस्संगता मुख्यं रूपं धीरे निषेष्यते॥

(आदिपुराण)

जिनेन्द्र भगवान् के अलौकिक, अतिश्रेष्ठ, सहज-सरल, प्राकृतिक, बालकवत् निर्ग्रन्थता रूप प्राकृतिक एवं सार्वभौमिक स्वरूप होने से इसका महत्व प्रत्येक युग में प्रत्येक धर्म में किसी न किसी में रूप पाया जाता है।

स्वयं महात्मा बुद्ध कहते हैं कि मैं पहले नग्न निर्ग्रन्थ रहा, अनिश्चित विहार किया, हाथ में आहार किया है। अनेक दुरुह (कष्ट) तपश्चरण किया है, इससे सिद्ध होता है कि स्वयं बुद्ध निर्ग्रन्थ थे परंतु यह दिग्म्बर मार्ग (श्रमण मार्ग) कठिन होने से इस मार्ग को छोड़कर उन्होंने मध्यम मार्ग को अपनाया।

विशाख-वश्र धर्म पदत्थ कथा में लिखा है कि एक श्रेष्ठी के भवन में 500 दिग्म्बर जैन साधुओं का विहार होता था। महापरिनिर्वाण सूत्र में भी दिग्म्बर साधु का उल्लेख पाया जाता है विनय पिटक में भी दिग्म्बर साधु के विहार का उल्लेख है।

वैदिक साहित्य में प्राचीनतम ऋग्वेद में नग्न साधु को 'वातवासना' शब्द द्वारा बताया है।

‘मुनयो वातवसनाः पिशंगा बसते माला’ ऋग्वेदमंडल 10-2-1362

यजुर्वेद में महावीर भगवान् को नग्न बताते हुए उनकी उपासना को संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय रूप रात्रि भय तथा धन मद, शरीर मद आदि निवारक कहा है।

‘आतिथ्य रूपं मासर महावीरस्य नग्नहुः।  
रूपमुपासदामेत त्रिस्त्रो रात्रीः सुराः सुतः॥’

यजुर्वेद अथ्यात्म ११ मंत्र १४

एकाकी निःस्फूह शान्त पाणि पात्रो दिग्म्बरः।  
कदा शम्भो ! भविष्यामि कर्म निर्मूलन क्षयः॥

भृत्यरि शतक

हे शम्भो ! मैं कब अकेला, कामना रहित, शांत, करपात्री (हाथ में भोजन करना) दिग्म्बर और बन्धन निर्मूलन करने वाला होऊँगा ?

श्रमण वातवसन (निर्ग्रन्थ) आत्म विद्या में विशारद होते हैं।

मुण्डी नग्नो मयूराणां पिछीधारी महाब्रतः। मुण्डीत, नग्न, मयूर पीछीधारी महाब्रत धारी मुनि होते हैं।

‘नगण्टेसु पिमे करे वियापटा होहंति’ अशोक स्तंभ

(दिल्ली फिरोज शाह कोटला शिला लेख)

कटि सूत्रं च कौपीनं दंडवस्त्रं कमण्डलम्।

सर्वमप्सु विसज्याय जात रूपं धरश्चरेत्।

(नारद परिग्रामक उपनिषद्)

कटि सूत्र, कौपीन (लंगोट) दण्ड, वस्त्र, कमण्डल को जल में विसर्जन करके जात रूप अर्थात् नग्न रूप को धारण करके विचरण करना चाहिए।

हमारे ईस्लाम धर्म वाले बन्धुओं! देखिये शायर जलालुद्दीन ने दिग्म्बर नग्न पद को दिव्य ज्योति से अलंकृत बताते हुए कहा कि वस्त्रधारी व्यक्ति की दृष्टि तो धोबी की ओर रहती है-

मस्त बोला मुहत्सिव से काम जा होगा क्या नंगे से तु ओहदा बरा है। नजर धोबी पै जमापोस की है तजल्ली जवेर उरितांती।

नग्न दरवेश तार्किक से कहता है— अरे भाई, तू जा और अपना काम कर, तू दिग्म्बर, सा नहीं बन सकता, वस्त्र पहनने वाले की दृष्टि सदा धोबी की ओर रहती है। दिग्म्बर की शोभा धोबी प्रकाश रूप है। या तो तुम नग्न दरवेशी से कोई संबंध नहीं रखो अथवा उनको सदृश्य दिग्म्बर और स्वाधीन बन जाओ। यदि तुम पूर्णतया दिग्म्बर नहीं बन सकते तो अपने वस्त्रों को थोड़े परिमाण में रखो।

आज से 300 वर्ष पूर्व शाहजहां बादशाह के राज्य में मुस्लिम सूफी फकीर मुहम्मद अली नग्न रूप से विहार करते थे। उसका मजार दिल्ली के जामा मस्जिद के बाँये भाग में है। उसका कहना था कि परमात्मा जिस पर दोष देखता है उसे वस्त्र पहना देता है। किन्तु जो निर्दोष है उसे नग्न ही रहने देता है।

पोशाद लिबास हस्करा एवेदीक।

वे एबा रा लिबासे उरियानी दाद॥

अब्दुल कासिम जिलानी नामक मुस्लिम साधु नग्न दिग्म्बर रहा करते थे।

The higher Saints of Islam Called Abduls went about perfectly naked.

("Mysticism and Magic in Turkey" by Miss huecy M. Gonet.)

अब देखिये ईसाई धर्म वालों के यहां नग्न साधु का महत्व—

बाइबिल में लिखा है— आदम तथा उसकी पत्नी (ईव) नग्न उत्पन्न हुए थे तथा उद्यान में नग्न रहते थे उसके मन में लज्जा ने स्थान नहीं बनाया था। जब उन्होंने निषिद्ध के वृक्ष के फल को खाया तो उन्हें यह ज्ञान होने लगा कि वे नग्न हैं—

And they (Adam and Eve) were both naked the man and his wife were not ashamed.

(Gensis 11-25)

When they ate the fruit of the forbidden tree, they felt and knew that they were naked.

Ibid 11-7-11

बाइबिल में यह भी लिखा है कि ‘उसने अपने वस्त्र भी अलग कर दिए और सेमुअल के समक्ष इस प्रकार की घोषणा की तथा दिन-रात दिग्म्बर रहा उस पर उन लोगों ने पूछा, क्या साल भी पैग्म्बरों से है?’

And he stripped his clothes also and prophesised before samualin samuel in the like manner and they lay down naked all day and night.

Wherefore they said "Is saul also among the prophets.

Samual XIX 24

उसी समय प्रभु ने अमोज के पुत्र ईसाईयों से कहा—जा तू भी अपने कपड़ों को ढूर कर दे और जूतों को उतार डाल। उसने ऐसा ही किया। वह नग्न हो नंगे पैर फिरने लगा।

At the same time the lord spoke the Isaiah the son of Amoj Saying go and loose the sack clothes from off thy loins and they put off their shoes from the foot and he did so walking naked and bare footed.

Isaiah XX-2

ईसाई साधु पीटर ने लिखा है। ‘हमें अपने पास कुछ भी नहीं रखना चाहिए। परंग्रह हम सबके लिये पापरूप है। इसका जैसे भी हो त्याग करना है। उसे पापों

से बचना है।’

"To all of us possession are sins....

The deprivations of these is whatever way it may take place is removal of sin."

शंकराचार्य ने 'विवेक चूडामणि' में लिखा है कि जिस योगी के पास दिशारूपी वस्त्र होते हैं अर्थात् दिग्म्बर होते हैं जिन वस्त्रों को धोने की जरूरत नहीं सुखाने की आवश्यकता नहीं रहती। उसको श्रेष्ठ अवस्था में यह जीव पूर्ण निराकुल हो ब्रह्मदर्शन जनित आनन्द प्राप्त करने में समर्थ होता है।

श्री रामकृष्ण कथामृत में लिखा है कि रामकृष्ण ने परमहंस अवस्था धारण की थी। जागने पर भक्तों ने देखा कि प्रभात हो चुका है। रामकृष्ण बालक के समान दिग्म्बर नग्न हैं, जिसके शरीर पर एक धागा मात्र भी नहीं। उक्त स्वामीजी ने अपने अश्वनी कुमार से कहा था कि मैं सभी भौतिक वस्तुओं को भूल जाता हूँ उस समय वस्त्र भी छूट जाता है।

आरोह स्वरथे पार्थ, गाण्डीवं स्वकरे कुरु।

निर्जिता मेदिनी मन्ये निर्ग्रन्थो यस्य सम्मुखे॥

(महाभारत)

जब अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हो रहे थे उस समय एक नग्न दिग्म्बर मुनिराज आ रहे थे। कृष्ण ने मुनिराज को देकर कहा— अरे अर्जुन! अब क्या देखता है, शीघ्र रथ पर सवार हो गाण्डीव को हाथ में लो। देख, यह अपने समक्ष निर्ग्रन्थ मुनिराज हैं। अभी युद्ध करने से मैं मानता हूँ पृथ्वी की विजय तुम्हारे हाथ में है।

पद्मनि राजहंसस्य निर्ग्रन्था च तपोधना।

यस्मिन् क्षेत्रे विचरन्ति सुभिक्षं तत्र निश्चयः॥

सुलक्षणी पद्मनि स्त्री, राजहंस, निर्ग्रन्थ-तपोधन जिस क्षेत्र में विचरण करते हैं वहाँ निश्चय से सुख-शांति, सुभिक्ष होते हैं।

इससे सिन्धु होता है कि निर्ग्रन्थ रूप शुभ सूचक है एवं मंगलमयी भी है।

“नग्नत्वं सहजं लोके विकारे वस्त्रं वेष्टितम्।”

(यशस्तिलक चम्पू)

नग्नत्व विश्व में सहज रूप है शरीर पर वस्त्र पहनना अपने विकार को ढांकना है। जब मनुष्य उत्पन्न होता है तब नग्न ही रहता है। बाल्यावस्था में भी नग्न

रहता है। बालक की नग्नता को देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं। बालक कभी स्वयं की नग्नता के कारण किसी प्रकार लज्जा का अनुभव नहीं करता। कपड़ा पहिनने की इच्छा नहीं रहती है। यहाँ तक कि कपड़ा पहनाने से बच्चे रोते भी हैं और कपड़ा फाड़कर फेंक भी देते हैं। वह निर्विकार रूप से धूमता-फिरता है। उसको सब कोई लाड़-प्यार से खिलाते-पिलाते हैं, परन्तु माता-पिता लोग गर्मी, सर्दी, डांस-मच्छर आदि से बालक की रक्षा करने के लिये बालक को कपड़ा पहनाते हैं। जब वह बड़ा होता है तब वह संसार-प्रपञ्च में, मोह-मया में फँसता है, तब वह अपने विकार भाव को छिपाने के लिये कपड़ा आवश्यक मानता है।

इससे सिद्ध होता है कि कपड़े का मूल उद्देश्य काम विकार को ढंकना व शरीर की रक्षा करना है। परन्तु निर्गन्ध मुनि को बालकवत् सरल व विकार भाव से रहित होने से कपड़े की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। शरीर को समस्त अनर्थ का मूल कारण एवं परद्रव्य मानकर शरीर का ममत्व भाव भी त्याग देते हैं। इसलिये शरीर की रक्षा के लिये भी वस्त्र धारण नहीं करते हैं। राग-मोह काम-भाव एवं भौतिक सुंदर उपासना से दूर होने के कारण शृंगार के लिये भी वस्त्र धारण नहीं करते हैं। वे सोचते हैं हम नंगे आये और नंगे ही जायेंगे फिर बीच में वस्त्र धारण करके दंगा करने की क्या आवश्यकता है? वे अन्तरंग-हिरंग परिग्रह त्याग करने के कारण वस्त्र का भी त्याग कर देते हैं। कपड़े के लिये पैसा (अर्थ) चाहिये। पैसा तो साधु अपने पास नहीं रखते हैं। पैसा के लिये याचना करनी पड़ेगी परंतु याचना करना स्वामिमानी मुनि के लिये मरण से भी दुःखदायी लगता है। कहा भी है कि—

मांगन मरन समान है, मत मांगे कोई भीख।  
मांगन से मरना भला, यह सदूगुरु की सीख।

जब मुनि प्राण घातक रोग, तृष्णा होने पर भी याचना नहीं करते हैं, तब सामान्य कपड़े के लिये जो कि प्राण धारण के लिये नितान्त आवश्यक नहीं है फिर उसके लिए याचना कैसे कर सकते हैं?

इस प्रकार जो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की आदर्श मूर्ति हैं उन सबको आदर-पूज्यता की दृष्टि से देखना चाहिये। उनको देखकर धृणा नहीं करना चाहिए।

अधमा धनमिच्छन्ति, धनं मानं च मध्यमा।  
महान्तो मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥

चाह गयो चिन्ता मिटी, मनुआ वे परवाह।  
जिन्हें कुछ नहीं चाह है वे नर शहनशाह॥

#### (2) स्थिति भोजन

समपाद से खड़ा होकर अंजुलि पुट में भोजन लेना स्थिति भोजन है। इसका उद्देश्य यह है कि जब तक जंघा पर खड़े होने के योग्य शक्ति रहेगी, तब तक धर्म साधना उत्तम रीति से हो सकती है। उसके बाद धर्म साधना होना कठिन हो जाता है एवं परावलंबी होना पड़ता है, इसलिए स्वावलम्बन के लिए एवं दूसरों से अपना काम कम लेने के लिए जंघा शक्ति या शारीरिक शक्ति क्षीण होते देखकर मुनि लोग आगमानुकूल क्रमशः विधिवत् आहार आदि को त्याग करते-करते समाधि लेने का कार्य करते हैं।

#### (3) एक भुक्त भोजन

दिन में सूर्य उदय के दो घड़ी पश्चात् एवं सूर्य अस्त के दो घड़ी पहले एवं मध्याह्न के सामयिक का समय छोड़कर केवल एक बार शुद्ध शाकाहार सद्गृहस्थ द्वारा स्वेच्छापूर्वक भक्ति पूर्वक देने पर लेना, एक भुक्त आहार (भोजन) है। इससे आरोग्य ठीक रहता है। ध्यान-अध्ययन सुचारू रूप से चलता है एवं इन्द्रियां उत्तेजित नहीं होती हैं। ब्रह्मचर्य व्रत में दोष नहीं लगता है। एक दिन में अधिक बार भोजन करने पर रोग होता है, आलस्य, प्रमाद उत्पन्न होता है एवं इन्द्रियाँ उत्तेजित होती हैं तथा ब्रह्मचर्य निर्मल नहीं रहता है। कहा भी है कि—

‘कम खाना गम खाना, न हक्किम घर जाना न हाकिम पर जाना।’  
लोकोक्ति भी है कि—

एक बार खावे सो योगी, दो बार खावे सो भोगी।

तीन बार खावे सो रोगी, चार बार खावे सो शमशान के भागी।

अभी प्राकृतिक चिकित्सा में भी एक बार भोजन को आरोग्य की दृष्टि से महत्व दिया गया है।

#### (4) अदंत धौवन

शृंगारता को कम करने के लिए निर्ममत्व भाव के लिए एवं मुख में रिथत सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिए मुनिलोग दंत मंजन नहीं करते हैं। किन्तु गरम पानी से मुख शुन्दि करते हैं।

## (5) केशलोच

अदन्ये वैराग्यश्चापि कृते ये केशलोचनं।  
यतीश्वराणं वीरत्वं, व्रतभूषणं दीपकः॥

केशलोच से अदीनता, वैराग्यता, वीरत्व एवं व्रत में निर्मलपना प्रकट होता है। केश बढ़ने से केशों में जूँ-लीख आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। शिर मर्दन से, सोने से उनका घात होना संभव रहता है इसलिए साधु लोग दो-तीन या अधिक से अधिक चार महिने के भीतर निश्चित रूप से केशलोच करते हैं। जिस दिन केशलोच करते हैं, उस दिन उपवास करते हैं एवं दोषों का परिमार्जन (प्रतिक्रमण) करते हैं। केशलोच के अभाव में केशों को काटना पड़ेगा। काटने के लिए कैंची, उस्तरा आदि चाहिए या उसके बनाने वाले क्षौरकार (नाई) चाहिये और इसके लिये रूपया चाहिये। रूपये के लिए याचना करनी पड़ेगी। इससे दीनता होगी। इस प्रकार दीनता न हो, उसके लिए मुनि केशलोच करते हैं। केशलोच से आत्म शक्ति, धैर्य, निर्मत्व, वीतरागता, वीरत्व आदि गुण प्रकट होते हैं। केशलोच से मुनियों के धर्म के प्रति कितनी आस्था, प्रेम एवं समर्पण भाव है प्रगट होता है।

केशलोच को करते हुये मानों मुनि लोग क्लेशों को उखाड़ कर फेंकते हैं। इससे उनका वीतराग भाव प्रत्यक्ष रूप से प्रगट होता है। जो केशलोच देखते हैं उनके हृदय में धर्म के प्रति आस्था प्रकट होती है। यदि केशलोच नहीं करेंगे तो केश बढ़ेंगे, केशों को स्वच्छ रखने के लिये साबुन, पानी आदि की भी आवश्यकता होगी। उससे आरंभ और हिंसा का भी दोष लगेगा। उपरोक्त समस्त दोष-गुण का विचार करके स्वेच्छापूर्वक स्वयं के हाथ से या साधर्मी के हाथ से केशलोच करते हैं।

## (6) अस्नान

स्नान के लिये पानी चाहिए, स्नान करने के बाद पानी बहता है, जिसे सूक्ष्म जीवों की विराधना होने की संभावना विशेष रहती है। यदि जलाशय में डूब कर स्नान करेंगे तो भी जीवों का घात होगा। स्नान से सुकुमारता, सुन्दर, प्रियता, आदि भाव प्रकट होते हैं। उमर्त्ताएँ मुनि गण दोनों संघर्मों का पालन करने के

लिए स्नान नहीं करते हैं।

अण्हाणं घोर गुणं संजम दुग पात्यं मुणिणो।

(मूलाचार)

मुनि के प्राणी संघर्म और इन्द्रिय संघर्म पालन करने रूप घोर गुण स्वरूप अस्नान व्रत होता है।

उपनिषद् में भी कहा है कि-

स्नानं त्रिध्वनं प्रोक्तं वहुदक वनस्थयोः।  
हंसे तु सकृदेव स्यात्परहंसे न विद्यते।  
हंसस्यैकबारं परम हंसस्य मानस स्नानम्।  
तुर्यातीतस्य भस्म स्नानं अवधूतस्य वायव्यस्नानं।

(उपनिषद्)

बहुदक (वन में रहने वाले यति) तीन बार जल से स्नान करते हैं, हंस एक बार जल से स्नान करते हैं, परम हंस मानसिक स्नान करते हैं। तुर्यातीत भस्म से स्नान करते हैं, अवधूत वायु से स्नान करते हैं।

परमहंसाश्रयस्योहि स्नानदेर विधानतः।

अशेष चित्तं वृत्तीनां, त्यां केवलमाचरेत्॥

(नारद परिव्राजक)

परम हंस आश्रम के पहले-पहले तक स्नान का विधान है परन्तु परमहंस स्थानापन्न महात्मा केवल सम्पूर्ण विकारात्मक चित्त वृत्तियों का त्याग करते हैं। उनके लिए स्नान का विधान नहीं है।

स्नान अनेक प्रकार का होता है, जल स्नान, सूर्य किरण स्नान, वायु स्नान, भस्म स्नान, तेल स्नान (अभ्यंगस्नान) मानसिक स्नान, मंत्र स्नान, व्रत स्नान आदि। जो गृहस्थी में रहकर गृहस्थ संबंधी व्यापार धंधा, विषय भोग आदि करते हैं उनके शरीर शुद्धि के लिये जल स्नान की आवश्यकता होती है। जो उपरोक्त काम को छोड़कर ब्रह्मचर्य में रहकर आत्म साधन करते हैं उनके लिए मानसिक स्नान, मंत्र स्नान, व्रत स्नान पर्याप्त है। मल, मूत्र त्याग के बाद जल से शुद्धि करते हैं, आहार पहले एवं बाद में भी शुद्धि करते हैं।

‘ब्रह्मचारी सदा शुची’ ब्रह्मचारी सदा पवित्र रहते हैं।

## (7) भूमि शयन

फासुय भूमि परसे अप्पम संथारिदम्हि पच्छण्ण।

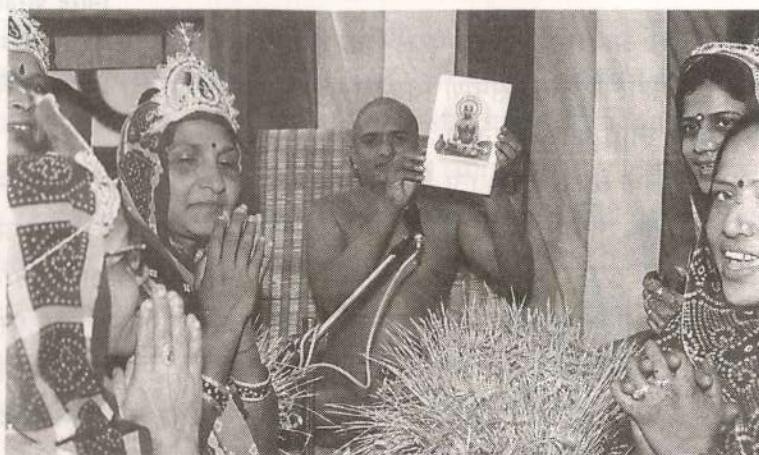
दंडं धाणुव्व सेज्जं खिदि सयणं एय पासेण॥ (मूलाचार)

अल्प संस्तर में या संस्तर रहित एकांत सूक्ष्मादि जीव जन्तु से रहित प्राप्तु भूमि में दण्डाकार या धनुषाकार शयन करना अथवा एक पाश्वर से सोना भूमि शयन व्रत है। शयन के लिये घास, (सूखी घास) धान्य का पुआल, चटाई, लकड़ी का फलक, शिला (पत्थर) आदि का उपयोग साधु लोग करते हैं। यह भी भूमि शयन व्रत के अन्तर्भूत है।

पलंग, गदा आदि में सोने से विलासिता, कामुकता आदि की वृद्धि होती है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार और प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार भी भूमि प्रदेश में नंगे पांव से चलना एवं नग्न शरीर होकर स्वच्छ भूमि पर शयन करना आरोग्य के लिये हितावह है। अभी तो विदेश में तथा कहीं-कहीं भारत में भी स्वास्थ्य संपादन के लिये भूमि में शयन करते हैं। भूमि में शयन करने से स्नायु, शरीर दृढ़ होते हैं एवं रक्त संचार सुचारू रूप से होता है।

**प्रशिक्षण शिविर गोंगला में आ. श्री कनकनंदीजी के ग्रंथों का विमोचन करते हुए**

आ. श्री कुशाग्रनंदीजी गुरुदेव (भिण्ड) म.प्र.



## परिच्छेद-3

### भगवान् महावीर

**(भगवान् महावीर का धरती पर अवतरण)**

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इस न्यायानुसार मार्ग-भ्रष्ट, संत्रस्त उन्मार्गगामी, मनुष्यों के मार्ग प्रदर्शन करने के लिये तथा जनकल्याण, जनउद्धार, साम्यवाद की स्थापना करने के लिए क्रांतिकारी युगदृष्टा महामानव तीर्थकर जन्म लेते हैं। जैन रामायण, 'पद्मपुराण' में महर्षि रविषेणाचार्य बताते हैं कि-

**आचरेण विधातेन कुदृष्टिनां च संपदा।**

**धर्म ग्लानिं परिप्राप्तामुच्छ यन्ते जिनोत्तमः ॥२०६॥**

जब आचार-विचार, नैतिक आचार-शिष्टाचार आदि का अवमूल्यन (पतन) होता है, घात होता है, मिथ्या-पाखण्डी, ढोंगी, दम्पी, आततायियों की श्री, संपत्ति, विभूति, शक्ति वृद्धि होती है तब सत्य, अहिंसा, प्रेम, मैत्री, करुणा, धर्म के संस्थापक युगदृष्टा महामानव तीर्थकर उत्पन्न होते हैं और शाश्वत सत्य, अहिंसा, धर्म का उद्धार करते हैं।

गीता में भी युग-पुरुषों के अवतार के विषय में निम्न प्रकार कारिका है—

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।**

**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥१६॥**

**परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**

**धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥१८॥**

हे भारत! धनुर्धर अजुर्न! जब-जब धर्म मन्द पड़ जाता है, अधर्म का जोर बढ़ता है तब-तब मैं जन्म धारण करता हूँ। साधु, सज्जन, धर्मात्माओं की रक्षा, दुष्टों के निवारण-नाश तथा धर्म का पुनरुद्धार करने के लिये युगो-युगों में जन्म लेता हूँ।

सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य, निरंजन, अविकारी, सिद्ध, शुद्ध, परमात्मा जन्म, जरा मरण से रहित होने के कारण जन्म ग्रहण नहीं करते हैं परंतु भविष्य में मोक्ष जाने वाले अर्थात् भावि शुद्ध परमात्मा स्वर्ग से अवतरित होकर धर्म प्रचार करते हैं, अधर्म का विनाश करते हैं, इसी अपेक्षा से भगवान् का अवतार होता

है ऐसा मानना चाहिये; इसी को जैन धर्म में गर्भ-जन्म कल्याणक कहते हैं।

### तीर्थकर बनने का उपाय

तीन लोक में अद्वितीय महान् धर्म-क्रांतिकारी तीर्थकर-पद किसी की कृपा, आशीर्वाद, वर, प्रसाद, स प्राप्त नहीं होता है। इस पद के लिए महान् पुरुषार्थ, विश्व मैत्री, विश्व-प्रेम, सर्व जीव हिताय सर्वजीव सुखाय की महान् उदात्त भावना की परम आवश्यकता होती है। महान् पवित्र उदात्त 16 प्रकार की भावनाओं एवं उज्ज्वल जीवन के द्वारा कोई विरल पुण्य-शलाका महामानव इस तीर्थकर-पद को प्राप्त करने के लिये समर्थ होता है। भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि साधक आत्म-साधन के माध्यम से भगवत् पद को प्राप्त कर सकता है। परंतु तीर्थकर पद को प्राप्त करने के लिये विश्व के अद्वितीय पुण्य कर्म तीर्थकर नाम-कर्म प्रकृति को संचित करना पड़ेगा। बिना तीर्थकर पुण्य प्रकृति के कोई भी तीर्थकर नहीं बन सकता है। यह पुण्य कर्म इतना, अपूर्व एवं संचय करने में कष्ट साध्य है कि 10 कोड़ा-कोड़ि सागर प्रमाण काल में भरत क्षेत्र में केवल 24 ही तीर्थकर जन्म लेकर इस धरती को पवित्र बनाते हैं, तीर्थकर बनने के लिये विशेषकर पूर्वभव का संरक्षक, पुण्य, विश्व-मैत्री, सद्भावना, सम्यग्दर्शन आदि की प्रबल प्रेरणा चाहिये। तीर्थकर बनने के लिये पवित्र 16 कारण भावनाओं की आवश्यकता होती है।

### घोडश कारण भावना

दर्शन-विशुद्धि, विनयसंपन्नता, शील और व्रतों का अतिचार-रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैव्यावृत्य करना, अरिहंत भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्ष मार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य ये तीर्थकर नामकर्म के आस्त्र के कारण हैं।

1. दर्शन विशुद्धि— दर्शन अर्थात् भाव अर्थात् दृष्टिकोण की विशुद्धि को दर्शन विशुद्धि कहते हैं। (1) दर्शन विशुद्धि के लिए सत्यधर्म में शंका नहीं करना। (2) धर्म करते हुए कामना से रहित होना। (3) किसी भी जीव से घृणा नहीं करना। (4) अंधविश्वास, रुद्धिवादिता से रहित होना। (5) स्वगुणों में वृद्धि करना एवं दूसरों के दुर्गुणों को नहीं उछालना। (6) धर्म से विचलित व्यक्तियों को भी धर्म-मार्ग में रिधत करना। (7) अग्नि विश्व के जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखना।

(8) अहिंसामयी, सत्यधर्म का प्रचार-प्रसार करना।

2. विनय-सम्पन्नता— सत्य धर्म रूपी मार्ग और उस मार्ग को अपनाने वाले गुरु एवं साधक तथा गुणियों के प्रति विनम्र व्यवहार करना, उदण्डता, उच्छृंखलता, से रहित शालीनतापूर्ण व्यवहार करना।

3. शीलब्रतों का अतीचार रहित पालन करना— अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि व्रतों का पालन करने के लिए क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का त्याग करना तथा व्रत एवं शील का निर्दोष परिपालन करना।

4. ज्ञान में सतत उपयोग— सत्य तथ्य को जानने के लिए सतत स्वाध्याय, अनुशीलन, परिशीलन, अन्वेषण करना।

5. सतत संवेग— संसार के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक आदि दुःख, समस्याओं को दूर से त्याग करना।

6. शक्ति के अनुसार त्याग— शक्ति के अनुसार स्व-पर उपकार के लिए भोजन, औषधि, ज्ञान, अभ्यदान आदि देना।

7. शक्ति के अनुसार तप— मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रमादरहित होकर सतत पुरुषार्थ करना।

8. साधु समाधि— संकट, विपत्ति में पड़े हुए साधुओं की तथा समाधिस्थ साधुओं की सेवा/सहायता करना।

9. वैव्यावृत्ति— क्षुधा रोग, आदि से पीड़ित साधुओं की सेवा करना।

10. अहिन्त भक्ति— अरिहंत भगवान् के गुणों की उपलब्धि के लिए उनकी भक्ति करना।

11. आचार्य भक्ति— धर्माचार्यों की सेवा, भक्ति करना।

12. वहुश्रुत भक्ति— विशेष ज्ञानी, तपोनिधि उपाध्याय की भक्ति, सेवा आदि करना।

13. प्रवचन भक्ति— सर्वज्ञ, हितोपदेशी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का आदर करना एवं प्रचार-प्रसार करना।

14. आवश्यक क्रियाओं को नहीं छोड़ना— स्व-कर्तव्यों को त्रटि रहित पालन करना।

15. प्रभावना— ज्ञानदान आदि के माध्यम से धर्म का प्रचार-प्रसार करना।

16. वात्सल्य— समस्त धार्मिक जनों के प्रति निश्चल, निःस्वार्थ, प्रेम व्यवहार

करना।

उपर्युक्त महान् / उदात्त भावनाओं से महावीर भगवान् का जीव जिसने पूर्वभव में भावित होने के कारण महान् अतिशयकारी तीर्थकर कर्म का संचय किया था उसके कारण महावीर भगवान् का जीव अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर इस धरती पर अवतरित हुए थे।

### **भगवान् महावीर के मंगलमय पंचकल्याणक**

भगवान् महावीर ने तीर्थकर प्रकृति से युक्त होकर इस पवित्र भारत की भूमि पर अवतरित होकर जिन कार्यों को किया वह लोकोत्तम / लोकमंगलकारी होने के कारण इन गर्भादिक को कल्याणक शब्द से अभिहित किया गया है। उनके पूर्ण जीवन को संक्षिप्ततः (1) गर्भकल्याणक (स्वर्गावितरण) (2) जन्मकल्याणक (3) दीक्षाकल्याणक (परिनिष्क्रमण) (4) केवलज्ञान कल्याणक (बोधिलाभ) (5) मोक्षकल्याणक (परिनिर्वाण) रूप में विभक्त किया जाता हैं। संक्षिप्त में उनका वर्णन निम्न प्रकार है।

#### **1. गर्भ कल्याणक**

जिस प्रकार सूर्य उदय के पहले से ही अंधकार शनैः-शनैः विलय को प्राप्त होता है, प्रकाश का धीरे-धीरे आगमन होता है, पूर्व आकाश में लालिमा छा जाती है; उसी प्रकार महान् पुण्यशाली, जगत् उद्घारक, सत्य-अहिंसा के अवतार भगवान् महावीर का माता के गर्भ में आने से पहले ही कुछ अलौकिक घटनायें घटित होती हैं मानो भगवान् के आगमन से प्रभावित होकर विश्व, प्रकृति, देव आदि भगवान् का सुखागत कर रहे हैं।

**रत्नवृष्टि-** महावीर भगवान् के माता के गर्भ में आने से पहले से ही जहाँ पर भगवान् महावीर का जन्म होगा; ऐसे भरत क्षेत्र के विदेह देश के कुण्डपुर नामक नगरी के राजा सिद्धार्थ के भवन के आंगन में प्रतिदिन 7.1/2 करोड़ रत्नों की वर्षा होने लगी। आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन जब चंद्रमा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में था तब राजा सिद्धार्थ की प्रसन्नमुद्रावाली रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) 7 खण्ड वाले राजमहल के भीतर रत्नदीपकों से प्रकाशित नंद्यावर्त नामक राजभवन में हंस, तूलिका आदि से सुशोभित रत्नों के पलंग पर सो रही थी। जब रात्रि के मनोहर नामक चौथे पहर का अंतिम पहर व्यतीत हो रहा था तब उसने खुली

सी नीद में 16 स्वप्न देखे। 16 स्वप्न के बाद ही उसने मुख में प्रवेश करता हुआ एक अन्य हाथी भी देखा।

#### **माता के 16 स्वप्न एवं उनके भविष्यत् फल**

स्वप्नों के अनन्तर माता बंदीजनों के द्वारा पढ़े हुए मंगलपाठों से जाग उठी और शीघ्र ही स्नान कर मंगल वस्त्राभूषणों को धारणकर राजा सिद्धार्थ के समीप गयी। वहाँ नमस्कार कर वह रानी राजा के द्वारा दिये गये अर्द्धआसन पर विराजमान हुई और राजा को दिखे हुए स्वप्न यथाक्रम से सुनाने लगी। महाराजा सिद्धार्थ ने स्वप्न विज्ञान के अनुसार उन स्वप्नों का फल यथाक्रम से निम्न प्रकार बताया— हे देवि! सावधान होकर प्रसन्नचित्त से सुन! (1) हाथी देखने से तेरे पुत्र उत्तम होगा। (2) उत्तम बैल देखने से वह समस्त विश्व में ज्येष्ठ होगा। (3) सिंह देखने से वह अनंतबल से युक्त होगा। (4) मालाओं को देखने से समीचीन धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करने वाला होगा। (5) लक्ष्मी देखने से वह सुमेरुपर्वत पर देवों द्वारा अभिषेक को प्राप्त होगा। (6) पूर्ण चन्द्रमा देखने से वह समस्त लोगों को आनंदित करने वाला होगा। (7) सूर्य देखने से आध्यात्म तेज से युक्त होगा। (8) दो कलश देखने से अनेक निधियों को प्राप्त करेगा। (9) सरोवर देखने से अनेक लक्षणों से सुशोभित होगा। (10) मछलियों के युगल देखने से सुखी होगा। (11) समुद्र देखने से अनंत-अगाध ज्ञान का धारी होगा। (12) सिंहासन देखने से जगत् का गुरु होकर विश्व को आध्यात्मिक शासन से शासित करेगा। (13) देवों का विमान देखने से वह स्वर्ग से अवतीर्ण होगा। (14) नागेन्द्र का भवन देखने से वह अवधिज्ञान से युक्त होगा। (15) प्रकाशमान् रत्नों की राशि देखने से गुणों की खान होगा। (16) निर्धूम अग्नि देखने से परिशुद्ध परिनिर्वाण पद को प्राप्त करेगा। जो अंत में एक अन्य हाथी प्रवेश करते हुए देखा है उससे सिद्ध होता है कि उपरोक्त ऐसे महापुरुष तुम्हारे गर्भ में अवतरित होंगे।

स्वप्नों का फल सुनकर रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) अत्यन्त प्रसन्न हई। तदनन्तर सब देवों ने आकर राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी का गर्भकल्याणक सम्बन्धी अभिषेक किया तथा देव-देवियों को माता एवं गर्भस्थ बाल तीर्थकर की यथायोग्य देखभाल के लिए नियुक्त कर अपने-अपने स्थान को चले गये।

## २. जन्म कल्याणक

नवमे मासि सम्पूर्णे चैत्रे मासे त्रयोदशी।

दिने शुक्ले शुभे योगे सत्यर्यमणि नामनि॥(262)

अलङ्गारः कुलस्याभूच्छीलानामालयो महान्।

आकरो गुणरत्नानामाश्रयो विश्रुतश्रियः॥ (263)

भानुमान् बन्धुपदमानां भुवनत्रयनायकः।

दायको मुक्तिसौख्यस्य त्रायकः सर्वदेहिनाम्॥(264)

भर्मद्युतिर्भवधं सी मर्मभित्कर्मविद्विषाम्।

धर्मतीर्थस्य धौरयो निर्मलः शर्मवारिधिः॥ (265)

प्राच्यां दिशीव बालाकों यामिन्यामिव चन्द्रमाः।

पदमायामिव गङ्गौधो धात्र्यामिव धनोत्करः॥ (266)

वाग्वध्वामिव वाग्राशिर्तक्ष्यामिव सुखोदयः।

तस्यां सुतोऽच्युताधीशो लोकालोकैकभास्करः। (267)

मानुषाणां सुराणाञ्च तिरश्चाञ्च चकार सा।

तत्प्रसूत्या पृथुं प्रीति तत्सत्यं प्रियकारिणी॥ (268)

(उत्तर पुराण पृष्ठ 460)

**अर्थ-** तदनंतर नौवाँ माह पूर्ण होने पर चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन अर्थमा नामके शुभ योग में, जिसप्रकार पूर्व दिशा में बाल सूर्य उत्पन्न होता है, रात्रि में चन्द्रमा उत्पन्न होता है, पटम नामक ह्रद में गंगा का प्रवाह उत्पन्न होता है, पृथ्वी में धन का गम्ह प्रकर होता है, सररवती में शब्दों का समूह होता है और लक्ष्मी में सुख का उदय (उत्पन्न) होता है उसी प्रकार उस रानी में वह अच्युतेन्द्रनामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र अपने कुल का आभूषण था, शील का बड़ा भारी घर था, गुणरूपी रत्नों की खान था, प्रसिद्ध लक्ष्मी का आधार था, कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य था, तीनों लोकों का नायक था, मोक्ष का सुख देने वाला था, समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाला था, सूर्य के समान कान्तिवाला था, संसार को नष्ट करने वाला था, कर्मरूपी शत्रु के मर्म को भेदन करने वाला था, धर्मरूपी तीर्थ का भार धारण करने वाला था, निर्मल

था, सुख का सागर था, लोक तथा अलोक को प्रकाशित करने के लिए एक सूर्य के समान था। रानी प्रियकारिणी ने उस बालक को जन्म देकर मनुष्यों, देवों, तिर्यज्यों में बहुत भारी प्रेम उत्पन्न किया था। इसीलिए 'प्रियकारिणी' उसका यह नाम सार्थक हुआ था।

**वर्द्धमान-** जब तीर्थकर भगवान् का जन्म हुआ तब उनके पुण्य प्रताप से समस्त विश्व को प्रसन्नता हुई थी। यहाँ तक कि महान् पापी, महान् दुःखी नारकियों को भी क्षणभर के लिए शांति मिली थी। धरती में धन-धान्य की वृद्धि हुई थी इसीलिए इनका मूल नाम 'वर्द्धमान' रखा गया।

### जन्माभिषेक

भगवान् महावीर का जब जन्म हुआ उसकी सूचना प्रकृति के माध्यम से समस्त ब्रह्माण्ड में फैल गयी। उनके पुण्यरूपी तरंगों से तरंगायित हाकर घंटी, भेरी आदि बजने लगे जिससे र्वर्ग के देवों को ज्ञात हुआ कि भगवान् महावीर का जन्म भारतवर्ष में हुआ है। इंद्र सहित देव-देवियाँ र्वर्ग से उत्तरकर कुण्डलपुर आते हैं। सौर्य इंद्र की इंद्राणी मायामयी बालक को माता के पास रखकर तीर्थकर बालक को इंद्र को सौंपती है। इंद्र ऐरावत हाथी के कंधे पर विराजमान कर सुमेरु पर्वत पर ले जाते हैं। वहाँ जिनबालक को पाण्डुकशिला पर विराजमान कर क्षीरसागर के जल से अभिषेक करते हैं। अभिषेक के अनन्तर इंद्र भगवान् महावीर के दाँये पैर के अंगूठे में जो सिंह का चिन्ह था उसके अनुसार उनका लांछन सिंह रखा और उनकी वीरता के अनुसार उनका नाम 'वीर' रखा।

तदनंतर सभी देवों से धिरे हुए इंद्र ने जिनबालक को वापिस लाकर माता की गोद में विराजमान किया। बड़े उत्साह के साथ आनंद नामक नाटक किया। माता-पिता को विभिन्न प्रकार के आभूषण पहिनाये, उत्सव मनाया और अंत में वर्द्धमान स्वामी को नमस्कार कर सभी देवों के साथ अपने स्थान पर चला गया।

**समय निर्धारण-** 23वें तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ भगवान् के मोक्ष जाने के 250 वर्ष बाद भगवान् महावीर स्वामी का अवतरण हुआ। वह दिन ईसा पू. 599 या विक्रम पूर्व 452 था। भगवान् महावीर जब अवतरित हुए तब देश-विदेश में एक नैतिक, आध्यात्मिक क्रांति का माहौल था। महावीर के समकालीन और 'भा देश-विदेश के अनेक विचारक, संत, दार्शनिक हुए थे। उनके समकाल में

भारत में महात्मा बुद्ध, यूनान में पाइथागोरस, फिलीस्तीन में मूसा, ईरान में जरथुरनु, चीन में लाओत्से, एवं कन्प्यूशियम आदि हुए थे।

भगवान् महावीर की पूर्ण आयु 72 वर्ष की थी। जिनमें से कुमारकाल 30 वर्ष, साधनाकाल 12 वर्ष एवं केवलज्ञान, धर्म प्रचार-प्रसार का काल 30 वर्ष था। वे 7 हाथ ऊँचे थे। 1008 लक्षणों से युक्त थे। जन्म के दस अतिशयों से युक्त थे।

### भगवान् महावीर के जन्म के 10 अतिशय

1. स्वेद रहितता
2. निर्मल शरीर
3. दूध के समान ध्वल रुधिर
4. आदि का वज्रवृष्टभनाराच संहनन
5. समचतुरस्त्र रूप शरीर संस्थान
6. अनुपम रूप
7. नृप चंपक की उत्तम गंध के समान गंध का धारण करना।
8. 1008 उत्तम लक्षणों को धारण करना
9. अनन्त बल वीर्य
10. हित-मित एवं मधुर भाषण।  
(विशेष जिज्ञासु मेरे द्वारा रचित ‘क्रांति के अग्रदूत’ नामक कृति का अवलोकन करें।)

### सन्मति उपाधि से अलंकृत वर्द्धमान स्वामी

भगवान् महावीर गर्भ से ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान से युक्त थे। गर्भ में रहते हुए भी वे माता-पिता के अभिप्राय से लेकर अन्य-अन्य योग्य विषयों को भी जान लेते थे। एकबार संजय, विजय दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों को किसी पदार्थ में संदेह उत्पन्न हुआ था; उनका संदेह अन्यत्र समाधान नहीं हुआ था; परन्तु भगवान् के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आये और भगवान् के दर्शन मात्र से ही उनका संदेह दूर हो गया। इसीलिए उन्होंने बड़ी भक्ति से कहा कि यह बालक सन्मति तीर्थकर होने वाला है अर्थात् उन्होंने उनका नाम ‘सन्मति’ रखा।

एकबार कुछ बालक महावीर भगवान् के साथ खेलने के लिए, उन्हें ढूँढ़ने के लिए उनके महल में गये। नीचे उनकी माता प्रियकारिणी से भेंट हुई। माता से पूछने पर माता ने कहा— महावीर ऊपर की मंजिल में है। जब बच्चे ऊपरी मंजिल पर जाते हैं तब पिता सिन्धार्थ से भेंट होती है उन्हें पूछने पर उन्होंने कहा— महावीर नीचे की मंजिल में है। वे बालक ढूँढ़ते-ढूँढ़ते महावीर को चौथी मंजिल में पाते हैं। उन्हें देखते ही बालक कहने लगे— आपके माता-पिता झूठे हैं, वे झूठ बोलते हैं क्योंकि आपके माता-पिता के अनुसार न तो आप ऊपर हैं न नीचे,

आपतो बीच की मंजिल में हो। तब वर्द्धमान बोलते हैं— मेरे माता-पिता दोनों सच्चे हैं और सत्य बोलते हैं। तब बच्चे प्रमाद से कहते हैं— माता-पिता के समान तुम भी झूठे हो और झूठ बोलते हो। तब वर्द्धमान बोलते हैं कि नहीं मैं चौथी मंजिल में हूँ एं मेरी माता प्रथम मंजिल में है इसीलिए माँ की अपेक्षा मैं ऊपरी मंजिल में हूँ और मेरे पिता (7वीं मंजिल) पर हैं तथा मैं चौथी मंजिल में हूँ इसीलिए पिती की अपेक्षा मैं नीचे हूँ। महावीर के उत्तर को सुनकर सब बच्चे स्तब्ध रह गये और उनकी बुद्धि की प्रशंसा करने लगे।

एक किम्बदन्ती है कि एक बार कुछ बच्चे मिलकर कौआ के बारे में विचार-विमर्श कर रहे थे। एक कहरहा था— कौआ काला है तब भगवान् महावीर बोले— कौआ केवल काला ही नहीं है; कौआ सफेद भी है, लाल भी है और भी अनेक वर्णों से युक्त है। तब बच्चे भगवान् महावीर की हँसी उड़ाते हैं और कहते हैं कि सभी जानते हैं कि कौआ काला है और तुम बताते हो कि कौआ अनेक वर्णों वाला है। तब भगवान् महावीर कहते हैं कि कौआ पंख की अपेक्षा काला है, हड्डी की अपेक्षा सफेद है, रुधिर की अपेक्षा लाल है। भगवान् महावीर के ऐसे गंभीर उत्तर को सुनकर सभी बच्चे आश्चर्यचकित हो जाते हैं एवं प्रसन्न होते हैं।

इन घटनाओं से वर्द्धमान की बुद्धिमत्ता, विचारशीलता, व्यापकता का परिचय मिलता है। यही गुण आगे जाकर विस्तृत होकर ‘अनेकान्त स्याद्वाद’ रूप में प्रस्फुटित होता है। इसीप्रकार भगवान् महावीर बाल्यकाल से सत्यग्राही, असंकीर्ण, उदारवादी थे। यही अनाग्रही गुण ही भगवान् महावीर के सर्वश्रेष्ठ गुण हैं।

**वर्द्धमान का महावीर अलंकरण—** एक दिन इंद्र की सभा में यह चर्चा चल रही थी कि इस समय सबसे अधिक शूरवीर वर्द्धमान स्वामी हैं। यह सुनकर एक संगम नामक देव उनकी परीक्षा करने के लिए आया। आकर उस देव ने देखा कि तेजस्वी बालक वर्द्धमान बाल्यावस्था से प्रेरित हो बालकों जैसे केश धारण करने वाले तथा समान अवस्था के धारक अनेकों राजकुमारों के साथ बगीचे में एक वृक्ष पर चढ़कर क्रीड़ा करने में तत्पर हैं। यह देख संगम नामका देव उन्हें डराने के लिए एक विशाल, भयंकर सर्प का वेश धारण कर उस वृक्ष की जड़ से स्कन्ध तक लिपट गया। सब बालक उस भयंकर सर्प को देखकर भय से काँप उठे और शीघ्र ही डालियों से कूदकर जिस-तिस तरह भाग खड़े हुए। वह मायामयी सर्प 100 जिक्काओं से अत्यन्त भयंकर दिख रहा था। एवं भयंकर फुफार कर रहा

था; किन्तु धीर-वीर- साहसी बालक वर्द्धमान उस सर्प पर चढ़कर इस प्रकार क्रीड़ा करने लगे कि जिस प्रकार माता की गोद में क्रीड़ा कर रहे हो। इससे वह देव स्व-स्वरूप में आकर वर्द्धमान की स्तुति कर 'महावीर' यह सार्थक नाम रखा। कल्पसूत्र में भी उपरोक्त वर्णन कुछ विस्तार से एवं रोचक रूप से पाया जाता है।

हे देवानुप्रियो! जब यह पुत्र गर्भ में आया तब (उस समय) हमारे मन में इस प्रकार का विचार चिंतन यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि जब से हमारा यह पुत्र गर्भ में आया तब से लेकर हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य की दृष्टि से व प्रीति और सत्कार की दृष्टि से हमारी अभिवृद्धि होने लगी है, सामंत राजा लोग भी हमारे वश में हुए हैं, इस कारण जब हमारा पुत्र जन्म लेगा तब हम उसके अनुरूप उसके गुणों का अनुसरण करने वाला, गुण निष्पन्न और यथार्थनाम 'वर्द्धमान' रखेंगे। तो अब इस कुमार का नाम 'वर्धमान' हो अर्थात् यह कुमार वर्द्धमान के नाम से प्रसिद्ध हो (ऐसा हमारा विचार है।)

श्रमण भगवान् महावीर काश्यप गोत्र के थे। उसके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं— उनके माता-पिता ने उनका प्रथम नाम 'वर्धमान' रखा। स्वभाविक स्मरण शक्ति के कारण (सहज सद्बुद्धि के कारण भी) उनका द्वितीय नाम श्रमण हुआ अर्थात् सहज शारीरिक एवं बौद्धिक सूर्ति व शक्ति से उन्होंने तप आदि आध्यात्मिक साधना के मार्ग में कठिन परिश्रम किया एतदर्थे वे श्रमण कहलाये। किसी भी प्रकार का भय, (देव, दानव, मानव और तर्याच संबंधी) उत्पन्न होने पर भी अचल रहनेवाले, अपने संकल्प से तनिक मात्र भी विचलित नहीं होने वाले निष्कम्प, किसी भी प्रकार के परीषह, क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्ण आदि के संकट आए या उपसर्ग उपस्थित हों, तथापि चलित नहीं होते। उन परीषहों और उपसर्गों को शात भाव से सहन करने में समर्थ भिक्षु प्रतिमाओं का पालन करनेवाले, धीमान् शोक और हर्ष में समभावी सद्गुणों के आगार अतुलबली होने के कारण देवताओं ने उनका तृतीय नाम 'महावीर' रखा।

भगवान् महावीर का लालन-पालन उच्च एवं पवित्र संस्कारों के भव्य वातावरण में हुआ। उनके सभी लक्षण होनहार के थे। सुकुमार सुमन की तरह उनका बचपन नई अंगडाई ले रहा था। उनका इठलाता हुआ तन सुगठित, बलिष्ठ और स्वर्ण प्रभा- सा कांतिमान् था और मुखमंडल सूर्य सा तेजरिवतापूर्ण। उनका

हृदय मख्यमल सा कोमल और भावनाएँ समुद्र-सी विराट थीं। बालक होने पर भी वे वीर, साहसी और धैर्यशील थे।

शुक्त पक्ष के चंद्र की तरह वे बढ़ रहे थे। उनके मन में सहज शौर्य और पराक्रम की लहरें उठ रही थीं। एक बार वे अपने हमजोली संगी साथियों के साथ गृहोद्यान (प्रमदवन) में क्रीड़ा कर रहे ते। इस क्रीड़ा में सभी बालक किसी एक वृक्ष को लक्ष्य करके दौड़ते, जो बालक सबसे पहले वृक्ष पर चढ़कर नीचे उतर आता वह जीत जाता। विजयी बालक पराजित बच्चों के कंधों पर चढ़कर उस स्थान पर जाता जहाँ से दौड़ शुरू की थी। इसे सुंकली या आमल की क्रीड़ा कहा जाता था। उस समय देवराज देवेंद्र ने बालक वर्धमान के वीरत्व एवं पराक्रम की प्रशंसा की। एक अभिमानी देव शक्र की प्रशंसा की चुनौति देता हुआ उनके साहस की परीक्षा लेने के लिये भयंकर सर्प का रूप धारण कर उस वृक्ष से लिपट गया। अन्य सभी बालक फुंकार करते हुए नागराज को निहार कर भयभीत होकर वहाँ से भाग गये, पर किशोर वर्धमान ने बिना डरे और बिना झिझके उस सर्प को पकड़कर एक तरफ रख दिया।

बालक पुनः एकत्र हुए और खेल फिर प्रारंभ हुआ, इस बार वे तिंदुषक क्रीड़ा खेलने लगे। जिसमें किसी एक वृक्ष को अनुलक्ष कर सभी बालक दौड़ते। जो सर्वप्रथम वृक्ष को छू लेता, वह विजयी होता और जो पराजित होता उसकी पीठ पर विजयी बालक आरूढ़ होता। इस बार वह देव भी किशोर का रूप धारण कर उस क्रीडादल में सम्मिलित हो गया। खेल में वर्धमान के साथ हार जाने पर नियमानुसार उसे वर्धमान को पीठ पर बैठा कर दोड़ना पड़ा। किशोर प धारी देव दौड़ता-दौड़ता बहुत आगे निकल गया। और उसने अपना विकराल रूप बना वर्धमान को ड़राना चाहा। देखते ही देखते किशोर ने लंबा ताड़ सा भयंकर पिशाच रूप बना लिया। किंतु वर्धमान उसकी यह करतूत देखकर के भी नहीं घबराये। वे अविचलित रहे और साहस के साथ उसकी पीठ पर ऐसा मुष्ठि प्रहर किया कि देवता वेदना से चीख उठा। शीघ्र ही विकराल पिशाच का रूप सिमटकर नहा सा किशोर बन गया। उसका गर्व खण्डित हो गया। उसने बालक वर्धमान के पराक्रम का लोहा माना और बंदन करते हुए कहा— 'प्रभो! आप में इंद्र के द्वारा प्रशंसित व वर्णित शक्ति से भी अधिक शक्ति है, आप 'वीर' ही नहीं अपितु 'महावीर' हैं। मैं परीक्षक बनकर आया था, मगर प्रशंसक बनकर जा रहा हूँ।'

### 3. तप कल्याणक (परिनिष्क्रमणकल्याण)

वर्द्धमान स्वामी के गुणों के साथ-साथ आयु की वृद्धि होते-होते जब वे 30 वर्ष के हुए तब उन्हें मति ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से आत्मज्ञान प्रगट हो गया और पूर्वभव का स्मरण हो उठा। पूर्वभव के स्मरण से वे संसार, शरीर, भोग, आसक्ति से विरक्त होकर आत्मकल्याण के लिए विचार करने लगे। स्वर्ग से लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की तथा वैराग्य की अनुमोदना की। अननंतर स्वर्ग से देव भी निष्क्रमण कल्याणक मनाने के लिए आये। भगवान् को चंद्रप्रभा नामकी पालकी पर विराजमान किया। उस पालकी को सबसे पहले मनुष्यों (भूमिगोचरी राजाओं) ने फिर विद्याधरों ने, फिर देवों ने उठाया। भगवान् को भावना भक्ति से पालकी में लेकर सण्ड (नाथ)नामक में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर भगवान् पालकी से उत्तरकर रत्नमयी बड़ी शिला पर उत्तर दिशा की ओर मुख करके तेला का (तृतीय भक्त) अर्थाते एक उपवाश का नियम लेकर विराजमान हो गये। ‘नमः सिद्धेभ्य’ स्मरण कर, पंचमुष्ठि से केशलोंच कर, समस्त परिग्रहों का त्यागकर, परम निग्रंथ यथाजात रूप को धारण किया। यह दिवस मार्ग शीर्ष शुक्ला दशमी का दिन था तथा निर्मल चन्द्रमा हस्त और उत्तरा फाल्गुनी के मध्य में था; तब संध्या के समय अतिशय धीर-वीर भगवान् महावीर ने सामायिक चारित्ररूपी संयम को धारण किया। उस समय भावों की पवित्रता के कारण उन्हें मनः पर्यय ज्ञान प्रगट हुआ तथा अनेक ऋद्धियाँ प्रगट हो गयीं।

#### प्रथम पारणा (आहार ग्रहण)

अनंतर पारणा के दिन श्रमण महावीर स्वामी वन से निकले और विद्याधरों के नगर के समान सुशोभित ‘कूलग्राम’ नामक नगर में पहुँचे। वहाँ कूल नामक राजा ने अत्यन्त भक्ति भाव से युक्त हो उनके दर्शन किये, तीन प्रतिक्षणायें दी, चरणों में सिर झुकाकर नमस्कार किया, फिर उच्चासन पर विराजमान किया, अर्धादि से उनकी पूजा की तथा मन, वचन, काया की शुद्धिपूर्वक शुद्ध परमान्न (खीर) समर्पण किया। इस दान के प्रभाव से (1) रलवर्षा (2) गंधोदक की वर्षा (3) पुष्पवर्षा (4) जय-जयकार (5) देव दुन्दभि बजना आदि पंचाश्चर्य हुए।

#### भगवान् महावीर के साधनाकाल में विभिन्न घोर उपरान्त

##### (महति महावीर सम्मान से (सम्मानित)

एक दिन अतिशय धीर-वीर भगवान् महावीर ‘अतिमुक्तक’ शमशान में प्रतिमायोग से विराजमान थे। उन्हें देखकर महादेव रुद्र ने अपनी दुष्टता से उनकी परीक्षा करनी चाही। उसने रात्रि के समय बड़े-2 बेतालों का रूप धारण कर उपसर्ग किया। वे वेताल मानो तीक्ष्ण चमड़ा छीलकर एक दूसरे के उदर में प्रवेश करना चाहते थे। खुले हुए मुँह से अत्यन्त भयंकर थे, विभिन्न भयंकर कठोर शब्द कर रहे थे, अट्टहास करके नाच रहे थे, विकराल दृष्टि करके डरा रहे थे। इसके सिवाय उसने हाथी, सिंह, सर्प, अग्नि, वायु के साथ भीलों की सेना बनाकर उनके ऊपर घोर उपसर्ग किया। महान् पापकर्म से उस दुष्ट ने विद्या के प्रभाव से अनेक भयंकर उपसर्गों से भगवान् को समाधि से विचलित करना चाहा; परन्तु जिसप्रकार तीव्र वायु भी सुमेरु को चलायमान नहीं कर सकती है उसी प्रकार वह भी भगवान् को चलायमान नहीं कर सका। इससे प्रभावित होकर उसने भगवान् के ‘महति’ और ‘महावीर’ ऐसे दो नाम रखकर अनेक प्रकार से स्तुति की तथा मात्सर्य भाव छोड़कर भगवान् के सामने नृत्य, भक्ति करता हुआ चला गया।

भगवान् महावीर के ऊपर जो भयंकर उपसर्ग हुए उसका रोमहर्षक वर्णन कल्पसूत्र में निम्न प्रकार पाया जाता है-

**क्षमामूर्ति महावीर-** क्षमामूर्ति महावीर उस दिन एक मुहूर्त दिन अवशेष रहने पर कुर्मार्ग्राम में जिसका नाम वर्तमान में ‘कामनछपरा’ है वहाँ पधारे। गाँव के बाहर वृक्ष के नीचे नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि केन्द्रित कर स्थाणु की तरह ध्यान में रिथत हो गये। उस समय एक ग्वाला वहाँ आया। वह भगवान् के पास बैलों को छोड़कर गायों को दोहने गाँव में चला गया। क्षुधा और पिपासा से पीड़ित वे बैल चरते-2 अटवी में दूर चले गये। कुछ समय पश्चात् वह ग्वाला लौटा, पर बैलों को वहाँ नहीं देखा, तब उसने महावीर से पूछा— बतलाओ! मेरे बैल कहाँ है? महावीर ध्यानस्थ थे। कुछ उत्तर नहीं पाकर वह आगे बढ़ गया और रातभर जंगल में बैलों की खोजबीन करता रहा प्रातः निराश होकर पुनः लौटा और इधर वे बैल अटवी में से फिरते-2 महावीर के पास आकर बैठ गये। ग्वाले ने बैलों को महावीर के पास बैठा देखा तो वह आपे से बाहर हो गया। वह रातभर घूमने से थका तो था ही, महावीर को उसने चोर समझकर मन का सारा क्रोध

और कुङ्गन उन पर निकालने के लिए बैलों की बाँधने की रसी से महावीर को मारने दौड़ा।

उस समय सभा में बैठे हुए देवराज इंद्र ने विचार किया कि देखें इस समय भगवान् महावीर क्या कर रहे हैं? अवधिज्ञान से ग्वाले को इसप्रकार मारने को सन्नध देखकर इंद्र ने उसे वही स्तम्भित कर दिया और साक्षात् प्रकट होकर कहा—“अरे दुष्ट! क्या कर रहा है? तुझे पता नहीं ये सिद्धार्थनन्दन वर्द्धमान हैं।” ग्वाला हक्का बक्का रह गया, फिर क्षमा माँगी और भगवान् को तथा इन्द्र को वंदन करके चला गया।

(कल्पसूत्र पृ. 165)

**शूलिपाणि यक्ष का उपद्रव :** भगवान् महावीर आश्रम से विहार कर अरिथ ग्राम की ओर चल पड़े। संध्या की गोधूलि बेला में वहाँ पहुँचे। गाँव में एकान्त स्थान की याचना करते हुए नगर के बाहर यक्षायतन में ठहरने की आज्ञा ली, तब गाँव वालों ने कहा— भगवान्! यहाँ एक यक्ष रहता है, उसका स्वभाव बड़ा ही क्रूर है, वह रात्रि को किसी को रहने नहीं देता है। अतः आप यहाँ न ठहरकर अन्य स्थान में ठहरें। पर भगवान् ने यक्ष को प्रतिबोध देने हेतु उसी स्थान की पुनः याचना की, ग्राम निवासियों ने आज्ञा प्रदान की। भगवान् एक कोने में ध्यानस्थ हो गये। संध्या अर्चना हेतु इंद्रशर्मा नामका पुजारी आया, अर्चना के बाद सभी यात्रियों को यक्षायतन से बाहर निकाला। भगवान् से भी उसने कहा— परन्तु वे मौन थे, ध्यानस्थ थे, इंद्रशर्मा ने पुनः यक्ष के भयंकर उत्पात का रोमांचक वर्णन किया, फिर भी भगवान् विचलित नहीं हुए और वे वही स्थित रहे, इंद्रशर्मा चला गया। संध्या की सुहावनी बेला समाप्त हुई। कुछ अंधकार होने पर शूलपाणि यक्ष प्रकट हुआ। भगवान् को वहाँ देखकर उसने कहा— मृत्यु को चाहने वाला यह गाँव निवासियों व देवार्चक द्वारा निषेध करने पर भी न माना। ज्ञात होता है इसे अभी तक मेरे प्रबल पराक्रम का परिचय नहीं है। पराक्रम का परिचय देने के लिए उसने भयंकर अट्टहास किया। जिससे सारा वन प्रांत काँप उठा। पर महावीर तो मेरु की तरह अडोल व अकम्प खड़े रहे। उसने हाथी का रूप बनाया, दन्त प्रहार करने और पाँव से रौंदने पर भी वे अचल रहे। यक्ष ने पिशाच का विकराल रूप बनाकर तीक्ष्ण नाखून व दाँतों से महावीर के अंगों को नौचा तो भी उनके मन में रोष नहीं आया। मुँह से ‘सी’ तक नहीं निकाला। उसने सर्प बनकर जोर से काटा तो भी महावीर का ध्यान भंग नहीं हुआ। अन्त में उसने अपनी दिव्य देव शक्ति से उनके आँख, नाक, कान, सिर, दाँत, नख और पीठ में भयंकर

वेदना उत्पन्न की। इस प्रकार की वेदना से भी साधारण प्राणी छटपटाता हुआ शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पर महावीर तो उन सभी वेदनाओं को शांत भाव से सहन कर गये। राक्षसी बल महावीर के आत्मबल से परास्त हो गया। उसका धैर्य ध्वस्त हो गया। प्रभु की अद्भुत तितिक्षा देखकर वह चकित व स्तम्भित सा रह गया, अंत में हारकर महावीर के चरणों में गिर पड़ा। भगवन्! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मैंने आपको पहिचाना नहीं। इसप्रकार विनम्र होकर वह प्रभु की स्तुति करने लग गया।

उत्पल नामका एक निमित्तज्ञ अस्थिक ग्राम में रहता था। पहले वह भगवान् पाश्वर्वनाथ की परम्परा में श्रमण बना था। पर कुछ कारणों से श्रमणत्व से भ्रष्ट हो गया था। जब उसे भगवान् महावीर के यक्षायतन में ठहरने के समाचार विदित हुए तो अनिष्ट की कल्पना से उसका हृदय धड़क उठा। प्रातः इन्द्रशर्मा पुजारी के साथ वह यक्षायतन पहुँचा, पर अपनी कल्पना से विपरीत यक्ष के द्वारा भगवान् महावीर को अर्चित देख उसके आश्चर्य का आर-पार नहीं रहा। वे दोनों ही प्रभु के चरणों में नमस्कार करने लगे— प्रभो! आपका आत्मतेज अपूर्व है। आपने यक्ष प्रकोप को शांत कर दिया है।

(कल्पसूत्र पृ. 159)

**चण्ड कौशिक सर्प को प्रतिबोध तथा सर्प का अहिंसक होना**

दक्षिण वाचाल से उत्तर वाचाल जाने के दो मार्ग थे। एक कनखल आश्रम से होकर और दूसरा बाहर से। आश्रम का मार्ग सीधा होने पर भी निर्जन, भयानक व विकट संकट से युक्त था। बाहर का पथ केशराशि की तरह कुटिल व दीर्घ था, पर सुगम और विपदा से मुक्त था, आत्मा की मस्ती में गजराज की तरह झूमते हुए महावीर सीधे पथ पर ही अपने कदम बढ़ाते हुए चले जा रहे थे।

वालों ने टोकते हुए कहा— ‘देवार्य! इधर न पधारिये! इस पथ में एक भयंकर दृष्टिविष सर्प रहता है जिसकी विषेली फुंकार से मानव तो क्या, पशु-पक्षी गण भी सदा के लिए आँख मूद लेते हैं। वह इतना भयंकर है कि जिधर देखता है जहर बरसने लगता है, आग की लपटें उठने लगती हैं। उसके कारण आस-पास के वृक्ष भी सूख गये हैं। चारों ओर सुनसान हो गया हैं। अतः श्रेयस्कर यही है कि आप बाहर के मार्ग से पधारें।’

पर महावीर मौन थे। वे अपने लक्ष्य की ओर बढ़े जा रहे ते। पथ से विचलित होना उन्होंने सीखा ही न था।

ग्वालों ने पुनर्वार रोकने का प्रयास किया, किन्तु वे सफल न हो सके। भगवान् आगे बढ़ गये। चण्डकौशिक के स्थान पर जाकर ध्यान लगाकर खड़े हो गये। उनके मन में प्रेम का पर्योधि उद्देवलित हो रहा था। भयंकर फुंकार करता हुआ नागराज बाहर निकला। बांबी के पास भगवान् को देखकर वह सहम गया। उसने क्षुब्ध होकर फुंकार मारी। किन्तु भगवान् पर कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने अनेक बार दंश प्रहार किये, तथापि भगवान् को शान्त-प्रशान्त देखकर वह स्तब्ध हो गया। दंश के स्थान से लाल रक्त के परिवर्तन में दूध के समान सफेद रक्त निकला।

आश्चर्य में निमग्न विषधर महावीर की मुख-मुद्रा को एक टक देख रहा था उसमें कहीं पर भी रोष और क्रोध की रेखाएँ नहीं थी, अपितु मधुर मुस्कान खिल रही थी। अन्त में अमृत ने विष को परास्त कर दिया।

महावीर ने नागराज को शान्त देखकर ध्यान से निवृत्त होकर कहा—‘चण्डकौशिक! शान्त होओ! उवसम भो चण्डकोसियाए! जागृत होओ! अज्ञानान्धकार में कहाँ भटक रहे हो, पूर्व जन्म के दुष्कर्मों के कारण तुम्हें सर्प बनना पड़ा है, यदि अब भी तुम न संभले तो भविष्य तिमिराछ्छन है।’

भगवान के सुधा-सिक्त वचनों ने नागराज के अन्तर्मानिस में विचार ज्योति प्रज्ज्वलित कर दी। चिन्तन करते-करते पूर्व जन्म का चल-चित्र नेत्रों के सामने नाचने लगा। मैं पूर्व जन्म में श्रमण था, असावधानी से भिक्षा के लिए जाते समय पैर के नीचे मण्डुकी आ गयी। शिष्य के द्वारा प्रेरणा देने पर भी मैंने आलोचना नहीं की और अस्मिता के वश शिष्य को मारने दौड़ा। अंधकार में स्तम्भ से शिर टकराया, आयुः पूर्ण कर ज्योतिष्क देव बना और वहाँ से प्रस्तुत आश्रम में कौशिक तापस बना। मेरी क्रूर प्रकृति से सभी काँपते थे। एक बार श्वेताम्बी के राजकुमारों ने आश्रम के फल-फूल तोड़े। मैं तीक्ष्ण कुल्हाड़ी से उन्हें मारने दौड़ा पर पाँच फिसल गया और उस तीक्ष्ण कुल्हाड़ी से मैं स्वयं कट गया, वहाँ से आयु पूर्ण कर सर्प बना। इस प्रकार पूर्व-पापों की संस्मृति से हृदय विकल व विह्वल हो उठा। आत्म-भान होते ही वह अपनी की हुई भूलों पर पश्चात्ताप करने लगा। भगवान् के चरणारविन्दों में आकर झुक गया। उसका प्रस्तर हृदय पिघल गया। भगवान के पावन प्रवचन से वह पवित्र हो गया। उसने दृढ़ प्रतिज्ञा ग्रहण की कि ‘आज से मैं किसी को न सताऊँगा।’ उसने आजीवन अनशन कर लिया।

भगवान को वहाँ खड़ा देखकर लोग आने लगे। नागराज में यह अद्भूत परिवर्तन देखकर जनता चकित थी। जिसे मारने के लिए एकदिन जनता उम्रत थी, आज वही उसकी अर्चना कर आनन्द विभोर हो रही थी।

वहाँ से भगवान् उत्तर वाचाल पधारें। ‘नागसेन’ के यहाँ पंद्रह दिन के उपवास का पारणा कर श्वेताम्बी पधारे। सम्राट प्रदेशी ने भाव-भीना स्वागत किया, वहाँ से सुरभिपुर पधार रहे थे कि मार्ग में सम्राट प्रदेशी के पास जाते हुए पाँच नैयिक राजाओं ने भगवान् की वन्दना-नन्दना की। (कल्पसूत्र पृ. 162)

### धर्मचक्रवर्ती भगवान् महावीर

भगवान् गंगा के किनारे स्थित थूणाक सन्निवेश के बाहर ध्यानमुद्रा लेकर खड़े हो गये। भगवान् के चरण चिन्हों को देखकर पुष्य नामक एक निमित्तज्ञ के मानस में विचार उठा कि ये चरण चिन्ह तो अवश्य ही किसी चक्रवर्ती सम्राट के हैं जो अभी किसी विपदा से ग्रसित होकर अकेला धूम रहा है। मैं जाकर उसकी सेवा करूँ। चक्रवर्ती सम्राट बनने पर वह प्रसन्न होकर मुझे निहाल कर देगा। वह चरण चिन्हों को देखता हुआ भगवान् के पास पहुँचा, किन्तु भिक्षुक के वेश में भगवान् को देखकर उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा। वह यह नहीं समझ सका कि चक्रवर्ती सम्राट के संपूर्ण लक्षण शरीर पर विद्यमान होते हुए भी यह भिक्षुक कैसे? उसे ज्योतिष शास्त्र को गंगा में बहाने के लिए तैयार हो ही रहा था कि देवेन्द्र ने प्रकट होकर कहा—पुष्य! यह कोई साधारण भिक्षुक नहीं है। धर्मचक्रवर्ती है। चक्रवर्ती सम्राट से भी बढ़कर है। देवों और इन्द्रों के द्वारा भी वन्दनीय और अर्चनीय है। पुष्य भगवान् को वन्दना करके चल दिया।

(कल्पसूत्र पृ. 164)

### ग्वाला द्वारा भ. महावीर के कानों में शलाका ठोकना

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान् जंभिय ग्राम ‘मिंदिय ग्राम’ होते हुए ‘धम्माणि’ पधारे और गाँव के बाहर ध्यान मुद्रा में अवस्थित हुए। सान्ध्य-बेला में एक ग्वाला बैलों को लेकर वहाँ आया। बैलों को महावीर के पास रखकर वह गाँव में कार्य हेतु गया। बैल चरते-चरते आसपास की ज़ाड़ियों में छिप गए। ग्वाला लौटकर आया, बैल दिखाई नहीं दिए तो महावीर से पूछा, भगवान मौन थे। कुछ होकर उसने भगवान् महावीर के कानों में काँसे की तीक्ष्ण शलाकाएँ डाल दीं और उन शलाकाओं को कोई न देख ले अतः उनका बाह्य भाग छेद दिया। भगवान्

को अत्यधिक वेदना हो रही थी तथापि वे शान्त एवं प्रसन्न थे। उनके अन्तर्मानस में किञ्चित् भी खिलता नहीं थी। वे चिन्तन कर रहे थे कि त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में हँसते हुए मैंने जो शव्या-पालक के कानों में गर्म शीशा उड़ेलवाया था, उसी कर्म का यह प्रतिफल मुझे प्राप्त हुआ है।

वहाँ से विहार कर भगवान् मध्यम पावा पधारे। भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए सिद्धार्थ श्रेष्ठी के घर पर पहुँचे। उस समय सिद्धार्थ श्रेष्ठी वैद्य-प्रवर खरक से वार्तालाप कर रहा था। प्रतिभा सम्पन्न वैद्य ने सर्व लक्षण सम्पन्न महावीर के सुन्दर व सुडोल तन को देखकर कहा कि 'इनके शरीर में शत्य है। उसे निकालना हमारा कर्तव्य है।' वैद्य और श्रेष्ठी के द्वारा अभ्यर्थना करने पर भी भगवान् वहाँ रुके नहीं। वे वहाँ से चल दिये और गाँव के बाहर आकर ध्यानस्थ हो गए।

खरक वैद्य और श्रेष्ठी औषधि आदि सामग्री लेकर भगवान् को देखते-देखते उद्यान में गये। वहाँ भगवान् ध्यानस्थ थे। उन्होंने कानों में से शलाकाएँ निकालने के पूर्व भगवान् के शरीर का तैल से मर्दन किया और सन्डासी से पकड़कर शलाकाएँ निकालीं। कानों से रक्त की धाराएँ प्रवाहित हो गईं। कहा जाता है कि उस अतीव भयंकर वेदना से भगवान् के मुँह से एक चीत्कार निकल पड़ी जिससे सारा उद्यान व देवकुल संभ्रमित हो गया। वैद्य ने शीघ्र ही संरोहण औषधि से रक्त को बन्द कर दिया और घाव पर लगा दी। प्रभु को नमन व क्षमायाचना कर वैद्य और श्रेष्ठी अपने स्थान पर चले आये।

इस प्रकार भगवान् को साधना काल में अनेक रोमहर्षक कष्टों का सामना करना पड़ा। ताड़ना, तर्जना, अपमान और उत्पीड़न ने प्रायः पद-पद पर प्रभु की कठोर परीक्षा ली। उन सभी उपसर्गों को तीन भागों में विभक्त करें तो जघन्य उपसर्गों में कूटपूतना का उपसर्ग भयानक था। मध्यम उपसर्गों में संगम का कालचक्र उपसर्ग विशिष्ट था। और उत्कृष्ट उपसर्गों में कर्णों से शलाकाएँ निकालना अत्यन्त उल्कृष्ट था। आश्चर्य की बात है कि भगवान् का पहला उपसर्ग भी कर्मार ग्राम में एक ग्वाले से प्रारम्भ हुआ था, यह अन्तिम उपसर्ग भी एक ग्वाले के द्वारा उपस्थित किया गया।

(कल्पसूत्र)

### संगम के उपसर्ग

भगवान् ने वहाँ से दृढ़भूमि की ओर प्रस्थान किया। पेढ़ाला गाँव के सन्निकट पेढ़ाला उद्यान में अष्टमतप कर और एक अचित पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित कर

ध्यानस्थ हो गए! भगवान् की इस अपूर्व एकाग्रता, कष्ट सहिष्णुता और अथक धैर्य को देखकर देवराज इन्द्र ने भरी सभा में गद्-गद् स्वर में प्रभु को वन्दन करते हुए कहा— प्रभो! आपका धैर्य, आपका साहस, आपका ध्यान महान है। मानव तो क्या शक्तिशाली देव और दैत्य भी आपको इस साधना से विचलित नहीं कर सकते। शक्र की भावना का सारी सभा ने तुमुल जयघोष के साथ अनुमोदन किया। किन्तु संगमदेव के अन्तर्मानस में यह बात न पैठ सकी। उसे अपनी दिव्य देवी शक्ति पर बड़ा गर्व था। उसने विरोध किया, और भगवान् की साधना मार्ग से चलित करने की दृष्टि से देवेन्द्र का वचन लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ भगवान् ध्यानमग्न थे। उसने आते ही उपसर्गों का जाल बिछा दिया। एक के पश्चात् एक भयंकर विपत्तियों का वात्याचक्र चलाया। जितना भी वह कष्ट दे सकता था दिया। तन के कण-कण में पीड़न उत्पन्न की। पर भगवान् जब प्रतिकूल उपसर्गों से तनिक भी प्रकाम्पित नहीं हुए तब अनुकूल उपसर्ग प्रारम्भ किए। प्रलोभन के और विषय वासना के मोहक दृष्टि उपस्थित किये। गगन-मण्डल से तरुण सुन्दरियाँ उतरीं, हाव-भाव और कटाक्ष करती हुई प्रभु से काम-याचना करने लगीं। पर महावीर तो निष्प्रकंप थे, प्रस्तरमूर्ति की भाँति, उन पर कोई असर नहीं हुआ। वे सुमेरु की तरह ध्यान में अडिग रहे। एक रात भर में बीस भयंकर उपसर्ग देने पर भी उनका मुख कुन्दन -सा चमक रहा था। माने मध्याह्न का सूर्य हो। पौ फटी, अंधेरा छंट गया, धीरे-धीरे उषा की लाली चमक उठी, और सूर्य की तेजस्वी किरणें धरती पर उतरीं। महावीर ने ध्यान से निवृत्त हो आगे प्रयाण किया। यद्यपि महावीर की अदम्य-शक्ति से एक रात में ही संगम की समस्त आशाओं पर तुषारापात हो गया था। तथापि वह धीर प्रभु का पीछा नहीं छोड़कर खड़ा रहा, और 'बालुका' 'सुभोग' 'सुच्छेता' 'मलय' और हस्ती- शीर्ष आदि नगरों में जहाँ भी भगवान् पथारे वहाँ, अपनी काली करतूतों का परिचय देता रहा। जब भगवान् तोसलि गाँव के उद्यान में ध्यानस्थ थे तब वह संगम श्रमण की वेषभूषा पहनकर गाँव में गया और घरों में सेंध लगाने लगा। पकड़ा जाने पर बोला— 'मुझे क्यों पकड़ते हो? मैंने गुरु आज्ञा का पालन किया है। यदि तुम्हें पकड़ना ही है तो उद्यान में जो ध्यान किये मेरे गुरु खड़े हैं, उन्हें पकड़ो।' उसी क्षण लोग वहाँ आये और महावीर को पकड़ने लगे। रसियों से जकड़कर गाँव में ले जाने लगे कि महाभुतिल ऐन्द्रिजालिक ने भगवान् को पहचान लिया और

लोगों को डांटते हुए समझाया। लोग संगम के पीछे दौड़े तो उसका कहीं अतापता नहीं लगा।

जब भगवान् मोसालि ग्राम पथारे तब संगम ने वहाँ पर भी भगवान् पर तस्कर कृत्य का आरोप लगाया। भगवान् को पकड़कर राज्य परिषद में ले जाया गया, तब वहाँ सम्राट् सिन्धार्थ के स्नेही-साथी सुभांगध राष्ट्रीय (प्रान्त का अधिपति-वर्तमान कमिश्नर जैसा) बैठे थे। उन्होंने भगवान् का अभिवादन किया और बन्धन मुक्त करवाया। वहाँ से तोसलि के उद्यान में पथारकर पुनः ध्यान किया। संगम ने चोरी कर के भारी शत्रु महावीर के सन्निकट लाकर रखे। लोगों ने चोर समझकर महावीर को पकड़ा। परिचय पूछा गया, पर प्रश्न का उत्तर न मिलने से तोसलि क्षत्रिय ने छद्मवेशी श्रमण समझकर फाँसी की सजा दी। फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर गर्दन में फाँसी का फन्दा डाल दिया। और नीचे से तख्ते को हटाया। पर ज्यों ही तख्ता हटा कि फन्दा टूट गया। पुनः फंदा लगाया और पुनः टूट गया। इस प्रकार सात बार फंदा टूट जाने पर सभी चकित रह गये। क्षत्रिय को सूचना दी, उसने प्रभु को कोई महापुरुष समझकर मुक्त कर दिया। भगवान् वहाँ से सिन्धार्थपुर आये, संगम जो शिकारी कुत्ते की तरह महावीर के पीछे लगा हुआ था, वहाँ भी उसने महावीर पर चोरी का आरोप लगाकर पकड़वाया, पर कौशिक नामक घोड़े के व्यापारी ने भगवान् का परिचय देकर मुक्त करवाया।

भगवान् वहाँ से ब्रजगांव पथारे। उस दिन पर्व का पुनीत दिन होने से सब घरों में खीर बनी हुई थी। भगवान् भिक्षा बिना लिए ही लौट आए। छह मास तक अगणित कष्ट देने के पश्चात् भी महावीर साधना पथ से विचलित नहीं हुए तो संगम का धैर्य ध्वस्त हो गया। वह हताश और निराश हो गया। उसका मुख मलिन हो गया। वह हारा हुआ भगवान् के पास आकर बोला— ‘भगवन्! देवराज इन्द्र ने जो आपके सम्बन्ध में कहा वह पूर्ण सत्य है। मैं भग्न प्रतिज्ञ हूँ, आप सत्य प्रतिज्ञ हैं। अब आप प्रसन्नता से भिक्षा के लिए पथारिए। मैं किसी प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उपस्थित नहीं करूँगा। छह मास तक मैंने अनेक कष्ट दिये हैं। जिससे आप सुखपुरुक संयम साधना नहीं कर सके हैं। अब आनन्द के साथ साधना कीजिए, मैं जा रहा हूँ। अन्य देवों को भी मैं रोक दूँगा। वे आपको कोई कष्ट नहीं देंगे।’

संगम के कथन पर भगवान् ने कहा— ‘संगम! मैं किसी की प्रेरणा से प्रेरित

होकर या किसी के कथन को संकल्प में रखकर तप नहीं करता। मुझे किसी के आश्वासन वचन की अपेक्षा नहीं है।’ (कल्पसूत्रपृ. 177)

### लाढ़ प्रदेश में विभिन्न घोर यातनायें

गंभीर विचार-मंथन के पश्चात् भगवान महावीर ने कर्मों की विशेष निर्जरा हेतु लाढ़ प्रदेश की ओर प्रस्थान किया। यह प्रदेश उस युग में अनार्य माना जाता था। वहाँ विचरण करना अत्यंत दुष्कर था।

वहाँ रहने के लिए उन्हें अनुकूल आवास प्राप्त नहीं हुए। अनेक प्रकार के उपसर्ग सहन करने पड़े। रुखा-सूखा भोजन भी कठिनता से उपलब्ध होता था। कुत्ते भगवान् को दूर से देखकर ही काटने के लिए झपटते थे। वहाँ पर ऐसे बहुत कम व्यक्ति थे जो काटते और नौंचते हुए कुत्तों को हटाते, किंतु इसके विपरीत वे कुत्तों को छुछकार कर काटने के लिए उत्प्रेरित करते। पर भगवान् महावीर उन प्राणियों पर किसी भी प्रकार का दुर्भाव नहीं लाते। उन्हें अपने तन पर किसी प्रकार की ममत्व बुद्धि नहीं थी। आत्म विकास को हेतु समझ कर ग्राम संकटों को सहर्ष सहन करते हुए वे सदा प्रसन्न रहते।

जैसे संग्राम में गजराज शत्रुओं के तीखे प्रहारों की तनिक भी परवाह किये बिना आगे ही बढ़ता जाता है, उसी प्रकार भगवान महावीर भी लाढ़ प्रदेश में उपसर्गों की किंचित् परवाह किए बिना आगे बढ़ते रहे। वहाँ उन्हें ठहरने के लिए कभी दूर-दूर तक गाँव भी उपलब्ध नहीं होते, तो भयंकर अरण्य में ही रात्रिवास करते। जब वे किसी गाँव में जाते तो गाँव के सन्निकट पहुँचते ही गाँव के लोग बाहर निकलकर उन्हें मारने-पीटने लगते और अन्य गाँव जाने को कहते। वे अनार्य लोग भगवान् पर दण्ड, मुष्ठि, भाला, पथर व ढेलों से प्रहार करते और फिर प्रसन्न होकर चिल्लाते।

वहाँ के क्रूर मनुष्यों ने भगवान् के सुंदर शरीर को नौंच डाला, उन पर विविध प्रकार के प्रहार किये। भयंकर परीषह उनके लिए उपस्थित किए। उन पर धूल फैंकी। वे भगवान् को ऊपर उछाल-उछाल कर गेंद की तरह पटकते। आसन पर से धकेल देते, तथापि भगवान शरीर के ममत्व से रहित होकर बिना किसी प्रकार की इच्छा व आकंक्षा के संयम-साधना में स्थिर रहकर कष्टों को शांति से सहन करते।

जैसे कवच पहने हुए शूरवीर का शरीर युद्ध में अक्षत रहता है, वैसे ही अचेल

भगवान् महावीर ने अत्यंत कठोर कष्टों को सहते हुए भी अपने संयम को अक्षत रखा।

इस प्रकार समभाव पूर्वक भयंकर उपसर्गों को सहनकर भगवान् ने बहुत कर्मों की निर्जरा कर डाली। वे पुनः आर्य प्रदेश की ओर कदम बढ़ा रहे थे कि पूर्णकलश सीमा प्रांत पर दो तस्कर मिले। वे अनार्य प्रदेश में चोरी करने जा रहे थे। भगवान् को सामने से आते देख उन्होंने अपशुकन समझा। वे तीक्ष्ण शस्त्र लेकर भगवान् को मारने के लिए लपके। उस समय स्वयं इंद्र ने प्रकट होकर तस्करों का निवारण किया।

भगवान् आर्य प्रदेश के मलय देश में विहार करने लगे और उस वर्ष मलय की राजधानी भद्रिला नगरी में अपना पाँचवा चातुर्मास किया, चातुर्मासिक तप और विविध आसनों के साथ ध्यान साधना करते हुए वर्षावास व्यतीत किया।

वर्षावास पूर्ण होने पर भद्रिल नगरी के बाहर चातुर्मासिक तप का पारणा कर 'कदली समागम' 'जंबू सण्ड' होकर 'तंवाय त्रसन्निवेश' पधारे। उस समय पाश्वापत्य स्थविर नन्दिषेण वहाँ पर विराज रहे थे।

तबांय से 'कृपिय सन्निवेश' पधारे। वहाँ लोगों ने गुप्तचर समझकर भगवान को पकड़ लिया। अनेक यातनाएँ दीं और कारागृह में कैद कर लिया गया। 'विजया' और 'प्रगल्भा' नाम की परिव्रजिकाओं को परिज्ञात होने पर वे वहाँ पहुँची, और अधिकारियों को भगवान् का परिचय दिया। अधिकारियों ने अपनी अज्ञानता पर पश्चाताप करते हुए भगवान् को मुक्त कर दिया।

भगवान् ने वहाँ से वैशाली की ओर विहार किया। भगवान् क्रमशः विहार करते हुए वैशाली पधारे और लुहार के यंत्रालय (कम्मारशाला) में ध्यानस्थ स्थिर हुए। वह लुहार छह मास से अस्वस्थ था। भगवन् के आने के दूसरे ही दिन कुछ स्वस्थता अनुभव होने पर वह अपने यंत्र लेकर यंत्रालय में पहुँचा। वहाँ एकांत में भगवान् को ध्यान में देखकर उसने अमंगल रूप समझा और हथोड़ा लेकर महावीर पर प्रहार करने के लिए ज्यों ही वह उधर बढ़ा त्यों ही दिव्य देवशक्ति से सहसा वहीं स्तब्ध हो गया।

वैशाली से विहार करते भगवान् ग्रामक-सन्निवेश पधारे और विभेलक यक्ष के यक्षायतन में ध्यान किया। भगवान् के तपोमय जीवन से यक्ष प्रभावित होकर गुणकीर्तन करने लगा।

## कृटपूतना का उपद्रव

भगवान् महावीर ग्रामक सन्निवेश से विहार कर शालीशीर्ष के रमणीय उद्यान में पधारे। माघ माह का सनसनाता समीर प्रवहमान था। साधारण मनुष्य घरों में गर्म वस्त्रों से वेष्टित होने पर भी काँप रहे थे, किंतु उस ठण्डी रात में भी भगवान् वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े थे। उस समय कृटपूतना (कटपूतना) नामक व्यंतरी देवी वहाँ आई। भगवान् को ध्यानावस्था में देखकर उसका पूर्व-बैर उद्बुद्ध हो गया। वह परिव्राजिक का रूप बनाकर मेघधारा की तरह जटाओं से भीषण जल बरसाने लगी और भगवान् के कोमल स्कंधों पर खड़ी होकर तेज हवा करने लगी। वर्फ— सा शीतल वह जल और पवन तलवार के प्रहार से भी अधिक तीक्ष्ण प्रतीन हो रहा था। तथापि भगवान् ध्यान से विचलित नहीं हुए। उस समय समभावों की उच्च श्रेणी पर चढ़ने से भगवान् को विशिष्ट अवधिज्ञान (परम अवधिज्ञान) की उपलब्धि हुई। परीषह सहन करने की अमित क्षमता को देखकर कृटपूतना आवाक् थी, विस्मित थी। प्रभु के धैर्य के समक्ष वह पराजित होकर चरणों में झुक गई और अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करने लगी।

भगवान् वहाँ से परिभ्रमण करते हुए भद्रिया नगरी पधारे। चातुर्मासिक तप तथा आसन व ध्यान की साधना करते हुए छँडा वर्षावास वहीं पर किया। वर्षावास पूर्ण होने पर नगर के बाहर पारणा कर मगध की ओर प्रयाण किया। मगध के अनेक ग्रामों में धूमते हुए आलंभिया पधारे। चातुर्मासिक तप के साथ ध्यान करते हुए सातवाँ चातुर्मास वहाँ पूर्ण किया। चातुर्मासिक तप का नगर के बाहर पारणा कर कुंडाग-सन्निवेश और फिर मदनसन्निवेश पधारे। दोनों ही स्थलों पर क्रमशः वासुदेव और बलदेव के आलय (मंदिर) में स्थिर होकर ध्यान किया।

वहाँ से लोहार्गला पधारे। उस समय लोहार्गला के पड़ोसी राज्यों से कुछ संघर्ष चल रहे थे, अतः वहाँ के सभी अधिकारीगण आने जाने वाले यात्रियों से पूर्ण सतर्क रहते थे। परिचय के बिना राजधानी में किसी का भी प्रवेश निषिद्ध था। भगवान् से भी परिचय पूछा गया, पर वे मौन थे। परिचयाभाव से अधिकारी उन्हें निरुहीत कर राजसभा में ले गये। वहाँ अस्थिक ग्राम का उत्पल नैमित्तिक आया हुआ था। उसने ज्यों ही भगवान् को देखा त्यों ही उठकर वंदन किया और बोला— 'ये गुप्तचर नहीं, अपितु सिद्धार्थ नंदन महावीर हैं, धर्मचक्रवर्ती हैं। परिचय प्राप्त होते ही राजा जितशत्रु ने भगवान् को सत्कार पूर्वक विदा किया।'

लोहार्गला से भगवान् ने पुरिमताल नगर की ओर प्रस्थान किया। नगर के बाहर कुछ समय तक शकटमुख उद्यान में ध्यान किया। 'वग्गुर' श्रावक ने यहाँ आपका सल्कार किया। वहाँ से उन्नाग, गोभूभि को पावन करते हुए राजगृह पधारे। वहाँ चातुर्मासिक तप ग्रहण कर विविध आसनों के साथ ध्यान करते रहे। ऊंची-नीची और तिरछी तीनों दिशाओं में स्थित पदार्थों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए प्रभु ने वहाँ ध्यान किया, वहाँ पर आठवां वर्षावास व्यतीत किया। नगर के बाहर चातुर्मासिक तप का पारणा कर विशेष कर्म निर्जरा करने के लिए पुनः अनार्यभूमि की ओर (राढ़ देश की ओर) प्रवाण किया। पूर्व की भाँति ही अनार्य प्रदेश में कष्टों से क्रीड़ा करते हुए कर्मों की घोर निर्जरा की। योग्य आवास न मिलने के कारण वृक्षों के नीचे खण्डहरों में तथा घृमते घामते वर्षावास पूर्ण किया। छह मास तक अनार्य प्रदेश में विचरण कर पुनः आर्य प्रदेश में पधारें।

### चंदनबाला द्वारा आहारदान तथा दीक्षा ग्रहण

सिन्धुनामक देश की वैशाली नामक नगरी में चेटक नामक अत्यन्त विनीत, जिनेन्द्रभक्त नामका राजा था। उसकी रानी का नाम सुभद्रा था। उसके धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सिन्धुदत्त, सुदत्त, सुकम्पोज, अकम्पन, पतंगक, प्रभंजन नामके 10 पुत्र थे। प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलनी, ज्येष्ठा और सबसे छोटी चंदना नामक 7 पुत्रियाँ थीं। विदेह क्षेत्र के कुण्डपुर के नाथवंश के शिरोमणि राजा सिन्धुर्थ की धर्मपत्नी प्रियकारिणी थी। इनसे ही कथानायक भगवान् महावीर का जन्म हुआ। वत्स देश की कौशाम्बी नगरी के चंद्रवंशीय राजा शतानीक के साथ मृगावती की शादी हुई। दशार्ण देश के हेमकच्छ नामक नगर के स्वामी राजा दशरथ जो सूर्यवंशीय थे उनके साथ सुप्रभा का विवाह हुआ। कच्छ देश की रोक्का नगरी राजा उद्दायन के साथ प्रभावती का विवाह हुआ।

अनंतर राजा चेटक ने स्नेह के कारण सदा देखने के लिए एक पट्ट पर अपनी सातों पुत्रियों के चित्र बनवाये। राजा चेटक देवपूजा के समय अपनी पुत्रियों का चित्रपट्ट फैलाकर सदा पूजा करता था। एकबार राजा चेटक अपनी सेना सहित मगध देश के राजगृह नगर में गये और नगर के बाह्य उपवन में डेरा लगाकर स्नानादि के बाद जिन प्रतिमाओं की पूजा की और सातों पुत्रियों का चित्रपट्ट भी वहाँ फैलाकर रख दिया। राजा श्रेणिक ने चित्रपट्ट के बारे में ज्ञात किया कि यह राजा चेटक की सातों पुत्रियों का चित्रपट्ट है। इसमें से 4 पुत्रियों का

विवाह हो चुका है 3 अभी अविवाहित हैं उनमें से 2 यौवनवती हैं एवं छोटी पुत्री चंदना बालिका है। राजा श्रेणिक चेलना के साथ विवाह कर लेता है और चेलना को पट्टरानी बना देता है।

चंदना ने स्वयं यशस्वती आर्यिका के पास जाकर सम्यक्दर्शन सहित श्रावक के व्रत ग्रहण किये। एकदिन चंदना अपने परिवार के साथ अशोक नामक वन में क्रीड़ा कर रही थी; उस समय विजयार्थ पर्वत की दक्षिण श्रेणी के स्वर्णभ नगर का राजा मनोवेग विद्याधर अपमी मनोवेगा रानी के साथ आकाश मार्ग से उधर से निकलते हुए क्रीड़ा करती हुई चंदना को देखकर उस पर मोहित हो गया। वह शीघ्र ही अपनी स्त्री को घर भेजकर रुपणी विद्या से अपना दूसरा रूप बनाकर सिंहासन पर बैठा आया और अशोक वन में आकर चंदना को लेकर शीघ्र ही वापिस चला गया। उधर मनोवेग उसकी माया को जान गयी और उस विद्यादेवता को बाँधे पैर की ठोकर देकर मार दिया जिससे वह अट्टहास्य करती हुई सिंहासन से उसी समय चली गई। उसके बाद मनोवेग आलोकिनी नामकी विद्या से अपने पति की सर्वचेष्टा जानकर उसके पीछे दौड़ी और आगे मार्ग में चंदना सहित पति को देखकर पति को बहुत ही डाँट लगायी। जिससे मनोवेग अपनी स्त्री से डरकर पर्णलध्वी नामकी विद्या से चंदना को भूतरमण नामक वन में ऐरावती नदी के दाहिने किनारे पर छोड़ दिया। चंदनाने वहाँ नम्रकार मंत्र का जाप्य करते हुए रात्रि कष्ट से व्यतीत की। प्रातःकाल एक कालक नामक भील वहाँ आया। चंदना ने उसे अपने बहुमूल्य आभूषण दिये और धर्म का उपदेश भी दिया। जिससे वह भील ने सन्तुष्ट होकर चंदना को ले जाकर सिंह नामक भीलों के राजा को सौंप दिया। सिंह पापी था। वह राजा चंदना के ऊपर मोहित गया। उसकी इस चेष्टा को उसकी माता समझ गई एवं उसको समझाया। जिससे उसने चंदना को छोड़ दिया। चंदना कुछ दिन तक भील की माता के साथ निश्चित होकर रही।

इधर वत्स देश के कौशाम्बी नामक नगर में वृषभसेन नामका राजा रहता था। उसके मित्रवीर नामका एक कर्मचारी था जो कि भीलराजा का मित्र था। भीलराजा ने चंदना को मित्रवीर को दे दिया और मित्रवीर ने बहुत भारी धन के साथ चंदना को अपने सेठ को सौंप दिया। एक दिन चंदना सेठ को जल पिला रही थी। उसी समय उसके केशपाश खुल गये और जल से भीगे हुए पृथ्वी पर

गिर गये। यह सब सेठ की पत्नी भद्रा देखकर शंकित हो गई। उसने सोचा कि मेरे पति का इसके साथ सम्पर्क है। ऐसा सोचकर उसने चंदना को साँकलों से बांध दिया और उसको खराब भोजन देने लगी।

एकबार भगवान् महावीर स्वामीने आहार के लिए उसी नगर में प्रवेश किया। उन्हें देखकर चंदना आगे बढ़ी, आगे बढ़ते ही उसकी सांकले टूट गयीं और वस्त्र आभरणों से उसका शरीर सुंदर दिखने लगा। उसके बड़े-बड़े केश चंचल हो उठे। उसने भक्तिपूर्वक पङ्गाहन कर महावीर भगवान् को आहारदान दिया। धर्म के प्रभाव से मिट्टी का सकोरा सुवर्णपात्र बन गया और कोंदो का भात शाली चावल बन गये। आहारदान से चंदना बहुत प्रसन्न हुई। देवों ने उसका सम्मान किया। देवों ने (1) रलों की वर्षा (2) सुगंधित फूलों की वर्षा (3) गंधोदक की वर्षा (4) देवदुन्दभि का शब्द (5) दान की स्तुतिरूप जय-जयकार ऐसे पंचाश्चर्य किये।

चंदना की बड़ी बहिन मृगावती यह समाचार जानकर अपने पुत्र उदय के साथ उनके समीप आयी और स्नेह से उसका आलगिन कर पिछला समाचार पूछने लगी। चंदना से पिछला समाचार सुनकर वह अत्यंत दुःखी हुई। रानी मृगावती उसे अपने घर ले जाकर सुखी हुई। यह देख भद्रा सेठानी और वृषभसेन सेठ दोनों त्री भयभीत होकर रानी मृगावती के पास आये। रानी ने दोनों को चंदना से प्रणाम करके क्षमा करवाया। चंदना के इस व्यवहार से दोनों बहुत प्रसन्न हुए। इस समाचार सुनने से भाई बंधु भी उसके पास आ गये। उसी नगर में सभी लोग भगवान् महावीर की चंदना के लिए गये। चंदना भी गई। वैराग्य उत्पन्न होने से चंदना ने आर्यिका दीक्षा ली। वही चंदना आर्यिकाओं में मुख्य गणिनी बनी। उक्त विषय का वर्णन कल्पसूत्र में निम्न प्रकार पाया जाता है—

मेढिया ग्राम से भगवान् कौशाम्बी पधारे और पौष वृष्णा प्रतिपदा के दिन एक घोर अभिग्रह ग्रहण किया—

‘अविवाहित कुलीन कन्या हो, दासी बनकर रह रही हो, उसके हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ हों, सिर मुड़ा हुआ हो, तीन दिन की उपवासी हो, पके हुए उड़द के बाफले सूप के एक कोने में लेकर भिक्षा का समय व्यतीत होने के पश्चात् जो अपलक प्रतीक्षा कर रही हो, गृहद्वार के बीच बैठी हो, एक पैर बारह—एक भीतर हो, आँखों में आँसू हो ऐसी राजकन्या से भिक्षा प्राप्त होगी

तो लूँगा अन्यथा नहीं लूँगा।

इसप्रकार कठोरतम प्रतिज्ञा को स्वीकार करके महावीर प्रतिदिन भिक्षा के लिए कौशाम्बी में पर्यटन करते। उच्च अट्टालिकाओं से लेकर गरीबों की झोपड़ियों तक पथधारते। भावुक भक्त भिक्षा देने के लिए लपकते, पर भगवान् बिना कुछ लिए उल्टे पैरों लौट जाते। जन-जन के अर्तमानस में एक प्रश्न कचोट रहा था कि— इन्हैं क्या चाहिए? अमात्य नन्दा के यहाँ से जब बिना कुछ लिए लौटे तब उसका मन खिन्न हो गया। वह जल रहित मीन की तरह छटपटाने लगी। अपने भाग्य की भर्त्सना करने लगी। परिचारिकाओं ने कहा— आप इतनी क्यों घबराती हैं। देवार्थ तो आज ही नहीं चार-चार मास से बिना कुछ लिए ही इसी तरह लौट जाते हैं। जब उसने वह बात सुनी तो वह और भी अधिक चिन्तित हो गई। उसने अमात्य सुगुप्त से नम्र निवेदन किया कि ‘आप कैसे प्रधानमंत्री हैं, कि चार मास पूर्ण हो गये हैं, भगवान् श्री महावीर को भिक्षा उपलब्ध नहीं हो रही है। उनका क्या अभिग्रह है, पता नहीं लगा पाये हैं। यह बुद्धिमानी फिर क्या काम आयेगी?’

अमात्य को अपनी त्रुटि का अनुभव हुआ। शीघ्र ही अन्वेषणा का आश्वासन दिया। प्रस्तुत संलाप विजयाप्रतिहारी ने सुन लिया, उसने महारानी मृगावती से निवेदन किया और मृगावती ने शतानीक से। सम्राट और सुगुप्त नामक अमात्य ने अत्यधिक प्रयास किया। तब राजा ने प्रजा को भी नियमोपनियम का परिचय कराकर प्रभु का अभिग्रह पूर्ण करने की सूचना दी, परन्तु भगवान् का अभिग्रह पूर्ण नहीं हुआ। पाँच मास और 25 दिन व्यतीत हो जाने पर भी उनकी मुखमुद्रा उसीप्रकार तेजोदीप्त थी।

एक दिन अपने नियमानुसार कौशाम्बी में परिभ्रमण करते हुए भगवान् धन्नाश्रेष्ठी के द्वार पर पहुँचे। राजकुमारी चंदना सूप में उड़द के वाकुले लिए हुए तीन दिन की भूखी प्यासी द्वार के बीच वहाँ पिताजी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। दूर से ही भगवान् महावीर को आते देखकर उसका मन-मयूर नाच उठा। हृदय कमल खिल उठा। हथकड़ियाँ—बेड़ियाँ झनझना उठीं। वह अपलक दृष्टि से प्रभु को निहार रही थी कि भगवान् आये और जैसे कुछ देखकर बिना कुछ लिए ही लौटने लगे। यह देख उसकी आँखे छलछला आई। उसने पुकारा प्रभो! इस अभागिनी से क्या अपराध हो गया है? बिना कुछ लिए यूँ ही लौट गये? आँखों से आँसू ढुलकते हुए देखकर भगवान् पुनः लौटे और चंदना के

आगे करपात्र फैला दिया। चन्दनाने भक्ति भावना से गदगद होकर उड़द के बाकुले प्रदान किये। भीष्म प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। आकाश में देव दुन्दभि बजी। पंचदिव्य प्रगट हुए। चंदना का रूप सौन्दर्य पहले से सौ गुना अधिक चमक उठा।

भगवान् श्री महावीरने वहाँ से प्रस्थान कर सुमंगल, सुचेत्ता, पालक, प्रकृति क्षेत्रों को पावन करते हुए चम्पानगरी पधारे और चातुर्मासिक तप से आत्मा को भावित करते हुए स्वातिदत्त ब्राह्मण की यज्ञशाला में 12वाँ वर्षावास व्यतीत किया।

भगवान् के तपःपूत जीवन से प्रभावित होकर पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दो यक्ष सेवा करने के लिए आते। जिसे निहारकर स्वातिदत्त को भी यह दृढ़विश्वास हो गया कि यह देवार्य अवश्य ही कोई विशिष्ट ज्ञानी है।

(कल्पसूत्र पृ. 181)

### वीरस्य घोरं तपः

भगवान ने बारह वर्ष और तेरह पक्ष की लम्बी अवधि में केवल तीन सौ उन पचास दिन आहार ग्रहण किया। शेष दिन निर्जल निराहार रहे।

संक्षेप में भगवान का छद्मस्थकाल का तप इस प्रकार है—

एक- छः मासी तप,

एक- पाँच दिन न्यून छः मासी

नौ- चातुर्मासिक

दो- त्रिमासिक

दो- सार्ध द्विमासिक

छह - द्विमासिक

दो- सार्ध मासिक

बारह- मासिक

बहतर- पाक्षिक

एक-भद्र प्रतिमा (दो तीन)

एक- महाभद्र प्रतिमा (चार दिन)

एक- सर्वतोभद्र प्रतिमा (दस दिन)

दो सौ उनतीस छटुभक्त

बारह- अष्टमभक्त

तीन सौ उन पचास दिन- पारणे के एक दिन- दीक्षा का आचारांग के अनुसार दशमभक्त आदि तपस्याएँ भी भगवान ने की थीं।  
(कल्पसूत्र 186)

भगवान् महावीर मुनि अवस्था में (1) अनशन (2) अल्पाहार (3) वृत्ति परिसंख्यान (आहार/ भोजन नियंत्रण) (4) रसत्याग (5) एकान्तवास (6) आत्म साधन में शारीरिक श्रम रूप 6 बहिरंग तप तथा (1) प्रायश्चित्त (दोष निवारण) (2) विनम्रता (3) साधु सेवा (4) स्वाध्याय (5) शरीर सम्बन्धी ममत्व त्याग (6) ध्यान रूप 6 अन्तरंग तप की आराधना यथा योग्य करते थे। उपर्युक्त वर्णन केवल बहिरंग तपान्तर्गत अनशन तप का है।

### 4. भगवान् महावीर का केवलज्ञान कल्याणक

कठोर आत्म साधन से जब आत्मशुद्धि की वृद्धि होते-होते निर्मल धूम्ररहित प्रखर अग्नि के समान शुक्ल ध्यान अन्तरंग में प्रज्ञ्यलित हो उठता है तब आत्म विशुद्धि के आध्यात्मिक सोपान स्वरूप क्षपक श्रेणी आरोहण करते-करते जब अन्तरंग मलस्वरूप ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय कर्मों को भर्म कर डालते हैं, तब आत्मा विशुद्धि एवं उत्थान गुण स्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य को प्राप्त करके पूर्ण तीर्थकर अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। इस अवस्था को जैनागम में तेरहवाँ गुण स्थान सयोग केवली, जीवन मुक्त, परमात्मा, अर्हत् आदि नाम से अभिहित हुआ है। बौद्ध धर्म में इस अवस्था को बोधिसत्त्व, बुद्धत्व, अर्हत् तीर्थकर आदि कहते हैं। हिंदू धर्म में जीवन मुक्त परमात्मा, सशरीर परमात्मा आदि नाम से पुकारते हैं

भगवान् महावीर का पृथ्वी से 500 धनुष ऊपर उठना

जादे केवलणे परमोरालं जिणाण सव्याणं।

गच्छदि उवरि चावा पंचसहस्राणि वसुहादो॥705॥

(तिलोय पण्णति) द्वि भा.पृ.205

केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर समस्त तीर्थकरों का परमौदारिक शरीर पृथ्वी से 5000 धनुष प्रमाण पृथ्वी तल से ऊपर चला जाता है। यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि केवलज्ञान के अनन्तर तीर्थकर का शरीर 5000 धनुष

(20,000 हाथ) ऊपर स्वयमेव किस कारण से चला जाता है?  
 संसारी जीव तीन प्रकार कर्म के समुदाय स्वरूप हैं  
 (१) द्रव्य कर्म (२) नोकर्म (३) भाव कर्म।  
 ज्ञानावरणादि ४ कर्म द्रव्य कर्म है। (१) औदारिक (२) वैक्रियक (३) आहारक  
 (४) तैजस (५) कार्मण शरीर नोकर्म स्वरूप हैं।  
 राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि भाव कर्म हैं।

कर्म पुद्गल से निर्मित है। पुद्गल में गुरुत्व नाम का एक गुण है अर्थात् पुद्गल में भारीपन है। कर्म पुनः दो भाग से विभाजित है— (१) पुण्य स्वरूप (२) पाप स्वरूप। पाप कर्म अशुद्ध विचारधारा से जीव के साथ संश्लेष बंध होने के कारण पाप कर्म वजनदार है। पुण्य कर्म विशुद्धि भाव से जीव के साथ संश्लेष बंध होने के कारण हल्का है। जब तीर्थकर भगवान् ध्यानाग्नि से पाप कर्म स्वरूप ज्ञानावरणादि स्वरूप ४ घाति कर्म को भस्म कर डालते हैं तब अन्तानन्त परमाणु के पिंड स्वरूप पाप कर्म शरीर से पृथक् हो जाते हैं। वजनदार अन्तानन्त पाप परमाणुओं का शरीर से पृथक्करण होने के कारण तीर्थकर का शरीर पूर्वपेक्षा कम वजनी हो जाता है जिससे शरीर पृथ्वी से ५००० धनुष स्वयमेव ऊपर उठ जाता है। जिस प्रकार हाइड्रोजन गैस से भरित बैलून को छोड़ देने से वह बैलून स्वयमेव ऊपर उठ जाता है। केवल ज्ञान के बाद पुनः पापकर्म का बंध नहीं होता है उसके कारण पुनः कभी भी अहंत भगवान् (तीर्थकर) भू पृष्ठ पर नहीं आते हैं।

### केवलज्ञान के ११ अतिशय

(१) अपने आप से चारों दिशाओं में एक सौ योजन तक सुभिक्षत। (२) आकाश गमन (३) हिंसा का अभाव (४) भोजन का अभाव (५) उपसर्ग का अभाव (६) सब कीओर मुख करके स्थित होना (७) छाया रहितता (८) निर्मिमेष दृष्टि (९) विद्याओं की ईशता, (१०) संजीव होते हुये भी नख और रोमों का सामान होना (११) अठारह महाभाषा, सात सौ क्षुद्रभाषा तथा और भी जो संज्ञी जीवों की समस्त अक्षर-अनक्षरात्मक भाषायें हैं उनमें तालु, दाँत, ओष्ठ और कण्ठ के व्यापार से रहित होकर एक ही समय भव्यजनों को दिव्य उपदेश देना। भगवान् जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खिलित और अनुपम दिव्य ध्वनि तीनों संध्याकालों में नव मुहूर्त तक निकलती है और योजन पर्यन्त जाती हैं। इसके

अतिरिक्त गणधर देव इन्द्र अथवा चक्रवर्ती के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरूपणार्थ वह ध्वनि शेष समयों में भी निकलती है। वह दिव्य- ध्वनि भव्य जीवों को छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्वों का नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरूपण करती है। इस प्रकार घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने से महान् आश्चर्यजनक ग्यारह अतिशय तीर्थकरों को केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर प्रगट होते हैं।

### गौतम ब्राह्मण का गणधर बनना एवं धर्म तीर्थ प्रवर्तन

#### (१) गौतम गणधर

महावीर भगवान् को केवलज्ञान होने के बाद भी सुयोग्य शिष्य के अभाव में ६६ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी। इंद्रने इससे चिंतित होकर अवधिज्ञान से इसका कारण ज्ञात किया। उन्होंने अवधिज्ञान से यह ज्ञात किया कि गौतम ब्राह्मण इसके लिए योग्य है, परन्तु वह तो मिथ्या धर्म व मिथ्यादम्भ से ग्रसित है। इंद्र एक ब्राह्मण का वेश धारण कर गौतम के पास पहुँचते हैं और गौतम को कुछ गम्भीर, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक प्रश्न पूछते हैं। उन प्रश्नों का उत्तर गौतम के पास नहीं था। गौतम सोचता है कि 'मैं कहाँगा कि इस प्रश्न का उत्तर नहीं जानता हूँ तो मेरे शिष्य मुझे अयोग्य समझेंगे एवं मेरा अनादर करेंगे।' ऐसा विचार कर वह कहता है— इन प्रश्नों का उत्तर मैं तुम्हारे गुरु के पास जाकर दूँगा। इंद्र तो वही चाहते थे। छद्म वेशधारी इंद्र गौतम ब्राह्मण को भगवान् महावीर स्वामी के पास पहुँचाते हैं। भगवान् महावीर का प्रभाव, समोशरण का वैभव, देवों का आगमन, उनके ज्ञान एवं वौराण्य से प्रभावित होकर वह अपने मिथ्याधर्म एवं अहंकार को त्यागकर भगवान् महावीर का शिष्यत्व स्वीकार कर लेते हैं और दिग्म्बर निग्रन्थ रूप धारण कर लेते हैं। उनकी भाव विशुद्धि के कारण अंतर्मुहूर्त में ही मिथ्यादृष्टि से सम्यादृष्टि, सम्यादृष्टि से मुनि एवं मुनि से गणधर बन जाते हैं। मनः पर्यज्ञान एवं समस्त ऋद्धियों से सम्पन्न होकर प्रथम गणधर बनते हैं; जिसके कारण भगवान् महावीर की दिव्यध्वनि खिरती है। जिस दिन गौतम ब्राह्मण भगवान् के पास आकर मुनि बने उस दिन पूर्णिमा थी इसीलिए आज भी 'गुरुपूर्णिमा' रूप में उत्सव मनाया जाता है। जिस दिन भगवान् महावीर की दिव्य ध्वनि खिरी उस दिन से 'वीर शासनजयन्ती' रूप में उत्सव मनाते हैं; क्योंकि भगवान् महावीर

ने दिव्यध्वनि के माध्यम से धर्मचक्र का तथा धर्मशासन का प्रवर्तन एवं प्रचार-प्रसार किया था।

### गणधरों का वर्णन कल्पसूत्र में निम्नप्रकार से उपलब्ध है

उस समय मध्यम पावापुरी में सोमिलार्य नामक धनाढ्य ब्राह्मण अपने यहाँ एक विराट् यज्ञ का आयोजन कर रहा था। उस यज्ञ में भाग लेने के लिए भारत के जाने-माने चोटी के क्रियाकाण्डी विद्वान् और आचार्य आये हुए थे। इनमें अग्निभूति, इन्द्रभूति, वायुभूति ये तीन विद्वान् चौदह विद्याओं के पारंगत थे। प्रत्येक के साथ 500-500 शिष्य (छात्र) थे। तीनों ही गौतम गोत्रीय व मगध जनपद के गोवर ग्राम के निवासी थे।

व्यक्त और सुधर्मा नाम के दो विद्वान् कोल्लाग सन्निवेश से आये थे। व्यक्त भारद्वाज गोत्रीय थे और सुधर्मा अग्निवैश्यायन थे। इनके पास भी 500-500 शिष्य थे।

उस यज्ञ में मंडित व मौर्यपुत्र – ये दो विद्वान् मौर्य सन्निवेश से आये थे। मंडित वासिष्ठ गोत्र के एवं मौर्यपुत्र काश्यप गोत्र के थे। दोनों के साथ भी 350-350 शिष्य थे।

अकम्पित, अचल भ्राता, मेतार्य और प्रभास नाम के चार अन्य विद्वान् भी उस सभा में थे। जो क्रमशः मिथिला के गौतम गोत्रीय, कौशल के हारित गौत्री, तुंगिक (कौशाम्बी) के कौडिन्य गौत्रीय एवं राजगृह के कौडिन्य गौत्रीय थे। इन सभी विद्वानों के मन में एक-एक शंका भी छिपी हुई थी। ये 11 विद्वान् उन सभी विद्वानों में प्रमुख थे।

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान् ने देखा मध्यम पावापुरी का प्रस्तुत प्रसंग अपूर्व लाभ का कारण है। भारत के मूर्धन्य मनीषी विज्ञान भी अज्ञानान्धकार में भटक रहे हैं, साथ ही दूसरों को भी अज्ञानान्धकार में ढकेल रहे हैं। ये बोध प्राप्त करेंगे तो हजारों प्राणियों को सत्य मार्ग पर चलने को प्रेरित कर सकते हैं।

देवताओं ने समवशरण की रचना की। विशाल मानव मेदिनी एकत्रित हुई। सुर और असुर सभी उपदेश सुनने के लिए उपरिथित हुए। जन-जन की जिव्हा पर महावीर की सर्वज्ञता की चर्चा होने लगी। आकाशमार्ग से आते हुए देवगणों को देखकर पंडितों ने सोचा- ‘हमारे यज्ञ से आकृष्ट हुए देवगण आ रहे हैं।’ किन्तु जब उन्हें सीधे ही आगे निकल जाते देखा और पाश्व स्थित भगवान् महावीर

के समवशरण में उत्तरते देखा तो निराशा के साथ आश्चर्य हुआ। इन्द्रभूति को ज्ञात हुआ कि आज यहाँ पर सर्वज्ञ महावीर आये हैं; तो उन्हें अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य पर आंच आती सी लगी। सोचा चलकर देखूँ महावीर कैसा ज्ञानी है? मेरे सामने वह कितने समय तक टिक सकता है। आज तक मुझे कोई भी विद्वान् पराजित नहीं कर सका है। भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक मेरी कीर्ति-कौमुदी चमक रही है। आज महावीर से भी शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित करूँ।

सर्वशास्त्र पारंगत इन्द्रभूति अपने 500 शिष्यों के साथ शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत हुए। प्रभु की तेजोदीप्त मुख मुद्राने पहले ही क्षण इन्द्रभूति को प्रभावित कर दिया। महावीर ने ज्यों ही उन्हें ‘गौतम’ कहकर संबोधित किया त्यों ही वह स्तम्भित से रह गये। विचारा- ‘मेरी लोक व्यापिनी ख्याति के कारण ही इन्हें मेरा नाम पता है। पर जब तक ये मेरे अंतर के संशयों का छेदन नहीं कर देते तब तक मैं इन्हें सर्वज्ञ नहीं मान सकता। गौतम के मानस में संकल्प की उधेड़बुन चल ही रही थी कि महावीर ने कहा— गौतम! चिरकाल से आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में तुम शंकाशील हो ?

इन्द्रभूति अपने अन्तर्लीन प्रश्न को सुनकर चकित व प्रमुदित हुए। उन्होंने कहा- हाँ मुझे उस विषय में शंका है; क्योंकि ‘विज्ञान घन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति, न प्रेत्ये संज्ञास्ति’ प्रभृति श्रुति वाक्य भी प्रस्तुत कथन का समर्थन करते हैं। भूत समुदाय से ही चेतना की उत्पत्ति होती है और उसी में वह पुनः तिरोहित (लीन) हो जाती है। अतः परलोक का अभाव है। भूत समुदाय से ही जब विज्ञानमय चैतन्य का प्रादुर्भाव होता है तो भूत समुदाय के अतिरिक्त पुरुष का अस्तित्व कैसे संभव है?

महावीर- इन्द्रभूति! तुम्हें यह भी तो ज्ञात है न कि वेद से पुरुष के अस्तित्व की भी सिद्धि होती है ?

इन्द्रभूति - ‘हाँ, ‘स वै अयमात्मा ज्ञानमयः’ प्रभृतिश्रुति-वाक्य आत्मा के अस्तित्व के कारण ही तो यह शंका उत्पन्न होती है कि किस वाक्य को प्रामाणिक माना जाए।’

महावीर- इन्द्रभूति! जैसा तुम ‘विज्ञानघन’ श्रुतिवाक्य का अर्थ समझ रहे हो वस्तुतः वैसा अर्थ नहीं है। तुम विज्ञानघन का अर्थ भूत समुदायोत्पन्न ‘चेतनापिण्ड’ करते हो, किन्तु ‘विज्ञानघन’ का सही अर्थ विविध ज्ञान पर्यायों का आविर्भाव

होता है और पूर्वकालीन ज्ञान-पर्यायों का विनाश होता है। जब एक पुरुष घट को देख रहा है, उसका चिन्तन और मनन कर रहा है उस समय आत्मा में घट विषयक ज्ञानोपयोग समुत्पन्न होता है। इसे हम घटविषयक ज्ञानपर्याय कहते हैं। जब वही पुरुष घट के बाद पट आदि अन्य पदार्थों को निहारता है तब उसे पट आदि का ज्ञान होता है और पूर्वकालीन घट ज्ञान पर्याय विनष्ट हो जाता है। विविध पदार्थ विषयक ज्ञान के पर्याय ही विज्ञानघन (विविध पर्यायों का पिण्ड) है, जिसकी उत्पत्ति भूतों के निमित्त से होती है। यहाँ भूत शब्द का अर्थ पृथिव्यादि पंच भूत नहीं, अपितु प्रमेय है— जड़ और चेतन आदि समस्त ज्ञेय पदार्थ हैं।

सभी ज्ञेय पदार्थ आत्मा में अपने स्व-स्वरूप से प्रतिभाषित होते हैं। जैसे घट-घट रूप में और पट-पट रूप में। ये विभिन्न प्रतिभास ही ज्ञानपर्याय हैं। भिन्न-2 ज्ञेयों को निमित्त से विज्ञानघन (ज्ञान पर्याय) उत्पन्न होते हैं और उस काल में वे पर्याय नष्ट हो जाते हैं।

‘न प्रेत्संज्ञास्ति’ वाक्य का अर्थ ‘परलोक नहीं ऐसा नहीं, अपितु पूर्व पर्याय की सत्ता नहीं ऐसा है। जब पुरुष में उत्तरकालिक ज्ञान पर्याय समुत्पन्न होता है तब पूर्वकालीन ज्ञानपर्याय नष्ट हो जाता है; क्योंकि किसी भी द्रव्य या गुण की उत्तर पर्याय के समय पूर्व पर्याय की सत्ता नहीं रह सकती। अतः ‘न प्रेत्य संज्ञास्ति’ कहा है।

भगवान् महावीर के तर्कप्रधान वेदवाक्यों के अर्थ-समन्वय को सुनकर गौतम के हृदय की गाँठ खुल गई। मिथ्याज्ञान का नशा उत्तर गया। मानसिक संदेह का निराकरण हो गया। वे श्रद्धा से गद्-गद् हो गये। प्रभु के चरणों में झुक गये। परम सत्य का दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये। 500 शिष्यों के साथ भगवान् महावीर के शिष्य बन गये।

## (2) अग्निभूति :

इन्द्रभूति की प्रवज्या के समाचार सुनकर अग्निभूति अपने शिष्यों सहित शास्त्रार्थ के लिए आए। अग्निभूति के मन पर ‘पुरुष एवेदं सर्व यद्भुतं यच्च भाव्यं उत्तमृत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति यदेजति यनैजति यद्दुरे यदु अन्तिके यदन्तरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य वाह्यतः। प्रभृति श्रुति-वाक्यों की छाप थी। वे पुरुषाऽद्वैतवादि थे किन्तु ‘पुण्यः पुण्येन, पापः पापेनः कर्मणा’ आदि विरोधी वचनों से पुरुषाऽद्वैतवाद में शंकाशील थे। भगवान् महावीर ने वैदिक वाक्यों के समन्वय

से द्वैत की सिद्धि कर उनके संशयों का उच्छेद किया, वे भी प्रतिबोध पाकर छात्र मण्डली सहित प्रवत्रित हुए।

(कल्पसूत्र पृ. 192)

## (3) वायुभूति :

अग्निभूति के प्रवज्या ग्रहण करने के पश्चात् वायुभूति शास्त्रार्थ के लिए चले। उनके दार्शनिक विचारों का झुकाव ‘तज्जीवतच्छ्रीवादी’ नास्तिक्यता की ओर था। विज्ञानघन एवैतेभ्योः प्रभृति श्रुतिवाक्यों को वे अपने मत का समर्थक मानते थे। किन्तु दूसरी ओर ‘सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्योण नित्यं ज्योतिर्मयो कि शुद्धो यं पश्यन्ति धीरा श्रतयः संशतात्मानः प्रभृति उपनिषद् वाक्यों से देहातिरिक्त आत्मा की सिद्धि होती थी यह द्विविध वेदवाणी वायु— भूति की शंका का कारण थी। भगवान् महावीर ने शरीरातिरिक्त आत्मतत्त्व का विश्लेषण कर शंकाओं का समाधान किया। पाँच सौ शिष्यों के साथ उन्होंने भी प्रवज्या ग्रहण की।

## (4) आर्य व्यक्ति

उसके पश्चात् आर्य व्यक्ति आये। “स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधरञ्जसा विज्ञेयः” इत्यादि श्रुतिवाक्यों से वे ब्रह्मवाद की ओर झुके हुए थे। किन्तु ‘द्यावापृथिवी’ तथा ‘पृथवीदेवता’, ‘आपोदेवता’ इत्यादि वचनों से दृश्य जगत् को भी मिथ्या नहीं मान सकते हैं। इस द्विविध वेदवाणी से वे भी शंकाशील थे। भगवान् महावीर ने उनकी प्रच्छन्न शंका का वेद पदों से समन्वय पूर्वक द्वैत की सिद्धि कर समाधान किया। समाधान होते ही वे भी 500 छात्रगण सहित प्रवर्जित हुए।

## (5) सुधर्मा

उसके पश्चात् सुधर्मा आये। ‘पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वम्’ आदि श्रुति वचनों से सुधर्मा की विचारधारा जन्मान्तर दृश्यवाद की ओर थी किन्तु ‘श्रृंगलो ०८३ एष जायते यः स पुरीषो दध्यते’ आदि वाक्यों से वे जन्मान्तर से वैसादृश्य का खण्डन नहीं कर सकते थे। इन विविध वेदवचनों से वे शंकाग्रस्त थे। भगवान् महावीर ने प्रस्तुत वेदवाक्यों का सुंदर समन्वय कर सुधर्मा की शंकाओं का निराकरण किया। समाधान होते ही वे 500 शिष्यों के साथ प्रवर्जित हुए।

## (6) मण्डित

उसके पश्चात् मण्डित शास्त्रार्थ के लिए आये। वे सांख्य दर्शन के समर्थक थे। ‘स एष विगुणो विभुर्न वध्यते संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा न वा एष वाह्यमध्यंतरं

वा वेद' आदि श्रुति वाक्य उनके मन्त्रव्य की पुष्टि के लिए थे; परन्तु इसके विपरीत 'न है सशरीरस्य प्रियाप्रियोरपहितरस्ति अशरीरं वा वसन्तं प्रियाऽप्रिये न स्फृशतः' इस श्रुतिवाक्य से वे बंध और मोक्ष के अस्तित्व के संबंध में भी विचार करने लगते थे। किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पा रहे थे। भगवान् ने वेदवाक्यों का समन्वय कर आत्मा का संसारित्व सिद्ध किया। समाधान बोने पर 350 छात्रों के साथ प्रव्रज्या ली।

### (7) मौर्यपुत्र

उसके पश्चात् मौर्यपुत्र आये। 'को जानाति मायोपमान् गीर्वाणानिन्द्र्यमवरुणकुबेररादीन्' इत्यादि श्रुतिवाक्यों से देवताओं का स्वर्गलोक के अस्तित्व के सम्बन्ध में शंका थी और इधर 'स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति' व अपाम सोमममृता अभूम अगमन्। ज्योतिः अविदाम देवान्, किं नूनमस्मांस्तृणवदरातिः, किमु धूर्तिरमृतमर्त्यस्य' इन वेद वाक्यों से स्वर्ग और देवताओं का अस्तित्व सिद्ध होता था। भगवान् महावीर ने देवों का अस्तित्व सिद्ध कर मौर्यपुत्र के संशय का समाधान किया। समाधान होते ही 350 छात्रों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की।

### (8) अकम्पित

उसके पश्चात् अकम्पित आये। उन्हें 'न है वै प्रेत्य नरके नारका सन्ति' इस श्रुति वाक्य से नरक और नारक जीवों के अस्तित्व के संबंध में शंका हुई पर 'नारको वै एष जायते यः शूद्रान्मशनाति', इस वाक्य से नारकों का अस्तित्व भी सिद्ध होता था। इस द्विविध वेद वचनों से वह शंकाग्रस्त थे। भगवान् महावीर ने वेद वाक्यों का समन्वय कर उनकी शंका का समाधान किया। 300 छात्रों के साथ उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की।

### (9) अचलभ्राता

उसके पश्चात् अचलभ्राता आये। उन्हें 'पुरुष एवेदं ग्नि सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो' आदि श्रुतिवाक्यों से केवल पुरुष का ही अस्तित्व सिद्ध होता है। पुण्य-पाप का अस्तित्व नहीं। किन्तु दूसरी तरफ पुण्यः पुण्येन, पापः पापेन कर्मणा आदि वचन पुण्य-पाप के अस्तित्व को भी सिद्ध करते हैं। इस सम्बन्ध में शंका थी। भगवान् महावीरने पुण्य-पाप का अस्तित्व सिद्ध कर शंका का समाधान किया। 300 छात्रों के साथ उन्होंने भी प्रव्रज्या ग्रहण की।

### (10) मैतार्य

उसके पश्चात् शास्त्रार्थ के लिए मैतार्य आए। उन्हें 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य' आदि वेदवाणी से पुर्णजन्म के सम्बन्ध में शंका थी। पर साथ ही 'नित्यं ज्योतिर्मयः, आदि से आत्मा संसिद्धि और 'शृगालो वे एष जायते' आदि से पुर्णजन्म ध्वनित होने से वे दृढ़निश्चय नहीं कर पा रहे थे। भगवान् ने वेदवाक्यों का सही अर्थ समझाते हुए पुर्णजन्म की सत्ता प्रमाणित की। समाधान होते ही 300 छात्रों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की।'

### (11) प्रभास

उसके बाद प्रभास आये। उन्हें आत्मा की मुक्ति के संबंध में संशय था। और उसे बल मिला था 'जरामर्य वा एतत्सर्वं यदग्निहत्रम्' इस वाक्य से। किन्तु 'द्वे ब्रात्मणी देवितव्ये परमपरं च, तत्र परं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस वाक्य से आत्मा की बद्ध और मुक्त दोनों अवस्थाओं का प्रतिपादन होता था। जिससे आत्मनिर्वाण के सम्बन्ध में प्रभास शंकाशील थे। भगवान् महावीर ने उन वेदवाक्यों का सही अर्थ समझाया। समाधान होते ही वे भी अपने 300 छात्रों के साथ प्रव्रजित हो गये।

महापुराण (उत्तर पुराण) के अनुसार गणधरों का नाम है— (1) गौतम (2) वायुभूति (3) अग्निभूति (4) सुर्धर्म (5) मौर्य (6) मौन्द्रय (7) पुत्र (8) मैत्रेय (9) अकम्पन (10) अन्धवेला (11) प्रभास।

### भगवान् महावीर के अनुयायी तथा शिष्यवर्ग

जगत बंधु विश्वगुरु तीर्थकर भगवान् महावीर विश्व के प्रत्येक जीवों के हित चिंतक होने के कारण वह विश्व के प्रत्येक जीव को समान दृष्टि से देखते थे। विश्व में मनुष्य, तिर्यच (पशु-पक्षी), देव और नारकीयों में से जो कोई सम्यकदृष्टि मोक्ष इच्छुक जीव थे वे सब भगवान् महावीर को श्रद्धा सहित आदर देते थे, मान्यता देते थे। भले शक्ति, सामर्थ के अभाव से दूर होने के कारण भगवान् महावीर के दर्शन करने व उपदेश सुनने में वंचित क्यों नहीं हुए हों? उनकी विश्व-धर्मसभा (समवशरण) में असंख्यात देव तथा हजारों राजाओं से लेकर रंक तक, बालक से लेकर प्रौढ़ तक, मनुष्य तथा हाथी, घोड़ा, बैल, सिंह, व्याघ्र आदि हिंस्र पशु तक भूक्ति से शांतिपूर्वक भगवान् का दर्शन एवं दिव्यध्वनि सुनते थे। इनकी धर्म सभा में इन्द्रभूति आदि 11 गणधर थे। इनके समवशरण में 300

पूर्वधर, 9900 शिक्षक, 1300 अवधिज्ञानी, 700 केवली, 800 विक्रियाधारी, 500 विपुलमति, 400 वादी मुनि थे। इस प्रकार पूर्ण ऋषियों की संख्या 14000 थी। आर्यकाओं की संख्या 36000 थी। आर्यकाओं में मुख्य आर्यका चंदना थी। एक लाख श्रावक तथा तीन लाख श्राविकायें थीं।

### भगवान् महावीर की विश्व धर्मसभा (समवशरण)

चउरं गुलंतराले उवरि सिंहासणाणि अरहंता।

चेटृंति गयण-मग्गे लोयालोयाप्प्यास-मत्तंडा॥१०४॥

लोक अलोक को प्रकाशित करने के लिए सूर्य सदृश भगवान अरहंत देव उन सिंहासनों के ऊपर आकाश मार्ग में चार अंगुल के अन्तराल से स्थित रहते हैं।

तीर्थकर भगवान पूर्णरूप से संसार शरीर भोग-उपभोग, सांसारिक, भौतिक वस्तु धन-संपत्ति वैभव से विरक्त निर्मम, उदासीन, उपेक्षा रहित होने के कारण देवों द्वारा रचित अत्यंत वैभवपूर्ण विश्व के अद्वितीय, अनुपम कला-कौशल, विभिन्न बहुमूल्य रत्नों से निर्मित, समवसरण को स्पर्श तक नहीं करते हैं। इतना ही नहीं, गंधकुटी में स्थित सिंहासन को भी स्पर्श करके विराजमान नहीं होते हैं। वे उस सिंहासन से चार अंगुल अन्तराल से आकाश में बिना आधार स्थिर रहते हैं।

तीर्थकर भगवन् विश्व धर्म सभा समवशरण में विराजमान होकर विश्व-प्रेम, मैत्री, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकांत, स्याद्वाद, विश्व का सत्य स्वरूप, धर्म का रहस्य, रलत्रय, धर्म षट्-द्रव्य, सप्त तत्व, नव पदार्थ, संसार तथा मोक्ष-कारण, गृहस्थ धर्म, मुनि-धर्म, सच्चे नागरिकों के कर्तव्य (अविरत, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों के कर्तव्य) आदि का सूक्ष्म तथा पूर्ण वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण उपदेश करते हैं। तीर्थकर भगवान सर्वजन सुखाय के लिए उपदेश करते हैं। उनका उपदेश संकीर्ण मनोभाव से प्रेरित होकर क्षुद्र सांप्रदायिक नहीं होता है। उनका उपदेश कुछ सीमित वर्गों के लिए नहीं होता है। उनके उपदेश अहिंसा, विश्व मैत्री, प्रेम, सौहार्द, सुख शान्ति के लिए होता है। वे स्वयं अहिंसा, सत्य, प्रेम, करुणा की जीवन्त मूर्ति होते हैं। अंतरंग, बहिरंग और उपदेश अहिंसामय, समतामय, सत्यमय होने के कारण सत्य दृष्टिकोण रखने वाले भव्य जीव, उनके उपदेश सुनने के लिए बहुत दूर दूरान्तर से आकर्षित होकर आते हैं।

हैं। उनकी धर्म सभा में राजा-महाराजा सम्राट के साथ-साथ दीन-हीन गरीब भी एक स्थान में किसी प्रकार के भेद-भाव से रहित होकर प्रेम से बैठकर धर्मोमृत पान करते हैं। उस विश्व धर्म सभा में राजरानी, साम्राज्ञी, पद्ममहिषी, दीन, दुःखिनी, ग्रामीण, स्त्री भी समासन में भेदभाव भूलकर बैठते हैं। इतना ही नहीं, उस धर्ममृत का पान करने के लिए अबोध पशु-पक्षी भी आकर्षित होकर ग्राम, नगर जंगल से आकर धर्मसभा में स्वयोग्य स्थान में बैठकर धर्मोमृत पान करते हैं। जन्म जात परस्पर वैरत्व रखने वाले पशु-पक्षी भी उस अहिंसामय परिसर में निवैरत्व होकर, निर्भय होकर, प्रेम प्रीति से एक साथ बैठते हैं। आचार्य जिनसेन स्वामी ने हरिवंश पुराण में समवसरण का वर्णन करते हुए हिंसक पशु-पक्षियों के बारे में निम्न प्रकार वर्णन किया है-

ततोऽहिन कुते भेन्द्रहर्य श्वमहिषादयः।

जिनानुभाव सम्भूतविश्वासाः शमिनो वभुः॥८७॥

और उनके बाद द्वादश कोष्ठ में जिनेन्द्र भगवान् के प्रभाव से जिन्हें विश्वास उत्पन्न हुआ था तथा जो अत्यन्त शांतचित के धारक थे, ऐसे सर्प, नेवला, गजेन्द्र सिंह, घोड़ा और भैंस आदि नाना प्रकार के तिर्यच बैठे थे।

विश्व में विभिन्न काल में विभिन्न देश में, विभिन्न सम्प्रदाय में बड़े-बड़े धर्म प्रचारक, धर्मात्मा, देवदूत, पैगंबर हो गये हैं। वे लोग युगपुरुष धर्म, क्रान्तिकारी, धर्मोपदेशक, प्रचारक एवं प्रसारक हुए हैं। उन्होंने तत्कालिक जीव जगत् को उद्बोधन, पूत-पवित्र किया था। उनकी प्रतिभा से पतित मानव भी पावन हुये हैं और कुछ पशु-पक्षी भी प्रभावित हुए हैं। परंतु अभी तक हिंदू, बौद्ध, क्रिस्ट, मुसलमान आदि किसी भी धार्मिक साहित्य में मेरे देखने में कहीं पर नहीं आया है कि इतने जन्मजात वैर-विरोध, भोज्य-भक्ष संबंध रखनेवाले पशुपक्षी ने मनुष्य के साथ बैठकर एक साथ उपदेश सुना हो। तीर्थकर के पादमूल में इस प्रकार जन्मजात वैर-विरोध को रखनेवाले अनेक पशु-पक्षी एक साथ प्रेम से बैठकर उपदेश सुनते हुए मानो यह बताते हैं कि विश्व में एक ही अद्वितीय पूर्ण अहिंसा के आराधक प्रचार-प्रसारक तीर्थकर-अरिहंत ही हैं। क्योंकि 'अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निद्वौ वैर-त्यागः' अर्थात् जो पूर्ण अहिंसा के आराधक, प्रचार-प्रसारक होते हैं उन्हीं के सानिध्य में दूसरों के वैर-भाव भी विलीन हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्य के सानिध्य से अंधकार विलीन हो जाता है।

समवसरण में बन्दनारत जीवों की संख्या

जिणवंदमापयद्वा पल्लासंखेज्जभागपरिमाण॥  
चेद्विंति विविहजीवा एककेकके समवसरणेसुं॥१९३८॥

ति. प. भाग-२ अ.४

एक-एक समवसरण में पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण विविध प्रकार के जीव जिनदेव की बन्दना में प्रवृत्त होते हुए स्थिर रहते हैं।

### अवगाहन शक्ति की अतिशयता

कोद्वाणं खेत्तादो जीणक्खेतफलं असंखगुणं।  
होदूण अपृट्टत्ति हु जिणमाहप्येण ते सब्ये॥१९३९॥

समवशरण के कोठों के क्षेत्र से यद्यपि जीवों का क्षेत्रफल असंख्यात गुणा है— तथापि वे सब जीव जिनदेव के महात्म्य से एक-दूसरे से अस्पृष्ट रहते हैं।

यद्यपि समवसरण का क्षेत्रफल अधिक है परंतु समवशरण के मध्य में स्थित गंधकुटी उल्कृष्ट से छह सौ धनुष एवं जघन्य से पचास धनुष प्रमाण है। इसलिए गंधकुटी का क्षेत्रफल समवशरण के क्षेत्रफल से बहुत कम है। गंध कुटी में पूर्ववर्णित बारह सभाओं में मनुष्य, पशु-पक्षी, देव बैठकर एक साथ उपदेश सुनते हैं। उनकी संख्या पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण (असंख्यात) अर्थात् असंख्यात है। असंख्यात जीवों के बैठने योग्य क्षेत्र का क्षेत्रफल बारह सभा के क्षेत्रफल से असंख्यात गुणा अधिक है। भौतिक विज्ञान, क्षेत्रगणित, अंकगणित के सिद्धांत के अनुसार बैठने योग्य क्षेत्र का क्षेत्रफल एवं बैठनेवाले जीवों के आसन का क्षेत्रफल समान होना चाहिए परंतु यहाँ पर बैठने योग्य क्षेत्रफल बैठने वाले जीवों के क्षेत्रफल असंख्यात गुणा हीन है। यहाँ पर स्वभाविक प्रश्न होता है कि, कम क्षेत्रफल में अधिक जीव कैसे बैठ सकते हैं? इसका उत्तर देते हुए आचार्य श्री ने बताया है कि यह जिनेन्द्र भगवान् के अलौकिक महात्म्य का फल है। संभव हो जैसे एक छोटे से कैमरे में हजारों मनुष्यों की प्रतिच्छाया अंकित हो जाती है। मनुष्यों का क्षेत्रफल हजारों वर्गमीटर हो सकता है। परंतु कैमरे के लेन्स का क्षेत्रफल कुछ सेंटीमीटर होता है। जिस प्रकार एक बहुत कम क्षेत्र विशिष्ट लेन्स में अधिक क्षेत्रफल में रिथत एवं अधिक क्षेत्रफल विशिष्ट मनुष्यों की प्रतिच्छाया आ जाती है। इसका कारण लेन्स के कांच का वैशिष्ट्य है। सामान्य कांच में इस प्रकार

का प्रतिबिम्ब नहीं आ सकता है, उसी प्रकार सामान्य मनुष्यों के कारण कम क्षेत्र में अनेक जीव नहीं रह सकते हैं परंतु विशिष्ट अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुषों के कारण अधिक जीव, कम क्षेत्रफल में रहने में बाधा नहीं आती है। अक्षीण क्षेत्र ऋद्धि सम्पन्न मुनिवर जिस छोटी सी गुफा में रहते हैं उस गुफा में अनेक जीव बिना बाधा से रह सकते हैं। जब एक सामान्य ऋद्धि धारी मुनिश्वर के महात्म्य से ऐसा होना संभव है तब क्षायिक नवलद्विधि संपन्न विश्व के सर्वोल्कृष्ट महापुरुषों के निमित्त से कम क्षेत्र में अधिक जीव रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

### प्रवेश-निर्गमन प्रमाण

सेज्ज-जोयणाणिं, बाल-प्युहुदी पवेस-णिग्गमणे।

अंतोमुहूर्त काले, जिण-माहप्येण गच्छंति॥१९०४॥

जिनेन्द्र भगवान् के महात्म्य से बालक-प्रभृति जीव समवशरण में प्रवेश करने अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं।

### समवसरण में कौन नहीं जाते?

मिच्छईट्टि-अभव्या, तेसु असण्णी ण होंति कइयाति।

तह य अणज्ज्वासाया, संदिद्धा विविह-विवरीया ॥१९४१॥

समवशरण में मिथ्यादृष्टि, अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते तथा अनध्यवसाय से युक्त संदेह से संयुक्त और विविध प्रकार की विपरीतताओं वाले जीव भी नहीं होते।

### समवशरण में रागादि का अभाव

आतंक-रोग-मरणुप्तीओ वेर-काम-बंधाओ।

तण्हा-छुह-पीड़ाओ, जिण-माहप्येण ण वि होंति॥१९४२॥

जिन भगवान् के महात्म्य से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, वैर, कामबाधा तथा पिपासा और क्षुधा की पीड़ाएँ वहाँ नहीं होतीं।

समवशरण में आनेवाले दूर-दूर के भव्य ऋद्धालु धर्मात्मा, आबालवृद्ध-वनिता भगवान् की अलौकिक आध्यात्मिक प्रेरणा से प्रेरित होकर एवं भगवान् के महात्म्य से प्रभावित होकर संख्यात योजन दूरी को केवल अन्तर्मुहूर्त में (48 मिनट के मध्य में) पार करके भगवान् की आत्मकल्याणकारी वाणी को सुनने के लिये

समवसरण में पहुँच जाते हैं।

जिस प्रकार सूर्य के पास अंधकार का प्रवेश होना असंभव है उसी प्रकार धर्म-सूर्य तीर्थकर के समवशरण में दूषित, संदेहपूर्ण, मिथ्याभिप्राययुक्त, हिताहित-विचारहीन (असंज्ञी), अन्द्राहीन, विभिन्न कुटिल अभिप्राय सहित जीवों का पहुँचना असंभव है। तीर्थकर भगवान् जगत हिताकांक्षी, विश्व बन्धु होने के कारण 'सर्वजनहिताय - सर्वजन सुखाय' का धर्मोपदेश देते हैं। विश्व-धर्म सभा में पूर्व वर्णितानुसार देव, दानव, मानव, पशु तक के लिये निर्बाध रूप से सदाकल द्वार खुला है। किसी भी जीव के लिये कभी भी प्रतिबंध नहीं है। परंतु जिस प्रकार स्वभावतः सूर्य के पास अंधकार का प्रवेश नहीं हो पाता है, उसी प्रकार मोहान्धकारी जीव का प्रवेश स्वभावतः समवशरण में नहीं होता है। कोटिरश्मि सूर्य किसी के प्रति भेद-भाव नहीं रखता है तो भी उल्लू को सूर्य-दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार बाह्य आकार-प्रकार में मनुष्य, देव, पशु, समान होते हुए भी जो अंतरंग में उल्लू के समान गुण द्वेषी, दोष रागी होते हैं उन्हीं को केवलज्ञान रूपी सूर्य का दर्शन नहीं होता है। जिस प्रकार गन्ना स्वभावतः सुगंधित, सुखादिष्ट होते हुए भी सुअर को रुचिकर नहीं लगता, परंतु मल को शोध करके खाएगा। उसी प्रकार भाव-कलुषित जीव समवशरण में धर्म के प्रति अरुचि के कारण नहीं जाता है। इस संदर्भ में एक प्रेरणास्पद रुचिकर उदाहरण दे रहा हूँ।

जब अहिंसा के अवतार, अन्तिम तीर्थकर महावीर भगवान् केवल बोध प्राप्त करने के बाद पुराण / इतिहास प्रसिद्ध सांस्कृतिक नगरी राजगृह के निकटस्थ विपुलाचल पर्वत पर विश्वधर्म सभा (समवशरण) में विराजमान होकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, विश्वमैत्री समता आदि का अमर संदेश विश्वमात्र को दे रहे थे तब उनकी अमृतमयी वाणी का आकण्ठ पान करने के लिए असंख्यात देव-दानव, मानव, वैर-विरोधी, हिंसक पशु तक प्रेम-मैत्री भाव से एक साथ समवशरण में भगवान् के मंगलमय अभय चरण कमल के समीप बैठे हुए थे।

देव लोगों को अवगत हुआ कि भगवान् महावीर की मौसी उपदेश सुनने के लिये नहीं आई है तो कुछ देव महावीर भगवान् की मौसी को समवशरण में लाने के लिये मौसी के पास पहुँचे। मौसी के पास पहुँच कर बोले- महावीर भगवान् का दिव्य संदेश सुनने के लिये आप भी चलिये तब मौसी पूछती है- कौन सा महावीर भगवान् है? देव लोगों ने उत्तर दिया- आपके ही वर्धमान, महावीर

है। देवों के उत्तर सुनकर बुढ़िया मौसी धृणा एवं द्वेष से बोलती है, वही पगला महावीर जो कि राजवैभव, भोग-उपभोग, ठाट-बाट छोड़कर नंगा होकर मारा-मारा जंगल में फिरता है। देव लोग बोले- महावीर भगवान् आत्मोद्धार और जगत् उद्धार के लिये समस्त बंधनों को काट कर आत्मसाधन के माध्यम से वर्धमान तीन लोक के पूज्य अरिहंत तीर्थकर बन चुके हैं। उनसे प्रभावित होकर विश्व की समस्त शक्तियाँ उनके मंगलमय चरण कमल में नम्र रूप से नतमस्तक हैं। उनके विश्व कल्याणकारी दिव्य संदेश से देव, दानव, मानव यहाँ तक कि पशु भी अनुप्राणित उद्बोधित हैं। उनके दिव्य संदेश एवं सान्निध्य मात्र से पतित भी पावन बन जाते हैं; जिस प्रकार पारसमणि के रूपसे लोहा भी स्वर्ण रूप से परिणमन हो जाता है। देवों की बात सुनकर दूषित मन वाली बुढ़िया मौसी बोलती है कि: 'जाओ-जाओ देखो हैं, आज कल का छोकरा है मेरे सामने ही पैदा हुआ और अभी पगले के समान वैभव त्याग कर उपदेशक बन गया है। जाओ जाओ! मैं नहीं आनेवाली हूँ।' तब देव लोग सोचे- इनको जबरदस्ती लेकर जाना चाहिये। जब देव लोगों ने उनको ले जाने के लिये बाध्य किया, तब धर्म के प्रति द्वेष रखनेवाली बुढ़िया मौसी दो सुई लेकर अपनी दोनों आँखे फोड़ डालती है, पुनः बोलती है लो अभी जबरदस्ती आप लोग मुझे ले जायेंगे किन्तु समवसरण पर अब आँख के अभाव से मैं दीन-हीन पगले महावीर को नहीं देखूँगी। देव लोग इस घटना से पश्चात्ताप कर एवं कुछ नवीन संदेश / प्रेरणा लेकर वापिस चले गये।

उपर्युक्त उदाहरण (किम्बदन्ती) से सिद्ध होता है कि समवशरण का द्वार सबके लिये मुक्त होने पर भी दूषित मन वाले मिथ्याग्रही, अभव्य, संदेहयुक्त जीवादि स्वभाव से ही समवशरण में नहीं जाते हैं।

अन्यत्र (विश्व धर्मसभा- कृति में) समवसरण का सविस्तार वर्णन किया गया है। समवशरण के मध्य में रिथत गंधकुटी में बारह सभा होती है, जिसमें मनुष्य देव, पशु आदि प्रेम से एक साथ अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठते हैं। उस बारह सभा के मध्य में जगतोद्धारक, धर्मोपदेशक तीर्थकर भगवान् सिंहासन के ऊपर चार अंगुल अधर में विराजमान होते हैं। गंधकुटी के बाह्य विभिन्न भाग में नाट्यशाला, प्रेक्षागृह, उपवन आदि होते हैं। जो सम्यक् दृष्टि भव्य दूषित मनोभाव से रहित निर्मल परिणाम वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव होते हैं, वे गंधकुटी में प्रवेश करके दिव्य अमर संदेश सुनते हैं। परंतु अन्यान्य जो जीव समवसरण में जाते

हैं, वे केवल गंधकुटी के बाह्य भाग में नृत्य, गीत, संगीत, नाटक आदि देखते हैं, कोई—कोई वन—उपवन में क्रीड़ा—विनोद करते हैं कोई—कोई कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर आनंद—प्रमोद करते हैं। इस प्रकार धर्म द्वेषी, दूषित मनवाले जीव समवसरण में जाते हुए भी गंधकुटी में जाकर दिव्य उपदेश नहीं सुनते, परंतु बाह्य भाग में मजा—मजलिश क्रीड़ा—राग—रंग में रम जाते हैं। परंतु जो धर्म प्रेमी, सत्य—जिज्ञासु, आत्म कल्याणकारी मुमुक्षु जीव होते हैं वे बाह्य राग—रंग में रमते नहीं। गंधकुटी में जाकर अमृतवाणी का पान करते हैं। समवसरण के वैभव मानसंभं—चैत्यवृक्ष आदि के दर्शन के बाद यदि दूषित मनोभाव दूर होकर निर्मल मनोभाव जागृत होकर, अहंकार दूर हो जाता है तब वह यथार्थ दृष्टिवाला होकर गंधकुटी में प्रवेश करके उपदेशमृत का पान कर सकता है।

गंधकुटी में स्थित किसी जीव के अंतस्थल में यदि कलुषित मनोभाव तीव्र रूप से जागृत हो जाता है तब भी वह जीव गंधकुटी में नहीं रह सकता है। यदि कलुषित मनोभाव शीघ्रतशीघ्र मन्द होकर पुनः निर्मल मनोभाव जागृत हो जाता है तब वह गंधकुटी में रह सकता है अन्यथा दीर्घकाल तक यदि तीव्र दूषित मनोभाव मन में जागृत रहता है तब वह निश्चित रूप से स्वयं ही स्वभाविक रूप से गंधकुटी से बाहर निकल जाता है। जिस प्रकार आँख में धूलकण गिरने के बाद जब तक धूल कण बाहर नहीं निकल जाता, तब तक आँख में आँसू निकलते रहते हैं और धूलकण निकलने के बाद आँसू स्वयं बंद हो जाते हैं। उसी प्रकार दूषित मनवाले जब तक गंधकुटी में रहते हैं तब तक अंतरंग—बहिरंग से प्राकृतिक रूप से प्रतिक्रिया चलती है जिससे वह गंधकुटी को छोड़कर बाहर निकल आता है।

जैसे जो तत्त्व समुद्र में धूल—मिलकर समुद्र रूप में परिणमन नहीं करता है उसको समुद्र स्वीकार नहीं करता है। वह उस विरोधी तत्त्व को बाहर फेंक देता है। उसी प्रकार जो जीव अंतः करण से, निर्मल भाव से सत्य धर्म को स्वीकार न करके दृष्टित मनोभाव के कारण सत्य धर्म विरोधी तत्त्व को मानता है, उसको स्वभावितः सत्य धर्म स्वीकार नहीं करता एवं उसे बाहर फेंक देता है।

तीर्थकर भगवान् राग—द्वेष से रहित होने के कारण किसी के ऊपर ममत्व नहीं करते तथा द्वेष भी नहीं करते हैं। परंतु जैसे वृक्ष के नीचे आनेवाले संतप्त पथिक को वृक्ष शीतल छाया दे देता है और नहीं आन वाले को नहीं देता है उसी प्रकार तीर्थकर भगवान् की संसारताप नाश करने वाली पवित्र छाया के

नीचे आने वाले (दिव्य संदेश के अनुसार चलनेवाले) संसार का ताप नाश करके चिरकाल तक सुख शांति प्राप्त करते हैं। जो पवित्र छाया के नीचे नहीं आते, वे संसार के ताप भोगते रहते हैं।

पर्यावरण, परिस्थिति, देश, काल, भाव आदि का सूक्ष्म, स्थूल, प्रगट एवं अप्रगट परिणाम दूसरे के ऊपर भी पड़ता है। जिस प्रकार कि वर्षाक्रतु में वर्षा, शीत क्रतु में शीत, ग्रीष्म क्रतु में उष्णता का प्रभाव पड़ता है। समुद्र तट में विशेष शीत एवं उष्णता की बाधा नहीं होती परंतु समशीतोष्ण परिस्थिति रहती है। उसी प्रकार समवशरण (गंधकुटी) में विशेष एक अलौकिक, आध्यात्मिक परिसर के कारण तथा अहिंसा, करुणा, प्रेम, सत्य की जीवन्त मूर्तिस्वरूप विश्वउद्धारक तीर्थकर के आध्यात्मिक अद्भुत महात्म्य से गंधकुटी में स्थित जीवों को आतंक, रोग, मरण, जन्म, वैर, यौन बाध, तृष्णा और क्षुधा की बाधाएँ भी नहीं होती हैं। उपर्युक्त बाधाएँ पाप, कर्म तथा दूषित मनोभाव से होती हैं परंतु तीर्थकर के प्रभाव से गंधकुटी में स्थित जीवों के मन में अहिंसा, प्रेम, मैत्री, वैराग्य आदि की पवित्र मंदाकिनी धारा बहती है जिससे उपर्युक्त बाधाएँ नहीं होती हैं।

### भ. महावीर संबंधी कुछ महत्वपूर्ण वर्णन

कुबेर की किमिच्छक घोषणा

विहारभिसुखे खेऽगाग्राज्जिनेन्द्रऽवतरिष्यति।

स्वर्गाग्रदिव भूलोकं समुद्रतु भवोदधेः॥1॥

हरिवंशपुराण ५९ सर्ग ॥४४ ६९४॥

गृह्णतां गृह्णतां काम्यं यथाकाममिहार्थभिः।

इति नित्यं धनेशेन धृष्टते काम घोषणा॥12॥

जिस प्रकार पहले संसार—समुद्र से प्राणियों को पार करने के लिये भगवान् स्वर्ग के अग्रभाग से पृथ्वी लोक पर अवतीर्ण हुए थे, उसी प्रकार जब विहार के लिए उद्यत हुये तब कुबेर ने निरंतर यह मनचाही घोषणा शुरू कर दी कि जिस याचक को जिस वस्तु की इच्छा हो वह यहाँ आकर उसे इच्छानुसार ले।

इच्छित वस्तु प्रदायी भूमि

कामदा कामवद् भूमिः कल्प्यते मणि कुट्टिमा।

मांगल्य विजयोद्योगे विभोः किं वा न कल्पयते॥3॥

उस समय कामधेनु के समान इच्छित पदार्थ प्रदान करनेवाली मणिमयी भूमि बनायी गयी। सो ठीक है क्योंकि भगवान् के मंगलमय विजयोदयोग के समय क्या नहीं किया जाता – अर्थात् सबकुछ किया जाता है।

### सर्वभूत हितकारी 4 महाभूत

महाभूतानि सर्वाणि भर्तुभूतहितोदयेमे।  
सर्वभूतहितानि स्युस्तादृशी खलु सार्वता॥4॥

जबकि भगवान् का समस्त भूतों-प्राणियों के हित के लिए उद्यम हो रहा था तब पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुरूप चार महाभूत भी समस्त भूतों-प्राणियों के हितकर हो गये सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् की सर्व हितकारिता वैसी ही अनूपम थी।

### धन की वर्षा

प्रावृषेण्याम्बुधारेव वसुधारा वसुंधराम्।  
दिवोऽन्यर्थामिधानत्वं नयतीन्यपत्यथि॥5॥

धन की बड़ी मोटी धारा वर्षा त्रुतु के मेघ की जलधारा के समान पृथ्वी के वसुंधरा नाम को सार्थकता प्राप्त कराती हुई आकाश से मार्ग में पड़ने लगी।

### सात-सात भव प्रदर्शक भास्मंडल

पश्यन्त्यात्म भगवान् सर्वे सप्त-सप्त परापरान्।  
यत्र तदभासते ऽन्यर्कं पश्चाद्भासण्डलं प्रभोः॥57॥

उसी पुण्यमण्डल में भगवान् के पीछे सूर्य को पराजित करने वाला भास्मण्डल सुशोभित होता था जिसमें सब जीव अपने आगे-पीछे से सात-सात भव देखते हैं।

### धर्म-चक्री की धर्म विजय का धर्म-चक्र

जिताकर्णो धर्मचक्राः सहस्रांगशुदीधितिः।  
याति देवपरीवारो वियतावितमोपहः॥72॥

जिसने अपनी प्रभा से सूर्य को जीत लिया था, जो हजार आरारूप किरणों से सहित था, देवों के समूह से विरा हुआ था और अत्यधिक अंधकार को नष्ट कर रहा था ऐसा धर्मचक्र आकाश मार्ग से चल रहा था।

### हर्षमय सर्व जीव

आधयो नैव जायन्ते व्याधतो व्यापयान्ति न।  
इतयश्चाज्ञया भर्तुर्नेति तद्देशमण्डले॥76॥

जिस देश में भगवान का विबहार होता था उस देश में भगवान् की आज्ञा न होने से ही मानो किसी को न तो आधि-व्याधि-मानसिक और शारीरिक पीड़ाएँ होती थीं और न अतिवृष्टि आदि इतियाँ ही व्याप्त होती थीं।

अन्धाः पश्यन्ति रूपाणि शृण्वन्ति वधिराः श्रुतिम्  
मूकाः स्पष्टे प्रभाषन्ते विक्रमन्ते च पङ्गवः॥

वहाँ अंधे रूप देखने लगते थे, बहरे शब्द सुनने लगते थे, गूंगे स्पष्ट बोलने लगते थे और लंगडे चलने लगते थे।

### सुखदायी प्रकृति

नात्युष्णा नातिशीताः स्युर्होरात्रादिवृत्तयः।  
अन्यच्चा, शुभमत्येति शुभं सर्व प्रवधते॥78॥

वहाँ न अत्याधिक गरमी होती थी, न अत्याधिक ठण्ड पड़ती थी, न दिन-रात का विभाग होता था, और न अन्य अशुभ कार्य अपनी अधिकता दिखला सकते थे। सब ओर शुभ ही शुभ कार्यों की वृद्धि होती थी।

त्रस स्थावरकाः सर्वे सुखं विन्दन्ति देहिनः।  
सैषा विश्वजनीना हि विभुता भुवि वर्तते॥185॥

भगवान् के विहार-क्षेत्रमें स्थित समस्त त्रस, स्थावर जीव सुख को प्राप्त हो रहे थे सो ठीक है क्योंकि संसार में विभुता वही है जो सबका हित करने वाली हो।

### जन्मजात वैरी में भी मित्रता

जन्मानुवध वैरो यः सर्वोऽहित कुलादिकः।  
तस्यापि जायते ऽर्ज्यं संगतं सुगताज्ञता॥86॥

जो साँप, नेवला आदि समस्त जीव जन्म से सही वैरे रखते थे उन सभी में भगवान् की आज्ञा से अखण्ड मित्रता हो गयी थी।

### सुगंध वयार

गन्धवाहो वहदूगन्धं भर्तुस्तं कथमानुयात्।

अचण्डः सेवते सेवां शिक्षयत्रनुजीविनः॥८७॥

भगवान् की बहुती हुई गंध को, पवन किस प्रकार प्राप्त कर सकता है इस प्रकार अनुजीवी जनों को सेवा की शिक्षा देता हुआ वह शांत होकर भगवान् की सेवा कर रहा था। भावार्थ— उस समय शीतल, मंद सुगंधित पवन भगवान् की सेवा कर रहा था सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह सेवक जनों को सेवा करने की शिक्षा ही दे रहा था।

### पशु से भी नमस्करणीय चतुरानन

दूराच्चाल्पधियः सर्वं नमन्ति किमुतेतरे।

चतुरास्यश्चतुर्दिक्षु छायादिर्गहतो विभुः॥९०॥

उस समय अन्य की तो बात ही क्या थी अल्पबुद्धि के धारक तिर्यच आदि समस्त प्राणी भगवान् को दूर से ही नमस्कार करते थे। भगवान् चतुर्मुख थे इसलिए चारों दिशाओं में दिखाई देते और छाया आदि से रहते थे।

शुभं यवो नमन्त्येत्याहयंवोऽपि प्रवादिनः।

अवसानादुभुतं चैतत्मिदर्दन्दं प्राभवं हि तत्॥१९२॥

जिनका कल्याण होने वाला था ऐसे प्रवाही लोग, अहंकार से युक्त होने पर भी आ-आकर भगवान् को नमस्कार करते थे। ठीक है क्योंकि उन जैसा प्रभाव अन्त में आश्चर्य करनेवाला एवं प्रतिपक्षी से रहित होता ही है।

### शान्ति उपचय हिंसा अपचय

पटूभवन्ति मन्दारश्च सर्वैर्हिं स्त्रास्त्वपर्धयः।

खेदस्वेदातिचिन्तादि न तेषामस्ति तत्क्षणे॥१०७॥

उस समय मंद बुद्धि मनुष्य तीक्ष्ण बुद्धि के धारक हो गये थे समस्त हिंसक जीव प्रभावहीन हो गये थे और भगवान् के समीप रहनेवाले लोगों को खेद, पसीना, पीड़ा तथा चिंता आदि कुछ भी उपद्रव नहीं होता था।

### विहार भूमि 5 वर्ष तक उपद्रव शून्य

विहारानुर्गहीतायां भूमौ न डमरादयः।

दशाभ्यस्तयुगं भर्तुरहोऽत्र महिमा महान्॥१०८॥

भगवान् विहार से अनुग्रहीत भूमि में दो सौ योजन तक विफ्लव आदि नहीं होते थे। अथवा दश से गुणित युग अर्थात् 50 वर्ष तक उस भूमि में कोई उपद्रव नहीं होते थे। भावार्थ— जिस भूमि में भगवान् का विहार होता था वहाँ 50 वर्ष तक कोई उपद्रव दुर्भिक्ष आदि नहीं होता था। यह भगवान् की बहुत भारी महिमा ही समझनी चाहिये।

### दिव्य ध्वनि

पूर्वभव में पवित्र विश्वमैत्री, विश्व-प्रेम, विश्व उद्धारक, सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय भावनाओं से प्रेरित होकर 16 भावनाओं को भाते हुए केवली श्रुत केवली के पवित्र पादमूल में विश्व को क्षुभित करने वाली तीर्थकर पुण्य प्रकृति को जो बीजरूप से संचय किये थे वही पुण्य कर्म रूपी बीज शनैः शनैः उल्कृष्ट योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूपी परिसह को प्राप्त करके 13वें गुणस्थान में ‘पूर्ण’ रूप से पुष्ट वृक्ष रूप में परिणमन करके अमित फल देने के लिये समर्थ हो जाता है। दिव्य ध्वनि उन फलों में से सर्वोल्कृष्ट फल है इस दिव्य ध्वनि की महिमा अचिंत्य, अनुपम, अलौकिक, स्वर्ग-मोक्ष को देने वाली है। दिव्य ध्वनि का सूक्ष्म वैज्ञानिक, भावात्मक, शब्दात्मक, उच्चारणात्मक, ध्वन्यात्मक विश्लेषण जैन आगम में पाया जाता है। दिव्य ध्वनि के अध्ययन से शब्द विज्ञान, भाषा, विज्ञान, ध्वनि आदि का सूक्ष्म सर्वांगीण अध्ययन हो जाता है। दिव्य ध्वनि को ॐ कार ध्वनि भी कहते हैं। दिव्य ध्वनि को विद्या अधिष्ठात्री देवी सरस्वती भी कहते हैं। दिव्य ध्वनि को चतुर्वेद, द्वादशांग, श्रुत, आगम आदि नाम से अविद्येय करते हैं। जैनागम में जिस प्रकार दिव्य ध्वनि का वर्णन है उस प्रकार वर्णन अभी तक देश-विदेश के अन्यान्य दर्शन धर्म, संप्रदाय, भाषा-विज्ञान, शब्द-विज्ञान, व्याकरण, मनोविज्ञान आधुनिक संपूर्ण विज्ञान के विभागों में मेरे को देखने में नहीं आया है। दिव्य ध्वनि का कुछ सविस्तर वर्णन प्राचीन आचार्यों के अनुसार निम्नलिखित उद्धृत कर रहे हैं।

जोयण प्रमाण संठिद तिरियामरमणुव णिवह पडिबोहो।

मिदु महुर गभीर तरा यिसद यिसद सयत भासांहि॥६०॥

अट्टास महासभा खुल्लय भासा यि सत्तसय संखा।

अक्खर अणक्खराय्य सण्णीजीवाण सयत भासाओ॥६१॥

एदासिं भासाणं तालुवं दतोट्ठ कंठ वावारं।

परिहरिय एकक कालं भव्यजणाणं दकर भासो॥62॥

दिव्य ध्वनि मृदु, मधुर, अति गंभीर और विषय को विशद करनेवाली भाषाओं से एक योजन प्रमाण समवशरण सभा में रिथत तिर्यच, देव और मनुष्यों के समूह को प्रतिबोधित करनेवाली है। संझी जीवों की अक्षर और अनक्षर रूप 18 महाभाषा तथा 700 छोटी (लघु) भाषाओं में परिणत हुई और तालु, दंत्य, ओष्ठ तथा कण्ठ से हलन-चलन रूप व्यापार से रहित होकर एक समय में भव्य जनों को आनंद कराने वाली भाषा दिव्य ध्वनि है।

गभीरं मधुरं मनोहरतं दोषव्यपेत हितं।

कठैष्टादि वचोनिमित्त रहितं नो वातारोधोदुगतम्॥

स्पष्टं तत्त्वं भीष्ट वस्तु कथकं निःशेष भाषात्मकं॥

दूरासन्नसमं निरूपमं जैनं वचः वातु वः ॥95॥

वह जिनेंद्र का वचन जो गंभीर है, मधुर है, अतिमनमोहक है, हितकारी है, कंठ-ओष्ठ आदि वचन के कारणों से रहित है, पवन के रोकने से प्रगट है, स्पष्ट है, परम उपकारी पदार्थों का कहनेवाला है, सर्वभाषाभाषी है, दूर व निकट में समान सुनाई देता है, वह उपमा रहित है सो वह श्रुत हमारी रक्षा करें।

जिस प्रकार जल वृष्टि के समय में जल का रस, गंध, वर्ण एवं स्पर्श एक समान होते हुए भी विभिन्न मिट्टी के संपर्क से उसमें विभिन्न परिणमन होता है। लाल मिट्टी के संपर्क से जल लाल हो जाता है। काली मिट्टी के संपर्क से जल काला हो जाता है उसी प्रकार दिव्य-ध्वनि रूपी जल में विभिन्न भाषा-भाषी श्रोताओं के कर्ण रूपी मिट्टी में प्रवेश होने के बाद उस-उस भाषा रूप में परिणमन हो जाता है। जिस प्रकार वृष्टि जल का रस एक समान होते हुए भी विभिन्न वृक्ष में प्रवेश करके विभिन्न रस, रूप परिणमन कर लेता है; जैसे गन्ना के वृक्ष में प्रवेश करने से जल मधुर रस रूप होता है, नीम के वृक्ष में प्रवेश करके कड़वा (तिक्त) रस रूप होता है। मिर्च के वृक्ष में प्रवेश करके चरपरा रूप होता है। इमली के वृक्ष में प्रवेश करके खट्टा रस रूप परिणमन कर लेता है उसी प्रकार दिव्य ध्वनि रूपी जल विभिन्न भाषा-भाषियों के कर्ण (गव्हर) में प्रवेश करके विभिन्न भाषा रूप में परिणमन कर लेता है।

जो भी श्रोता संस्कृत भाषी है उसके कर्ण गव्हर में (कर्ण पुटमें) जाकर संस्कृत रूप में हिंदी भाषी श्रोता को निमित्त पाकर हिंदी भाषा रूप में, कन्नड़ भाषी श्रोता को निमित्त पाकर कन्नड़ भाषा रूप में, परिणमन कर लेती है। जिस प्रकार वर्तमान वैज्ञानिक युग में एक यंत्र का आविष्कार हुआ है; जिस यंत्र के माध्यम से भाषा परिवर्तित हो जाती है। एक वक्ता इंग्लिश में भाषण कर रहा है और एक हिंदी भाषी श्रोता उस वैज्ञानिक यंत्र का प्रयोग करके इंग्लिश भाषा को परिवर्तित करके हिंदी में सुन सकता है।

उस समवसरण रूपी धर्म महासभा में असंख्यात देव, करोड़ अवधि मनुष्य, लाक्षावधि पशु विनम्र भाव से मित्रता से एक साथ बैठकर उपवेश सुनते हैं। दिव्य ध्वनि निश्रुत होकर पशु के कान में पहुँचने पर वह दिव्य ध्वनि पशु की भाषा रूप में परिवर्तित हो जाती थी।

दिव्य ध्वनि देवों के कान में पहुँचकर देव भाषा रूप परिणमन कर लेती है। इसलिए दिव्य ध्वनि वक्ता की अपेक्षा निश्रुत अवस्था में एक होते हुए भी विभिन्न श्रोताओं के निमित्त से विभिन्न भाषा रूप में परिणमन करने के कारण अनेक स्वरूप हैं, इसलिए दिव्य ध्वनि अठारह महाभाषा तथा सात सौ लघु (क्षुद्र) भाषा स्वरूप है।

अनंतर भाव श्रुतरूप पर्याय से परिणत उस इंद्रभूति ने 12 अंग और 14 पूर्व रूप ग्रन्थों की एक ही मुहूर्त में क्रम से रचना की। अतः भावश्रुत और अर्थपदों के कर्ता तीर्थकर हैं। तथा तीर्थकर के निमित्त से गौतम गणधर श्रुतपर्याय से परिणमन हुए। इसलिए द्रव्यश्रुत के कर्ता गौतम गणधर हैं। इस तरह गौतम गणधर द्वारा ग्रन्थ रचना हुई।

जिस प्रकार जलवृष्टि होने के पश्चात् वह जल नदी में श्रोत रूप में बहकर जाता है। उस जल को जीवनोपयोगी बनाने के लिए इंजिनियर नदी में बाँध बाँधकर पानी को संचित करते हैं, उस पानी को बड़े-बड़े पानी पाइप के द्वारा वहन करके पानी टंकी में संचित करते हैं। पुनः छोटे-छोटे नलद्वारा नगर, गली, घर आदि में पहुँचाते हैं। घर में जो पानी पहुँचता है उसको नल का पानी कहते हैं। वस्तुतः पानी नना का नहीं है। नल का पानी जलकुंड से आया एवं जलकुंड का पानी नदी से आया और नदी का पानी वृष्टि से आया। अतः निश्चय से जिसको हम नल का पानी कहते हैं वह पानी वृष्टि का है। इसी प्रकार दिव्य ध्वनि रूपी जल

सर्वज्ञ भगवान् से निर्झरित होता है उस महान् श्रोत को साधारण जनोपयोगी बनाने के लिए गणधर रूपी इंजिनियर ग्रंथ (आगम) रूपी डेम (कृत्रिम जलाशय) में संचित करते हैं। जिस प्रकार एक भाषणकर्ता बहुजन के मध्य में भाषण करता है उस भाषण को सर्व श्रोताओं के समीप पहुँचाने के लिए माइक, लाउडस्पीकर का प्रयोग किया जाता है। भाषणकर्ता जो भाषण करता है वही भाषण वह यंत्र ग्रहण करके इलेक्ट्रोमेग्नेटिक वेव में परिवर्तित करके लाउडस्पीकर तक पहुँचा देता है और लाउडस्पीकर उस इलेक्ट्रोमेग्नेटिक देव को भाषा रूप में परिवर्तित कर देता है। जिससे दूर दूरस्थ श्रोता लोग भी भाषण को स्पष्ट रूप से सुनने में समर्थ होते हैं। वस्तुतः भाषण विषय, भाषणकर्ता का होते हुए भी साधारण भाषा में साधारणतः लाउडस्पीकर का शब्द है कहा जाता है। उसी प्रकार दिव्य ध्वनि वस्तुतः तीर्थकर से निर्झरित होती है। जिसे गणधर देवों के द्वारा योग्य रीति से जन-जन तक पहुँचाया जाता है।

### दिव्य ध्वनि का महत्व

महान् आध्यात्मिक क्रांतिकारी संत कुन्दकुन्दाचार्य दिव्य ध्वनि का अलौकित, अनुपम, अद्वितीय महत्व बताते हुए अष्ट पाहुड़ में निम्न प्रकार वर्णन करते हैं—

**जिणवयण मोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।**

**जरमरण वाहि हरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥17॥**

जिनेंद्र भगवान के अनुपम वचन महान् औषधि सदृश हैं। जिस प्रकार महौषधि सेवन से शारीरिक रोग नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार दिव्य ध्वनि रूपी महौषधि सेवन से मानसिक आध्यात्मिक एवं सांसारिक रोग नष्ट हो जाते हैं। विषय महाविष तुल्य है। विष वेदना दूर करने के लिये आयुर्वेद के अनुसार पहले विष रोगी को विरेचन औषधि देकर (वमन) वांति कराते हैं, उसी प्रकार विषय सुख रूपी विष को वांति कराने के लिए जिनेंद्र वचन महौषधि स्वरूप है, लोकोक्ति है अमृतपान करने से जीवन अजरामर हो जाता है। वस्तुतः दिव्यध्वनि ही वचनामृत है, इस वचनामृत को जो पान करता है वह जन्म, जरा, मरण एवं आदि व्याधि-उपाधि से रहित होकर शाश्वतिक अमृत तत्व (मोक्ष तत्व) को प्राप्त कर लेता है। संपूर्ण दुःखों को कारण अज्ञान, मोह, कुचारित्र है। दिव्यध्वनि के माध्यम से अज्ञान, मोह रूपी अंधकार नष्ट होने से जीव के अंतःकरण में ज्ञानरूपी ज्योति प्रज्ज्वलित हो जाती है जिससे अज्ञान आदि अंधकार नष्ट हो जाता है, आध्यात्मिक

ज्योति से जीव यथार्थ सुखमार्ग को पहचान कर तदनुकूल आचरण करता है, जिससे शाश्वतिक सुख प्राप्त होता है और समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं। इसलिए कुंद-कुंद स्वामी कहते हैं— यह दिव्यध्वनि ‘तिहुण हिद-मधुर-विसद-वक्काण’ अर्थात् त्रिभुवन हितकारी, मधुर विषद स्वरूपा है।

### देवकृत तेरह अतिशय

1. तीर्थकरों के महात्म्य से संख्यात योजनों तक वन प्रदेश असमय में ही पत्रों, फूलों एवं फलों से परिपूर्ण, समृद्ध हो जाता है।
2. कांटों और रेती आदि को दूर करती हुई सुखदाय वायु प्रवाहित होती है।
3. जीव पूर्व वैर को छोड़कर मैत्री-भाव से रहने लगते हैं।
4. उतनी भूमि दर्पणतल सदृश स्वच्छ एवं रलमय हो जाती है।
5. सौधर्म इंद्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगंधित जल की वर्षा करता है।
6. देव विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शालि और जौ आदि सस्य की रचना करते हैं।
7. सब जीवों को नित्य आनंद उत्पन्न होता है।
8. वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलाता है।
9. कूप और तालाब आदि निर्मल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं।
10. आकाश धुआँ एवं उल्कापातादि से रहित होकर निर्मल हो जाता है।
11. संपूर्ण जीव रोगबाधाओं से रहित हो जाते हैं।
12. यक्षेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों की भाँति उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्मचक्रों को देखकर मनुष्यों का आश्चर्य होता है। तथा—
13. तीर्थकरों की चार दिशाओं (विदिशाओं) में छप्पन स्वर्ण कमल, एक पाद-पीठ और विविध दिव्य पूजन द्रव्य होते हैं।

तीर्थकर के महान् पुण्य प्रताप से तथा आध्यात्मिक वैभव से प्रेरित, अनुप्राणित होकर तथा तीर्थकर के विश्वकल्याणकारी अमर संदेश को प्रचार-प्रसार करने के लिये देवलोग भी सक्रिय भाग लेते हैं। उसके लिए समवसरण की रचना के साथ-साथ कुछ महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य करते हैं, उसको देवकृत अतिशय कहते हैं।

### 18 दोषरहित तीर्थकर महावीर

जो स्वयं धनी होता है वह दूसरों को धन दे सकता है, जो स्वयं निर्धन होते

हैं वे दूसरों को धन कैसे दे सकते हैं ? इस प्रकार जो स्वयं धर्म, ज्ञान, चरित्र, अहिंसा, सत्य, समता के धनी होते हैं वह दूसरों को धर्म ज्ञानादिक वितरण कर सकते हैं। दृष्टिवस्त्र को स्वच्छ करने के लिए स्वच्छ जल, सोडा आदि की जम्बरत होती है। परंतु अस्वच्छ वस्त्र को स्वच्छ करने के लिए यदि गंदी नाली का पानी, प्रयोग करेंगे तब वह वस्त्र स्वच्छ के विपरीत अस्वच्छ ही अधिक होगा। अतः पतित, पापी, दोषी कलंकित, जीवों को पावन, पवित्र, मंगल, निर्दोष, अकलंकित धर्मात्मा बनाने के लिये एक अत्यंत पवित्र, निर्दोष, निष्कलंक धर्म तीर्थ प्रवर्तक नेता की अत्यंत आवश्यकता होती है।

स्वच्छ दर्पण (आदर्श) से अपने मुख का अवलोकन करके मुख के ऊपर लगे हुए कलंक को हटा सकते हैं, परंतु अस्वच्छ दर्पण से अपने मुख का यथार्थ अवलोकन नहीं हो सकता है। उसके कारण मुख के कलंक को मिटा भी नहीं सकते हैं, परंतु स्वच्छ दर्पण जो स्वयं निष्कलंक होकर आदर्श (अनुकरणीय) होता है वह दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। अतः जो धर्म प्रचारक—प्रसारक उन्नयनकारी नेता होते हैं उनका स्वयं निर्दोष होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, इसलिए धर्म प्रचारक तीर्थकर 18 दोषों से रहित होते हैं। जो मानव 18 दोषों से रहित होते हैं वे ही आप्त, तीर्थकर, अरिहंत भगवान्, धर्म संस्थापक, धर्मोपदेशक, केवलि, सत्यदृष्टा, परम ब्रह्म, परमात्मा होते हैं। भगवान् का स्वरूप बताते हुए महान् तार्किक दार्शनिक, महान प्राज्ञ, समंतभद्र स्वामी ने निम्न प्रकार से वर्णन किया है—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।  
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा स्याप्तता भवेत्॥५॥

जो वीतरागी (मोह, ममता, आसक्ति से रहित) सर्वज्ञ (चराचर विश्व को जाननेवाला) हितोपदेशी (कल्याणकारी उपदेश देने वाला) होते हैं वे ही यथार्थ से देव कहलाते हैं, किंतु जो रागी (मोही, ममत्व वाला) असर्वज्ञ और अहितोपदेशी होते हैं वे यथार्थ से देव नहीं हो सकते। पुनः आचार्य श्री ने सच्चे देव का लक्षण बताते हुए दोषरहितता निम्न प्रकार बताये हैं—

क्षुत्पिपासाजरातंक-जन्मान्तक-भय-स्मयाः।  
न रागदेष्मोहाश्च, यस्याप्त सः प्रकीर्तते॥६॥

(1) भय (2) प्यास (3) बुद्धापा (4) रोग (5) जन्म (6) मरण (7) भय

(8) गर्व (9) राग (10) द्वेष (11) मोह (12) आश्चर्य (13) अरति (14) खेद (15) शोक (16) निद्रा (17) चिंता (18) स्वेद। इन 18 दोष से रहित होता है उसे आप्त (धर्मोपदेशक, तीर्थकर) कहते हैं।

### 5. भगवान् महावीर का मोक्ष (निर्वाण) कल्याणक

तीर्थकर भगवान् महावीर केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद विश्वकल्याणार्थ विभिन्न देशों में 30 वर्ष तक विहार करते हुए सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, विश्वमैत्री, समता का पाठ पढ़ाते हुए अंत में पावापुर नगर में पहुँचे। वहाँ के मनोहर नामक वन के भीतर अनेक सरोवरों के बीच मणिमय शिला पर विराजमान हुए। विहार एवं उपदेश को छोड़कर कर्मों की निर्जरा को बढ़ाते हुए दो दिन तक वहाँ योग निरोध करके विराजमान हुए। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन रात्रि के अंतिम समय स्वाति नक्षत्र में अतिशय दैदीश्यमान तृतीय शुक्लध्यान में स्थित हुए। तदनंतर समस्त योग निरोध करके समुच्छन्न क्रिया प्रतिपाति नामक चतुर्थ शुक्ल ध्यान के माध्यम से बचे हुए चारों अधातिया कर्मों का क्षय कर शरीर से भी रहित होकर जीवन के अंतिम ध्येय स्वरूप मोक्ष को प्राप्त किये। वह वर्ष इसा पू. 527 या विक्रम पू. 470 संवत्सर है। जिसके उपलक्ष्य में महावीर निर्वाण संवत्सर प्रारम्भ हुआ। वर्तमान में प्रचलित प्रसिद्ध संवत्सर में ‘महावीर निर्वाण संवत्सर’ सबसे प्राचीन है। इन्द्रादिदेव आकर भगवान् महावीर का निर्वाण कल्याणक बहुत उत्सहस्रित मनाते हैं। उसीदिन उनके सर्वश्रेष्ठ शिष्य गौतम गणधर को केवलज्ञान प्रगट हुआ। भगवान् महावीर के निर्वाण महोत्सव एवं गौतम गणधर के केवलज्ञान महोत्सव के उपलक्ष्य में देवादि ने दीपमालिका प्रज्ञलित करके उत्सव मनाया। यही उत्सव अभी तक दीपोत्सव या दीपावली के नाम से प्रसिद्ध है।

निर्वाण के बाद भगवान् महावीर स्वाभाविक ऊर्ध्वगति से एक समय में पृथ्वी से 7 राजू (प्रायः असंख्यात कि.मि.) सिन्धु शिला के ऊपर लोकाग्र में जाकर शाश्वतिक रूप से रिथर हो गये। वहाँ वे अनंतकाल तक आत्मोत्थ, अव्यावाध, अतीन्द्रिय, परनिरपेक्ष, शाश्वतिक, विज्ञानघनस्वरूप आनंद का अनुभव करते हुए आगामी अनंतकाल तक विराजमान रहेंगे। वे पुनः संसार में परिभ्रमण करने के लिए वापिस नहीं आयेंगे; क्योंकि संसार में वापिस आने के कारणाभूत समस्त द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मों को निमूल रूप से विध्वंश कर दिये हैं। वे अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य, अव्यावाध, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व आदि अनंत गुणों का अखण्ड पिण्ड स्वरूप विश्व के ज्ञाता दृष्टा के रूप में विराजमान रहेंगे।

## सिद्ध भगवान का स्वरूप

**णदुद्धकम्मदेहो लोयात्तोयस्स जाणओ दद्वा।  
पुरिसायारो अप्पा सिद्धोज्ञाएद्दलोयसिहरत्यो॥५१॥(द्र.सं.)**

नष्ट हो गया है अष्टकर्म रूप देह जिसके लोकाकाश तथा अलोकाकाश का जानने देखने वाला, पुरुष के आकार का धारक और लोक के शिखर पर विराजमान ऐसा जो आत्मा है, वह सिद्ध परमेष्ठी है इस कारण तुम उसका ध्यान करो।

जिस मनुष्य शरीर से यह जीव मुक्त होता है वह उस जीव का अंतिम शरीर कहलाता है। उसी को चरम शरीर कहते हैं। मुक्त होने पर इस जीव का आकार चरम शरीर के आकार से भिन्न आकार नहीं हो सकता, न तो वह समस्त लोक में व्यापक हो सकता है और न वटवृक्ष के बीज के समान अणुमात्र ही हो सकता है। क्योंकि वहाँ आकार बदलने का कोई कारण नहीं है। किंतु अंतिम शरीर के परिमाण से कुछ आकार कम होने का कारण है, और वह यह है कि संसार परिभ्रमण में इस जीव का आकार कर्मों के उदय से बदलता था। अब कर्मों के नष्ट हो जाने से आकार बदलने वाला कोई कारण नहीं रहा, तथा उसका परिमाण अंतिम शरीर से कुछ कम रहता है। क्योंकि शरीर के जिन-जिन भागों में आत्मा के प्रदेश नहीं है उतना परिमाण घट जाता है। शरीर के भीतर पेट, नाक, कान आदि भाग ऐसे हैं जिनमें पोले भागमें आत्मा के प्रवेश नहीं है। इसलिये आचार्य कहते हैं कि अन्य ऐसे कारण हैं जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि मुक्त जीव का परिमाण अंतिम शरीर के परिमाण से कुछ कम है। यह कभी आकार की अपेक्षा से नहीं है, किंतु घन फल की अपेक्षा से है, तथा मुक्त अवस्था में जीव का आकार अंतिम शरीर के समान अत्यंत दैवीयमान रहता है।

एवं शब्द निश्चयवाचक है और 'हि' शब्द स्पष्टता सूचित करने के लिये है, इससे सिद्ध होता है कि मुक्त अवस्था में जीव का आकार अंतिम शरीर के आकार है और उनका परिमाण अंतिम शरीर से कुछ कम है। मुक्त जीव का यह आकार और यह परिमाण निश्चित है और स्पष्ट है। इसके सिवाय अन्य कोई आकार तथा अन्य कोई परिमाण हो नहीं सकता। इसके सिवाय मुक्त अवस्था में वह शुद्ध आत्मा अमूर्तिक रहता है। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द रूप पुद्गल परिणाम को मूर्ति कहते हैं। ऐसी मूर्ति जिसके न हो उसको अमूर्ति कहते हैं। सिद्धों में रूप, रस, गंध, स्पर्श रूप मूर्ति नहीं है इसलिये वे अमूर्ति स्वरूप हैं। अथवा अमूर्ति

भी पाठ है। जिनके ऐसी मूर्ति न हो उनको अमूर्त कहते हैं। उन सिद्ध परमेष्ठी की परिणाम रूप, रस, गंध, स्पर्श स्वरूप नहीं हैं इनसे सर्वथा रहित है। इसलिये वे अमूर्त हैं।

इसके सिवाय वे भगवान् क्षुधा, तृष्णा, श्वास, कास, दमा ज्वर, मरण, जरा (बुढ़ापा), अनिष्ट योग, मोह, अनेक प्रकार की आपत्तियों से युक्त ऐसे संसार के परिभ्रमण को उन सिद्ध भगवान् ने नाश कर दिया है। अथवा कर्मों के नाश होने से वह संसार अपेने नष्ट हो गया है। उस संसार के नष्ट होने से सिद्धों को अनंत सुख की प्राप्ति हो गई है। उस सुख का परिमाण भला कौन कर सकता है, अर्थात् कोई नहीं। सिद्धों का सुख अनंत है। उनका परिमाण कभी किसी से नहीं हो सकता।

## सिद्धों का सुख

भगवान् सिद्ध परमेष्ठी के जो सुख होता है वह केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है। अन्य किसी प्रकृति आदि से उत्पन्न नहीं होता इसलिये वह सुख अनित्य नहीं होता वह सुख स्वर्य अतिशय युक्त होता है। समस्त बाधाओं से रहित होता है। अत्यंत विशाल वा विस्तीर्ण होता है। आत्मा के समस्त प्रदेशों में व्याप्त होकर कभी न घटता है न बढ़ता है। वृद्धि और हास दोनों से रहित होता है। जिस प्रकार सांसारिक सुख विषय से उत्पन्न होता किन्तु मोक्ष सुख सब प्रकार के विषयों से रहित स्वभाविक होता है। सुख का प्रतिद्वन्द्वी दुःख है तथा सांसारिक सुख उन दुःखों से मिला हुआ है। परंतु सिद्धों का सुख सदा सुख रूप ही रहता है। जीवों का सुख, सातावेदनीय कर्म के उदय से होता है तथा पुष्पमाला, चंदन, भोजन आदि बाह्य सामग्री से उत्पन्न होता है परंतु सिद्धों का सुख उपमा रहित है, अनंत है; विनाश रहित है और इसलिये वह सदा बना रहता है। वह सुख परम सुख कहलाता है। अर्थात् इन्द्रादिके सुख से भी अत्यंत अतिशय युक्त या बढ़कर है। जिन सिद्धों का लक्षण वा उनके गुण पहले निरूपण कर चुके हैं और जो लोकाकाश के अग्रभाग पर विराजमान है, ऐसे सिद्धों का अनंत सुख ऊपर लिखे अनुसार होता है। अभिप्राय यह है कि सिद्धों का सुख संसारी जीवों के सुखों से अत्यंत विलक्षण है। सिद्धों का सुख वास्तविक सुख है और इसलिए वह सर्वोत्तम है।

## मुकात्मा का सुख

**कृतकृत्यः परमपदे, परमात्मा सकल-विषय विरक्तात्मा।  
परमानन्द-निमग्नो, ज्ञानमयो नन्दति सदैव॥२२४॥(पुरुषार्थ)**

परम पद स्वरूप प्रकृष्टि सिद्धि पद में वह परम पुरुष / परमात्मा / शुद्धात्मा कृतकार्य होकर, सकल विषय से विरक्त होकर परमानंद में अर्थात् अनन्त सुख में लीन रहता है। वह परमात्मा पूर्णतया ज्ञानघन होकर मुक्त अवस्था में विराजमान होता है।

कर्मबन्ध से रहित होने के बाद जीव के संपूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्त भूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वाभाविक भाव नष्ट नहीं होते परंतु स्वाभाविक भाव पूर्ण शुद्ध रूप में प्रगट हो जाते हैं। तत्त्वार्थ सार में कहा भी है— वे सिद्धि भगवान् ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते हैं, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवल दर्शन से सहित होते हैं, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्याबाधत्वगुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नाम कर्मका उच्छेद होने से सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त हैं, गोत्रकर्म का विनाश होने से सदा अगुरुलघुगुण से सहित होते हैं और अन्तराय कर्म नाश होने से अनन्त वीर्य को प्राप्त होते हैं।

वे सिद्धि भगवान् तादत्य संबंध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपर्युक्त रहते हैं तथा सम्यक्त्व और सिद्धत्व अवस्था को प्राप्त हैं। हेतुका अभाव होने से वे निःक्रिया / क्रिया से रहित हैं।

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोक्त्स्त है ऐसा परमक्रियों ने कहा है।

**प्रश्न-** शरीर रहित सिद्धों के सुख किस प्रकार हो सकता है?

यदि कोई प्रश्न करे कि शरीर रहित एवं अष्टकर्मों को नष्ट करनेवाले मुक्तजीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है, सुनो! इस लोक में विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहाँ विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ। यहाँ वेदना के अभाव में सुख शब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्यकर्म के उदय से इंद्रियों के इष्ट पदार्थों से सुख उत्पन्न हुआ है। यहाँ विपाक-कर्मोदय में सुख शब्द का प्रयोग है। और कर्मजन्य क्लेश से छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

कोई कहते हैं कि निर्माण सुषुप्त अवस्था के तुल्य है परंतु उनका वैसा कहना अयुक्त है— ठीक नहीं है क्योंकि मुक्त जीव क्रियावान् है जबकि सुषुप्तावस्था में कोई क्रिया नहीं होती तथा मुक्तजीव के सुख की आर्थिकता है जबकि सुषुप्त अवस्था में सुख का रंचमात्र भी अनुभव नहीं होता है। सुषुप्तावस्था की उत्पत्ति श्रम, खेद, नशा, बीमारी और कामसेवन से होती है तथा उसमें दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से मोह की उत्पत्ति होती रहती है जबकि मुक्त जीव के यह सब संभव नहीं हैं। मुक्तजीव का सुख निरूपम है—

समस्त संसार में उसके समान अन्य पदार्थ नहीं हैं जिसके कि मुक्तजीवों के सुख की उपमा दी जा सके, इसलिये वह निरूपम माना गया है। लिंग अर्थात् हेतु से अनुमान में और प्रसिद्धि से उपमा में प्रमाणिकता आती है, परंतु मुक्तजीवों का सुख अलिंग है। हेतु रहित है तथा अप्रसिद्ध है। इसलिये वह अनुमान और उपमान प्रमाण का विषय न होकर अनुपम माना गया है।

अर्हन्त भगवान् की आज्ञा से मुक्तजीवों का सुख माना जाता है।

मुक्त जीवों का वह सुख अर्हत भगवान् के प्रत्यक्ष और उन्हीं के द्वारा उसका कथन किया गया है इसलिये वह है इस तरह विद्वज्जनों के द्वारा स्वीकृत किया जाता है, अज्ञानी जीवों की परीक्षा से वह स्वीकृत नहीं किया जाता।

कुंद कुंद देव ने पंचास्तिकाय में कहा भी है, सिद्धत्व अवस्था में जीव के स्वाभाविक गुणों का अभाव नहीं होता है, परंतु स्वाभाविक गुण पूर्ण क्षुद्र रूप से पूर्व विकसित होकर अनन्त काल तक विद्यमान रहते हैं। यथा—

सिद्धों के वास्तवमें द्रव्यप्राण के धारण स्वरूप जीव स्वभाव मुख्य रूप से नहीं है, जीव स्वभाव का सर्वथा अभाव भी नहीं है, क्योंकि भाव प्राण के धारण स्वरूप जीव स्वभाव के मुख्य रूप से सद्भाव और उन्हें शरीर के साथ नीरक्षीर की भाँति एकरूप वृत्ति नहीं है, क्योंकि शरीर संयोग के हेतु भूत कषाय और योग का वियोग हो गया है। इसलिये वे अतीत शरीर, प्राण, अवगाहरूप परिणत होने पर भी अत्यंत देह रहित हैं और वचनोपमतीत उनकी महिमा है, क्योंकि लौकिक प्राण के धारण बिना और शरीर के संबंध बिना संपूर्ण रूप से प्राप्त किये हुए निरूपाधि स्वरूप के द्वारा वे सतत् प्रतपते हैं।

जैसे सूर्य अपने विषयगोचर सब पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है वैसे ही केवलज्ञान सब पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है।

## भगवान् महावीर के पूर्वभव की कुछ झाकियाँ

विश्व अनादि अनिधन एवं शाश्वतिक है। इसीलिए विश्व के प्रत्येक शुद्ध द्रव्य अनादि अनिधन अर्थात् शाश्वतिक है। क्योंकि द्रव्यों का समूह ही विश्व है। विश्व में जो 6 मौलिक द्रव्य यथा (1) जीव (2) पुद्गल (3) धर्म (4) अधर्म (5) आकाश एवं (6) काल हैं; उनमें से धर्म, अधर्म, आकाश काल नित्य शुद्ध होने के कारण उसमें जो कुछ परिवर्तन होते हैं वे सब शुद्ध रूप में ही तन्मय होकर के होते हैं; परंतु जीव एवं पुद्गल नित्य, शाश्वतिक शुद्ध रूप में नहीं होते हैं। पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा शुद्ध परमाणु, शुद्ध द्रव्य है जो योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि को प्राप्त करके द्विअणुक आदि स्कन्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है। पुनः योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को प्राप्त करके अणुरूप में परिणमन करके शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार शुद्ध एवं अशुद्धता का क्रम पुद्गल में सतत् रूपसे चलता रहता है। किन्तु जीव अनादिकाल से स्वैभाविक परिणाम के कारण पुद्गल परमाणु के संश्लेष सम्बन्ध से जीव में जो जैविक-रासायणिक प्रक्रिया होती है वह कर्म सिद्धान्त के अनुसार कर्मास्रव, बंध, सत्ता, उदय, निर्जरा आदि रूप में अभिहित है। उससे अशुद्ध होकर संसार में विभिन्न गति, जाति, लिंग, योनि में परिभ्रमण करता रहता है। इसे ही जीव की अशुद्ध अवस्था, संसारावस्था, दुःख अवस्था कहते हैं। पूर्वोक्त सिद्धान्त के अनुसार-

### 1. पुरुरवा भील की पर्याय में भगवान् महावीर

भगवान् महावीर का जीव भी अनादि काल से संसार एवं अनेक योनियों में परिभ्रमण करते-करते महावीर भगवान् बनने के अनेकों भव पहले विश्व के मध्य लोक में सबसे पहला एवं मध्य के द्वीप जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर पुष्कलावती नामक देश की पुण्डरीकिणी नगरी में एक मधु नामके वन में पुरुरवा नामक भीलरूप में जन्म लिया था। उसकी स्त्री का नाम कालिका था। उस वन में सागरसेन नामधारी एद दिग्म्बर जैन संत इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे; उन्हें देखकर पुरुरवा भील उन्हें मृग समझकर उन्हें मारने के लिए उद्यत हुआ; परन्तु उसकी स्त्री ने यह कहकर मना कर दिया कि ये वन के देवता धूम रहे हैं इन्हें मत मारो। यह सुनकर पुरुरवा भील उसी समय प्रसन्नचित होकर उन मुनिराज के पास गया और श्रद्धा से नमस्कार कर उनसे उपदेश सुनकर शांत हो गया। जैन संतने उसके जीवन को सुधारने के लिए मधु,

माँस, मद्य का त्याग करने के लिए प्रेरित किया जिससे उस भील ने प्रसन्नतापूर्वक व्रतों को लेकर जीवन-पर्यन्त उन व्रतों का अच्छी तरह पालन किया। इन व्रतों के कारण वह भील मर करके सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु वाला देव हुआ। इससे सिद्ध होता है कि पापी से पापी जीव भी सत्संगति के प्रभाव से पाप का त्याग करके आत्मा का विकास कर सकता है। और नीच से नीच जाति वाले भी साधु-संत के उपदेश सुनकर उनसे व्रत ले सकते हैं। साधु-संत भी “उदार पुरुषाणां वसुधैव कुटुम्बकम्” के अनुसार प्रत्येक जीव को समता की दृष्टि से देखते हैं और उनके उद्धार के लिए यथायोग्य उपाय बताते हैं।

### 2. आदि तीर्थकर ऋषदेव के पौत्र एवं आदि चक्रवर्ती भरत के पुत्र के रूप में भगवान् महावीर का जीव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी आर्य क्षेत्र में कौशल नामक देश में विनीता (अयोध्या) नामकी नगरी थी। वह देश धन-धान्य, उत्तमजन, शिक्षा, सम्यता-संस्कृति समृद्धि से सम्पन्न था। यथा-

विद्याभ्यासाद्विना शत्यं विना भोगेन यौवनम्।  
वार्धक्यं न विना धर्माद्विनान्तोऽपि समाधिना॥३७॥  
नावबोधः क्रिया शून्यो न क्रिया कलवर्जिताः।  
अभुक्तं न फलं भोगे नार्थधर्मद्वयच्युतः॥३८॥

(महापु. पृ. 445)

वहाँ पर बिना विद्याभ्यास के बालक अवस्था व्यतीत नहीं होती थी, बिना भोगों के यौवन व्यतीत नहीं होता था, बिना धर्म के बुद्धापा व्यतीत नहीं होता था और बिना समाधि के मरण नहीं होता था। वहाँ पर किसी का भी ज्ञान क्रिया-रहित नहीं था, क्रिया फलरहित नहीं थी, फल बिना उपभोग के नहीं था और भोग अर्थ तथा धन दोनों से रहित नहीं था।

इसीलिए तो भारत अत्यन्त ही प्राचीनकाल से विश्वगुरु रहा; इसीलिए तो भारत सोने की चिड़िया कहलाया और यह किंवदन्ती प्रचलित हुई कि भारत में दृथ घी की नदियाँ बहती हैं। इस महानता के कारण स्वर्ग के देव भी भारत में जन्म लेने के लिए लालायित रहते थे तथा सशरीर स्वर्ग से आकर भारत के सपूतों के साथ क्रीड़ा भी करते थे।

सुरास्त्र समागत्य स्वर्गायातैर्नरोत्तमैः।  
स्वर्गसम्भूतसौहार्दं रमन्ते सतत्तं मुदा॥४०॥

(महापुराण)

वहाँ के उत्तम मनुष्य स्वर्ग से आकर उत्पन्न होते थे इसीलिए स्वर्ग में हुई मित्रता के कारण बहुत से देव स्वर्ग से आकर बड़ी प्रसन्नता से उनके साथ क्रीड़ा करते थे।

इस नगरी का स्वामी भरत था जो पट्ट्यण्ड पृथ्वी पर विजय प्राप्त करके इस भारत का प्रथम चक्रवर्ती बना। उनके नाम पर ही इस देश का नाम भारत अभिहित हुआ। इसके पहले इस देश का नाम आर्यावर्त था; क्योंकि प्राचीन काल से ही यहाँ पर आर्य निवास करते आ रहे हैं। भरत चक्रवर्ती आदि तीर्थकर आदिब्रह्मा (क्योंकि आदिनाथ भगवान् ने सर्वप्रथम असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिल्प, सेवा आदि का उपदेश देने के कारण इन्हें आदि ब्रह्मा कहते हैं तथा इन्हें १५वाँ मनु भी कहते हैं।) ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। ऋषभदेव ने ही सर्वप्रथम जीविका निर्वाह के लिए एवं क्षुधा शांत करने के लिए इक्षुरस का प्रयोग करना प्रजाओं को सिखाया था; इसीलिए इनको इश्वराकु कहते हैं एवं इनके वंश तो इक्षाकुवंश कहते हैं। भरत चक्रवर्ती ने भी राष्ट्र की समृद्धि, व्यवस्था के लिए अनेकों कार्य किये थे इसीलिए इन्हें १६वाँ मनु कहते हैं। ऋषभदेव के पहले सार्वजनिक व्यवस्थापक और भी १४ मनु इस भारतवर्ष में हो गये हैं।

आदितीर्थकृतो ज्येष्ठपुत्रो राजसु षोडशः।  
ज्यायांश्चक्री मुछूर्तेन मुक्तोऽयं कैस्तुलां ब्रजेत्॥

(महापु. पृ. ४४६)

वह भरत भगवान् आदिनाथ का ज्येष्ठ पुत्र था, १६वाँ मनु था, प्रथम चत्रवर्ती था और एक मुहुर्त में ही मुक्त हो गया था (केवलज्ञानी हो गया था) इसीलिए वह किसके साथ सादृश्य को प्राप्त हो सकता था? अर्थात् किसी के साथ नहीं, वह सर्वथा अनुपम था।

भरत चक्रवर्ती की सुशीला, सुंदरी तथा सर्वगुणसम्पन्न अनंमती नामकी रानी थी। उसके गर्भ से पुरुरवा भील का जीव जो सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था उसने स्वर्ग से च्युत होकर जन्म लिया। भगीचिने अपने पितामह भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा के समय स्वयं ही गुरुभक्ति से प्रेरित होकर कच्छ आदि घार हजार राजाओं के साथ सब परिग्रह का त्याग करके निग्रंथ दीक्षा धारण कर ली। उसने बहुत

समय तक तपश्चरण का क्लेश सहा और क्षुधा, शीत आदि परीष सहन किये; परन्तु आगे चलकर वह उन कष्टों को सहन करने में असमर्थ हो गया इसीलिए जंगल के वृक्षों से फल तोड़कर स्वयं खाने के लिए तथा वस्त्रादि ग्रहण करने के लिए उदय हुआ। यह देखकर वनदेवताओं ने उन्हें समझाया कि दिगम्बर जैन साधुओं का यह आचरण एवं कर्तव्य नहीं है। यदि ऐसी प्रवृत्ति करना है तो इस दिगम्बर मुद्रा का त्याग करना पड़ेगा। वनदेवताओं के उक्त वचन सुनकर प्रबल मिथ्यात्व कर्म से प्रेरित हुए मरीचि ने सबसे पहले परिव्राजक (ढोंगी साधु) की दीक्षा धारणकर ली। उसने उस मिथ्या धर्म का प्रचार-प्रसार भी किया। जब आदिनाथ भगवान् को केवलज्ञान हुआ तब उनकी दिव्यध्वनि सुनकर भी वह समीक्षीन धर्म ग्रहण नहीं कर सका। वह इस विचार से मिथ्या साधु बनकर मिथ्या मत का प्रचार-प्रसार करता रहा कि जिस प्रकार भगवान् ऋषभदेव ने अपने आप समस्त परिग्रहों का त्याग कर तीन लोक में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली शक्ति प्राप्त की है उसीप्रकार मैं भी संसार में अपने द्वारा चलाये हुए दूसरें मत की व्यवस्था करूँगा और उसके प्रभाव से मैं भी प्रसिद्धि को प्राप्त करूँगा। वह इसप्रकार अभिमान से प्रेरित होकर मिथ्याभाव से विरक्त नहीं हुआ और अनेक दोषों से दूषित होने पर भी वही वेष धारण कर मिथ्या धर्म का प्रचार-प्रसार करने लगा। इसने इस भारतवर्ष में आदिनाथ के समय से ही अनेक मिथ्या आडम्बरपूर्ण धर्म का चिरकाल तक प्रचार-प्रसार करता रहा।

(4) ब्रह्मस्वर्ग में भगवान् महावीर का जीव-

वह मरीचि आयु के अंत में मरकर ब्रह्म स्वर्ग में दस सागर की आयुवाला देव हुआ।

(5) जटिल ब्राह्मण के रूप में-

वह ब्रह्मस्वर्ग का देव आयु के अंत में स्वर्ग से च्युत होकर अयोध्या में कपिल ब्राह्मण की काली नामक त्री से जटिल नामका पुत्र हुआ।

(6) सौधर्म स्वर्ग में देव-

वह जटिल मिथ्या मत में रिथ्त होकर पहले के समान् चिरकाल तक मिथ्या मत का प्रचार-प्रसार किया और मरकर सौधर्म-स्वर्ग में देव हुआ।

(7) पुष्पमित्र के रूप में-

वह सौधर्म स्वर्ग का देव दो सागर के स्वर्गिक सुख भोगकर आयु के अंत

में वहाँ से च्युत हुआ और इसी भरत क्षेत्र के स्थृणागार नामक श्रेष्ठ नगर में भारद्वाज नामक ब्राह्मण की पुष्पदत्ता स्त्री से पुष्पमित्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इस भव में भी उसने पहले के समान मिथ्या साधु का वेष धारण कर मिथ्या धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

#### (8) सौधर्म स्वर्ग में देव-

मंदकषाय के कारण वह पुष्पमित्र मर करके सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयुवाला देव हुआ।

#### (9) अग्निसह के रूप में-

स्वर्ग का सुख भोगकर वहाँ से च्युत होकर इस भरतक्षेत्र के श्रुतिका नामक ग्राम में अग्निभूति नामक ब्राह्मण के गौतमी नामकी पुत्री से अग्निसह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस भव में भी वह पहले के समान मिथ्या साधु बनकर मिथ्या धर्म का ही प्रचार-प्रसार किया।

#### (10) देवरूप में-

अंत में वह अग्निसह मरकर सात सागर की आयुवाला देव हुआ।

#### (11) अग्निमित्र का भव-

वह देव अंत में वहाँ से च्युत होकर इस भरत क्षेत्र के मंदिर नामक ग्राम में गौतम नामक ब्राह्मण के कौशिकी नामक ब्राह्मणी से अग्निमित्र नामका पुत्र हुआ। इस भव में भी उसने पूर्व संस्कार के कारण मिथ्यासाधु की दीक्षा लेकर मिथ्या धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

#### (12) महेन्द्रस्वर्ग में देव-

अंत में वह अग्निमित्र मरकर महेन्द्र स्वर्ग में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

#### (13) भारद्वज रूप में-

वह महेन्द्र स्वर्ग का देव च्युत होकर पूर्वोक्त मंदिर नामक नगर में शालंकायन नामक ब्राह्मण की मंदिरा नामकी स्त्री से भारद्वज नामका पुत्र हुआ। इस भव में भी वह पूर्व संस्कार से प्रेरित होकर मिथ्या धर्म का प्रचार प्रसार किया।

#### (14) महेन्द्र स्वर्ग में देव-

अंत में वह भारद्वज मर करके महेन्द्र स्वर्ग में 7 सागर की आयुवाला देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर मिथ्या मत के प्रचार-प्रसार के कारण समर्त अधोगतियों में जन्म लेकर महावीर के जीव ने भारी दुःख को भोगा। उसने त्रस, स्थावर योनियों

में असंख्यात वर्ष तक परिभ्रमण करता हुआ विभिन्न शारीरिक मार्नसिक दुःखों को भोगा।

#### (15) असंख्यात वर्ष की दुःखदायी अरबों पर्याये

निम्न प्रकार से कुछ पर्यायों का वर्णन यहाँ उद्धृत कर रहा है—

अकौआ	60 हजार पर्याय	केसरी	5 करोड़ पर्याय
सीप	80 हजार पर्याय	चंदन वृक्ष	3 लाख पर्याय
नीबू	20 हजार पर्याय	मछली	3 करोड़ पर्याय
अशोकवृक्ष	99 हजार पर्याय	वेश्या	16 करोड़ पर्याय
हाथी	20 करोड़ पर्याय	नीम	20 हजार पर्याय
गधा	60 करोड़ पर्याय	केला	90 हजार पर्याय
कुत्ता	30 करोड़ पर्याय	शिकारी	5 हजार पर्याय
नपुंसक	60 करोड़ पर्याय	घोड़ा	8 हजार पर्याय
स्त्री	20 करोड़ पर्याय	गर्भपात	60 हजार पर्याय
धोबी	90 करोड़ पर्याय	स्वर्ग	80 करोड़ पर्याय
असुरदेव	30 करोड़ पर्याय	विल्ली	60 करोड़ पर्याय
भोगभूमि	60 करोड़ पर्याय	सिपि	5 करोड़ पर्याय

#### (16) स्थावर नामका मनुष्य-

असंख्यात वर्ष तक विभिन्न दुःखदायी योनियों में भ्रमण करते-करते पूर्वसंचित आपकम कुछ हल्के होने के कारण महावीर का जीव मगध देश के राजगृही नगरी में शापिण्डल्य ब्राह्मण की पारशरी नामकी पली से स्थावर नामका पुत्र हुआ। इस भव में भी उसने मिथ्या अभिप्राय से ग्रसित होकर मिथ्या साधु बनकर मिथ्याधर्म का ही प्रचार-प्रसार किया।

#### (17) महेन्द्र स्वर्ग में देव-

अंत में वह मरकर महेन्द्र स्वर्ग में 7 सागर की आयुवाला देव हुआ।

#### (18) विश्वनंदी की अवस्था में भगवान् महावीर का जीव-

महेन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर मगध देश के राजगृह नामक नगर में विश्वभूति राजा की जैनी नामक स्त्री से विश्वनंदी नामका पुत्र हुआ। विश्वभूति राजा के विशाखभूति नामक छोटा भाई था। उसकी लक्षणा नामक स्त्री से विशाखानंद नामक एक मूर्ख पुत्र उत्पन्न हुआ।

एकदिन राजा विश्वभूति शरदऋतु के मेघ का नाश देखकर संसार से विरक्त हो गया। उसने अपने छोटे भाई को राज्य दिया और अपने पुत्र को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। तदनन्तर उसने 300 राजाओं के साथ श्रीधर नामक गुरु के पास दिगम्बर जैन दीक्षा धारण कर ली और आत्मसाधना में रत हो गया। कुछ दिन के अनन्तर विश्वनंदी अपने मतोहर नामक उपवन में क्रीड़ा कर रहा था। उसे देख विशाखनंद उस मतोहर नामक उद्यान को अपने अधीन करने की इच्छा से पिता के पास जाकर कहने लगा कि इस उद्यान को मुझे दिया जाया। अन्यथा मैं इस देश को छोड़कर अन्यत्र चला जाऊँगा। पुत्र के वचन सुनकर मन में कुछ विचारकर उसने विशाखनंदी को बुलाया और कहा कि तुम इस समय इस राज्य का भार ग्रहण करो मैं शत्रु राजाओं को परास्त करके वापिस आ जाऊँगा। उनके वचन सुनकर विश्वनंदी ने कहा— हे पूज्यनीय! आप राज्य में निश्चिन्त होकर रहे मैं ही जाकर उन राजाओं को परास्त करके आपके पास उन्हें दास बनाकर ले आता हूँ।

जब विश्वनंदी काका की अनुमति लेकर शत्रुओं को जीतने के लिए चला गया तब विवेकहीन विशाखभूति ने उस उपवन को विशाखनंद को दे दिया। जब इस घटना का तत्काल ही विश्वनंदी को पता चला तब वह क्रोधित होकर न सेना को युद्ध करने के लिए भेजकर लौट पड़ा और अपना उपवन हरण करने वालों को मारने के लिए उपवन में गया। इसके भय से विशाखनंद एक ऊँचे कैथ के बृक्ष पर चढ़ गया। विश्वनंदी ने उस कैथ के बृक्ष को जड़ से उखाड़ डाला और उसे मारने के लिए उद्यत हुआ। इससे भयभीत हो विशाखनंद वहाँ से भाग गया और एक पत्थर के खम्भे के पीछे छिप गया परन्तु विश्वनंदी ने अपनी हथेलियों के प्रहार से उस पत्थर के खम्भे को शीघ्र ही तोड़ डाला। इससे भयभीत विशाखनंद वहाँ से भाग गया। इससे कुमार विश्वनंदी ने दयाद्र होकर उसे बुलाया और उस उपवन को उसे दे दिया तथा स्वयंने इस घटना से वैराग्यस्थन होकर सम्भूत नामक गुरु के पास दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। इससे विशाखभूति को भी बहुत पश्चात्ताप हुआ। जिससे उसने प्रायश्चित्त स्वरूप संयम को धारण कर लिया।

मुनि विश्वनंदी का शरीर विभिन्न प्रकार के घोर तपश्चरण के कारण अत्यन्त कृश हो गया। वे विहार करते-2 मथुरा नगरी में आहार के लिए प्रविष्ट हुए। व्यसनों के कारण जिसका राज्य भ्रष्ट हो गया ऐसा विशाखनंद भी उस समय

किसी राजा का बनकर मथुरा नगरी में आया हुआ था। वहाँ की एक वेश्या के मकान की छत पर बैठा हुआ था। दैवयोग से वहाँ सद्यः प्रसूता गाय ने क्रुध होकर विश्वनंदी मुनि को धक्का देकर गिरा दिया। उन्हें गिरता देख क्रोधित हुआ विशाखनंद कहने लगा कि तुम्हारा जो पराक्रम पहले था वह पराक्रम अब कहाँ गया? इस प्रकार कहता हुआ मुनि की हँसी की। मुनि भी उसके वचन सुनकर मन में कुछ कुपित हुए और यह निदान किया कि इस हँसी का फल तुम अवश्य पाओगे। इस निदान के कारण मुनि सन्यास मरण के बाद महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए और विशाखभूति का जीव भी वही देव हुआ। उन दोनों की आयु 16 सागर की थी।

### (19) त्रिपुष्ठ नारायण रूप में

विश्वनंदी के काका विशाखभूति का जीव सुरम्य देश के पोदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से विजय नामक पुत्र हुआ। उसके बाद ही विश्वनंदी का जीव इन्हीं प्रजापति राजा की दूसरी रानी मृगावती के त्रिपुष्ठ नामक पुत्र हुआ। यह होनहार अर्धचक्री (नारायण) था। इधर विजयार्थ पर्वत की उत्तर श्रेणी में अलकापुरी नगरी में मयूरग्रीव नामक विद्याधरों का राजा रहता था। उसकी रानी का नाम नीलांजना था। विशाखनंद का जीव चिरकाल तक अनेकों दुःखों को भोगता हुआ, अनेक दुराचार करने वाला उन दोनों के अश्वग्रीव नामक पुत्र हुआ। यह होनहार प्रतिनारायण था।

विजयार्थ पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रथनपुर चक्रवाल नामक एक नगर था। वहाँ ज्वलनजटी नामक विद्याधर राजा था। वह ज्वलनजटी परम्परागत, सिन्धु की गयी तथा दूसरों से प्राप्त इसप्रकार तीन विद्याओं से सहित था। उसकी रानी का नाम वायुवेगा था। जो द्युतितिलक नगर के राजा और सुभद्रारानी की पुत्री थी। उन दोनों के अर्ककीर्ति नामक पुत्र था। और स्वयंप्रभा नामक पुत्री थी। जब पुत्री युवती हुई तब पिता ज्वलनजटी उसके विवाह के लिए विचार करने लगे और सम्भिन्नश्रोता नामक पुरोहित से इस संबंधी जिज्ञासा की। पुरोहित ने निमित्त शास्त्र के आधार पर कहा कि स्वयंप्रभा पहले नारायण की महादेवी होगी और आप भी उसके द्वारा दिये गये विद्याधरों के चक्रवर्ती पद को प्राप्त होंगे।

इससे प्रेरित होकर राजा ने इंद्र नामक मंत्री को लेख तथा भेंट देकर पोदनपुरी को भेजा। पोदनपुर के राजा पुष्पकरण्डक नामक वन में विराजमान थे। मंत्रीने

वहाँ जाकर विनयपूर्वक पत्र एवं भेंट समर्पित की। इस प्रस्तावना को राजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह सूचना मंत्रीने जाकर स्वराजा को निवेदन किया। ज्वलनजटी अर्ककीर्ति के साथ शीघ्र ही आया और स्वयंप्रभा के साथ बड़े वैभव के साथ उसका त्रिपुष्ट के साथ विवाह करवाया। इसके साथ-2 ज्वलनजटी ने त्रिपुष्ट के लिए यथेक्त विधि से सिंहवाहिनी और गरुड़वाहिनी दो विद्यायें भी दीं।

उपरोक्त सूचना को अश्वग्रीव ने अपने गुप्तचरों से ज्ञात करके क्रोधित होकर युद्ध करने के लिए प्रयाण किया। अश्वग्रीव की चढ़ाई सुनकर त्रिपुष्ट कुमार भी स्वसेना सहित पहले से आकर रास्ते में आ डटा। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। जब अश्वग्रीव मायायुद्ध में भी परारत हो गया तब उसने लज्जित होकर त्रिपुष्ट के ऊपर चक्र चला दिया, परन्तु वह चक्र प्रदिक्षणा देकर शीघ्र ही उसकी दाहिनी भुजा पर स्थित हो गया। त्रिपुष्टने भी उस चक्र को शत्रु के ऊपर चला दिया। जिससे अश्वग्रीव की मृत्यु हो गयी। त्रिखण्ड का अधिपति होने से त्रिपुष्ट को अर्धचक्रवर्ती का पद मिला।

विजय के बाद विजय नामक भाई के साथ त्रिपुष्ट विजयार्थ पर्वत पर गया और वहाँ रथनूपर के राजा ज्वलनजटी को दोनों श्रेणियों का राजा बना दिया। विरकाल तक त्रिपुष्ट आरम्भ-परिग्रह एवं भोगों में आसक्त होने के कारण सन्यास धारण नहीं कर पाया। साधु नहीं बन पाया।

#### (20) सप्तम नरक में-

उस त्रिपुष्ट ने मरकर 'जो भोगेश्वरी सो नरकेश्वरी' के अनुसार सप्तम नरक में जन्म लिया।

#### (21) सिंह पर्वाय में-

सप्तम नरक से निकलकर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में गंगानदी के समीपवर्ती वन में सिंहगिर पर्वत पर सिंह हुआ।

#### (22) रत्नप्रभा नरक में-

उस सिंहने मरकर रत्नप्रभानामक नरक में जन्म लिया।

#### (23) सिंह पर्वाय में (आत्म विकास का शुभारंभ)-

एक सागर का भयंकर दुःख भोगकर वह जम्बूद्वीप के सिन्धुकूट की पूर्व दिशा में हिमवत् पर्वत के शिखर पर सिंह हुआ। वह सिंह उस समय एक हिरण को पकड़कर खा रहा था। उसी समय अति दयालू अजिंतजय तथा अमितगुण नामक

चारण त्रिद्विधारी मुनि आकाश में जा रहे ते। उन्होंने उस सिंह को देखा। देखते ही वे तीर्थकर के उपदेश का स्मरण कर दयावश आकाशमार्ग से उत्तरकर जोर-जोर से उस सिंह को संबोधित करने लगे। उन्होंने कहा कि— हे भव्य मृगराज! तूने त्रिपुष्ट के भव में अनेक भोग भोगे। अनेक रसीले रसदार भोजन किये। तथापि तुम्हारी तृप्ति नहीं हुई। अनेक बार तू नरकमें पाप के कारण हिंसा करके, माँस खाकर गया। अभी तुम पाप से निवृत्त हो जाओ। हमने सिद्धार्थ तीर्थकर से यह सुना है कि तुम इस भव से 10 वें भव में अन्तिम तीर्थकर बनोगे। कहाँ तुम दया, क्षमा, करुणा के अवतार बनोगे और कहाँ इतनी क्रूरता हिंसा, निष्ठुरता। धिक्कार तुम्हारे इस आचरण को। अभी तुम इस मिथ्यात्व, पाप प्रवृत्ति का त्याग करो। इससे सिंह को शीघ्र ही जाति स्मरण हो गया और वह पश्चात्ताप के कारण, आँखों से आँसू गिराने लगा। उसने भक्तिपूर्वक दोनों मुनिराज की बारम्बार प्रतिक्षणा दी और बार-बार प्रणाम किया। तत्व त्रन्द्वान धारण कर श्रावक के व्रत ग्रहण किये। उसने माँसादि भक्षण का पूर्ण त्याग करके निराहार से समतापूर्वक समाधि ले ली। जिस सिंह की दहाड़ से जंगल के हाथी आदि बड़े-2 प्राणी भी भयभीत हो जाते थे आज उसके शांत स्वरूप को देखकर किसी को भी भय उत्पन्न नहीं होता था।

#### (24) स्वर्ग में देव-

उपरोक्त प्रकार से समाधि मरण कर वह सिंह सौर्धर्म स्वर्ग में सिंह केतु नामका देव हुआ।

#### (25) कनकोज्ज्वल राजपुत्र —

वह देव दो सागर की आयु सुख से समाप्त कर धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मेरु से पूर्व की ओर जो विदेह क्षेत्र है उसके मंगलावती के विजयार्थ पर्वत की उत्तरश्रेणी में कनकप्रभ नगर के राजा कनकपुंगव विद्याधर और कनकमालारानी के कनकोज्ज्वल नामक पुत्र हुआ। एक दिन वह अपनी कनकवती स्त्री के साथ मंदिरगिरि पर गया। वहाँ उसने प्रियमित्र अवधिज्ञानी मुनि से धर्म का स्वरूप सुना। उस उपदेश से प्रभावित होकर उसने उसी समय भोगों से विरक्त होकर समस्त परिग्रहों का त्याग करके संयम धारण कर लिया।

#### (26) सातवें स्वर्ग में देव-

सन्यासमरण कर कनकोज्ज्वल मुनि 7 वें स्वर्ग में देव हुए

## (27) राजा हरिषेण-

7वें स्वर्ग में 13 सागर की आयु सुखपूर्वक भोगकर वहाँ से च्युत होकर वह इस जम्बूद्वीप के कौशल देश के साकेत नगर के स्वामी वज्रसेन की शीलवती रानी से हरिषेण नामक पुत्र हुआ। अंत में समरत राज्य दैभव को छोड़कर श्री श्रुतसागर नामक गुरु के पास जाकर दीक्षा धारण कर ली।

## (28) महाशुक्र स्वर्घ में देव-

हरिषेण मुनि समाधिपूर्वक मरण करके महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए वहाँ उनकी आयु 16 सागर की थी।

## (29) प्रियमित्र चक्रवर्ती-

वह देव अंत में स्वर्ग से च्युत होकर धातकी खण्ड की पूर्व दिशा संबंधी विदेह क्षेत्र के पूर्व भाग में पुष्पकलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में राजा सुमित्र और रानी मनोरमा के प्रियमित्र नामका पुत्र हुआ। उसने आगे जाकर चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया। अंत में क्षेमकर नामक जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश से विरक्त होकर सर्वमित्र नामक अपने पुत्र को राज्य देकर एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गया।

## (30) सहस्रार स्वर्ग में-

समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त कर वह सहस्रार स्वर्ग में जाकर सूर्यप्रभ नामक देव हुए। उनकी आयु 18 सागर की थी।

## (31) नंदपर्याय (तीर्थकर प्रकृति का बंध)-

वह देव वहाँ से च्युत होकर इस जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर के राजा नंदीवर्धन तथा रानी वीरवती के नंद नामका सज्जन पुत्र हुआ। अंत में उसने राज्यभोग त्यागकर प्रोष्ठिल नामक गुरु के पास दीक्षित होकर सोलहकारण भावनाओं का चिंतन कर तीर्थकर प्रकृति का बंधन किया।

(32) अच्युत स्वर्ग में— आयु के अंत में समरत प्रकार की आराधना को प्राप्त कर वह अच्युत स्वर्ग के विमान में श्रेष्ठ इंद्र हुआ। वहाँ उसकी आयु 22 सागर की थी। तीन हाथ ऊँचा शरीर था। द्रव्य एवं भाव लेश्या शुक्ल थी। 22 पक्ष में एक बार श्वास लेता था। 22 हजार वर्ष में एक बार मानसिक आहार करता था। मानसिक प्रवीचार से युक्त था। श्रेष्ठ भोगों से तृप्त रहता था। अवधिज्ञान रूपी नेत्र से 6वीं पृथ्वी तक अवलोकन करता था। उसके बल, कांति, विद्या,

विक्रिया की अवधि भी अवधिज्ञान के क्षेत्र के बराबर थी। वह सामानिक देव-देवियों से घिरा हुआ अपने पुण्य कर्म के योग से सदा सुखी रहता था। वही जीव आगे जाकर भारत वर्ष के इस युग के अंतिम तीर्थकर भगवान् महावीर के रूप में अवतरित हुए।

उपरोक्त भवावलियों से यह सिद्ध होता है कि जीव स्वयं का कर्ता-धर्ता-हर्ता-भर्ता विधाता है। उसके भाव के अनुसार भाग्य (कर्म) बनते हैं एवं भाग्य के अनुसार उसके भविष्य का निर्माण होता है। इसीलिए जीव स्वयं ही स्वयं का भाग्य विधाता है एवं भविष्य निर्माता है। इसीलिए स्व का शत्रु स्वयं है एवं स्वयं का मित्र स्वयं है। सुपथगामी जीव स्वयं के लिए मित्र है एवं कुपथगामी जीव स्वयं के लिए शत्रु है। जिस प्रकार योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, जलवायु को प्राप्त कर बीज ही अंकुरित होकर वृक्ष रूप में परिणमन होता है उसी प्रकार जीव भी योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पुरुषार्थ आदि के माध्यम से जीव से जिनेन्द्र, जानवर से जिनवर, खुद से खुदा, पशु से पशुपति बन Dog से God बन सकता है।

२२वें धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण गींगला में ब्र. प्रशान्तजी ने ४५ ऐतिक नियम स्विकार कीये एवं भविष्य में आ. श्री से दिक्षा लेने का नियम लेकर

उन्हें पिछी प्रदान कर रहे हैं।



### श्री चौबीस तीर्थकरों का सामान्य परिचय

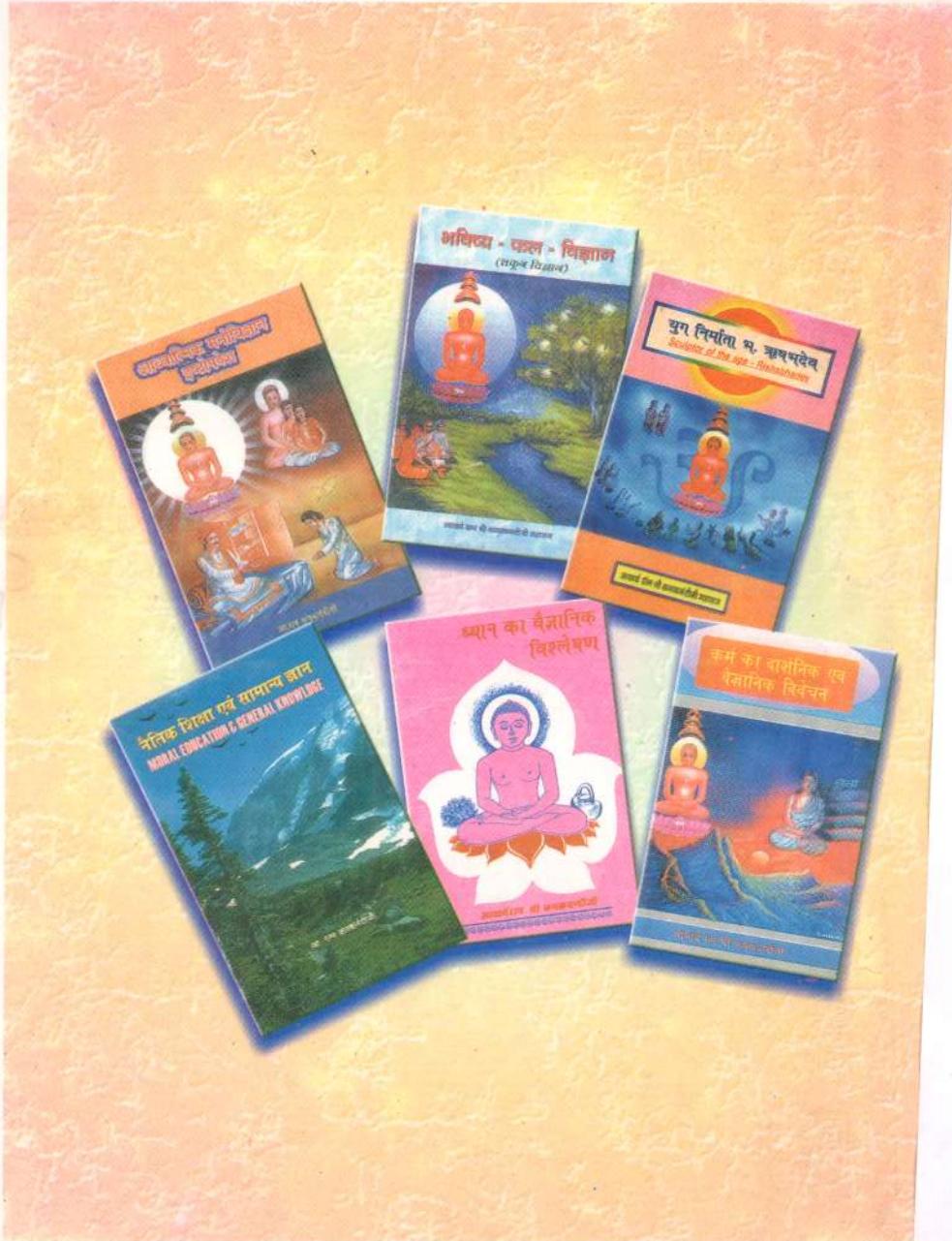
1 नाम	2 चिन्ह	3 जन्मनगरी	4 पिता	5 माता	6 मोक्षस्थान
1. वृषभनाथजी	वृषभ	अयोध्या	नाभिराय	मरुदेवी	कैलाशपर्वत
2. अजितनाथजी	गज	अयोध्या	जितशत्रु	विजय	सम्पेदशिखर
3. संभवनाथजी	अश्व	श्रावस्ती	जीतारि	सुसेना	सम्पेदशिखर
4. अभिनंदनाथजी	वन्दर	अयोध्या	संवर	सिद्धार्था	सम्पेदशिखर
5. सुमितिनाथजी	चक्रवा	अयोध्या	मेघप्रभ	मंगला	सम्पेदशिखर
6. पद्मप्रभुजी	पद्म	कौशाम्बी	धरण	सुसीमा	सम्पेदशिखर
7. सुपाश्वर्णनाथजी	नन्दावर्त	वाराणसी	सुप्रतिष्ठ	पृथिवी	सम्पेदशिखर
8. चन्द्रप्रभुजी	अर्धचन्द्र	चन्द्रपुर	महासेन	लक्ष्मीपति	सम्पेदशिखर
9. पुष्यदंतजी	मगर	काकंदीपुर	सुग्रीव	रामा	सम्पेदशिखर
10. शीतलनाथजी	कल्पवृक्ष	भद्रिलपुर	दृढ़रथ	नन्दा	सम्पेदशिखर
11. श्रेयांसनाथजी	गैंडा	सिंहपुर	विष्णु	वेणुदेवी	सम्पेदशिखर
12. वासुपूज्यजी	भैंसा	चम्पापुर	वसुपूज्य	विजया	चम्पापुर
13. विमलनाथजी	शूकर	कंपिलापुर	कृतवर्मा	जयश्यामा	सम्पेदशिखर
14. अनन्तनाथजी	सेही	अयोध्या	सिंहसेन	सर्वयशा	सम्पेदशिखर
15. धर्मनाथजी	वन्द्रदण्ड	रत्नपुर	भानु	सुव्रता	सम्पेदशिखर
16. शांतिनाथजी	हरिण	हस्तिनापुर	विश्वसेन	एरा	सम्पेदशिखर
17. कुन्तुनाथजी (वकरा)	हस्तिनापुर	सूर्यसेन	श्रीमति	सम्पेदशिखर	
18. अरहनाथजी	मछली	हस्तिनापुर	सुदर्शन	मित्रा	सम्पेदशिखर
19. मल्लिनाथजी	कलश	मिथिला	कुम्भ	प्रभावती	सम्पेदशिखर
20. मुनिसुवतनाथजी	कछुआ	राजगृह	सुमित्रराज	पद्मा	सम्पेदशिखर
21. नमिनाथजी	नीलकमल	मिथिला	विजयनरेन्द्र	विप्रिला	सम्पेदशिखर
22. नेमिनाथजी	शंख	शौरीपुर	समुद्रविजय	शिवादेवी	उर्जन्त (गिरनार)
23. पाश्वर्णनाथजी	सर्प	वाराणसी	अश्वसेन	वामा	सम्पेदशिखर
24. वर्धमाननी	सिंह	कुण्डलपुर	सिद्धार्थ	प्रियकारिणी	पावापुरी

7 आयु	8 श्रावक	9 श्राविका	10 गणधर	11 ऋषि	12 केवली
1. 84 लाख	3 लाख	5 लाख	84	84 हजार	20 हजार
2. 72 "	"	"	90	1 लाख	2 हजार
3. 60 "	"	"	105	2 लाख	15 "
4. 50 "	"	"	103	3 लाख	16 "
5. 40 "	"	"	116	3 ला. 20 ह.	13 "
6. 30 "	"	"	111	3 ला. 30 ह.	12 "
7. 20 "	"	"	95	3 लाख	11 "
8. 10 "	"	"	93	2 ला. 50 ह.	18 "
9. 2 "	2 लाख	4 लाख	88	2 लाख	7500
10. 1 "	"	"	87	1 लाख	7 हजार
11. 84 लाख वर्ष	"	"	77	84 हजार	6 ह. 5 सौ
12. 72 "	"	"	66	72 हजार	6000
13. 60 "	"	"	55	68 हजार	5500
14. 30 "	"	"	50	66 हजार	5000
15. 10 "	"	"	43	64 हजार	4500
16. 1 "	1 लाख	"	36	62 हजार	4000
17. 95 ह. वर्ष	1 लाख	3 लाख	35	60 हजार	3200
18. 84 "	"	"	30	50 हजार	2800
19. 55 "	"	"	28	40 हजार	2200
20. 30 "	"	"	18	30 हजार	1800
21. 10 "	"	"	17	20 हजार	1600
22. 1 "	"	"	11	18 हजार	1500
23. 100 वर्ष	"	"	13	16 हजार	1000
24. 72 वर्ष	"	"	11	14 हजार	700

आर्यिका संख्या

तीर्थकरों के परस्पर मोक्षकाल का अन्तराल

1. 3 लाख 50 हजार सुप्रमा दुष्प्रमा तीसरे काल के 3 वर्ष 8 मास	15 दिन वाकी रहने पर
2. 3 लाख 20 हजार प्रथम तीर्थकर की मुक्ति के बाद 50 लाख करोड़ सागर	
3. 3 लाख 30 हजार द्वितीय तीर्थकर की मुक्ति के बाद 30 लाख करोड़ सागर	
4. 330600 तृतीय तीर्थकर की मुक्ति के बाद 10 लाख करोड़ सागर	
5. 330000 चतुर्थ तीर्थकर की मुक्ति के बाद 9 लाख करोड़ सागर	
6. 420000 पंचम तीर्थकर की मुक्ति के बाद 90 हजार करोड़ सागर	
7. 330000 षष्ठम् तीर्थकर की मुक्ति के बाद 9 हजार करोड़ सागर	
8. 380000 सप्तम् तीर्थकर की मुक्ति के बाद 900 करोड़ सागर	
9. 380000 अष्टम् तीर्थकर की मुक्ति के बाद 90 करोड़ सागर	
10. 380000 नवम् तीर्थकर की मुक्ति के बाद 9 करोड़ सागर	
11. 130000 दशम् तीर्थकर की मुक्ति के बाद 3373900 सागरोपमकाल	
12. 106000 व्यारहवें तीर्थकर की मुक्ति के बाद 54 लाख सागरोपम	
13. 103000 बारहवें तीर्थकर की मुक्ति के बाद 30 लाख सागरोपम	
14. 108000 तेरहवें तीर्थकर की मुक्ति के बाद 9 लाख सागरोपम	
15. 62400 चौदहवें तीर्थकर की मुक्ति के बाद 4 लाख सागरोपम	
16. 60300 15वें ती. की मुक्ति के बाद 3 लाख सागरोपम में से 3/4 (पौन) पल्य कम	
17. 60350 सोलहवें " " 1/2 पल्योपम काल बीतजाने पर	
18. 60000 सत्रहवें " " 1/4 पल्य में से 1 हजार करोड़ वर्ष कम	
19. 55000 अठारहवें " " 1 ह. क. वर्ष काल प्रमाण बीत जाने पर	
20. 50000 उन्नीसवें " " 54 लाख वर्ष	
21. 45000 बीसवें " " 6 लाख वर्ष	
22. 40000 इक्कीसवें " " 5 लाख वर्ष	
23. 38000 बाइसवें " " 83750 वर्ष	
24. 36000 तेइसवें " " 250 वर्ष	
	अर्थात् दुष्प्रमा सुप्रमा नामक चौथे काल के अन्त समय में जब 3 वर्ष 8 मास 15 दिन वाकी रहे तब महावीर तीर्थकर भगवान् मोक्ष गए।



धर्माचार्य श्री कनकनंदीजी द्वारा रचित ग्रंथो की ज्ञाँकी